दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

University of Jammu, Jammu

एम.ए. हिन्दी M.A. (HINDI) पाठ्यक्रम संख्या Hin-302

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. हिन्दी

M.A. HINDI

Session : 2023 onwards

पाठ्यक्रम संख्या : 302 **COURSE NO. 302**	हिन्दी कथा साहित्य	सत्र – तृतीय **Semester - III** आलेख संख्या 1 – 19 **Lesson No. : 1 - 19**

Dr. Anju Sharma

Co-ordinator

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू –180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducationju.in

Printed and published on behalf of the Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DD&OE, University of Jammu, Jammu

M.A. HINDI

Course Contributors

• Prof. Neelam Saraf Retd. Professor, Department of Hindi, University of Jammu	L. No. 1-4
• Prof. Anju Sharma DD&OE, University of Jammu	L.No. 5, 6, 14
• Ms. Bhagwati Devi Lecturer in Hindi, Dept. of Hindi University of Jammu	L. No. 8-10
• Dr. Puja Sharma Lecturer in Hindi, P.S.P.S. GCW, Gandhi Nagar Cluster University	L. No. 11
• Dr. Sunita Sharma Associate Prof., G.N.D.U., Amritsar	L. No. 12-13, 15-16
• Dr. Pooja Sharma Lecturer in Hindi DD&OE, University of Jammu	L.No. 7, 17-19

Review, Proof Reading and Content Editing

- Dr. Pooja Sharma
  Lecturer, D.D.&O.E., University of Jammu, Jammu

© Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu, 2023

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, Universityof Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed by :- Classic Printers / 2023 / ???

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester 3rd

Course Code HIN-302 **Title : Hindi Katha Sahitya**
Credits : 5 **Maximum Marks : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs. **(a) Internal = 20**
(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024

इकाई–एक

उपन्यास

फणीश्वरनाथ रेणु – मैला आंचल।
चित्रा मुद्गल – पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा।

कहानियाँ

भीष्म साहनी – प्रतिनिधि कहानियाँ (चीफ़ की दावत, वाङ्चू; कुल दो कहानी)।

कमलेश्वर – सम्पूर्ण कहानियाँ (नीली झील, खोयी हुई दिशाएं; कुल दो कहानी)।

कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे (बदली बरस गयी, सिक्का बदल गया; कुल दो कहानी)।

शिवमूर्ति – केशर कस्तूरी (तिरिया चरित्तर, कसाईबाड़ा)।

इकाई–दो

आंचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आंचल।

मैला आंचल की समस्याएँ।

मैला आंचल में लोक–संस्कृति।

कथाकार चित्रा मुद्गल।

नाला सोपारा में किन्नर विमर्श।

नाला सोपारा के प्रमुख चरित्र।

इकाई–तीन

कहानीकार भीष्म साहनी।

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र।

नयी कहानी आन्दोलन और कमलेश्वर।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र।

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना।

इकाई–चार

कृष्णा सोबती का नारी मनोविज्ञान।

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र।

ग्रामीण चेतना के कहानीकार शिवमूर्ति।

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN-302 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) अंक = 80 समय = तीन घण्टा

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक–एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6×3=18
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न	10×3=30
(ग)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न	6×3=18
(घ)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न	3×3=9
(ङ)	पाँच वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे	1×5=5

विषय सूची

आलेख सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मैला आँचल की समस्याएँ	5
2.	मैला आँचल की लोक संस्कृति	22
3.	आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल	38
4.	मैला आँचल के पात्र	51
5.	कथाकार चित्रा मुद्‌गल	98
6.	नाला सोपारा में किन्नर विमर्श	116
7.	पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' के प्रमुख चरित्र	145
8.	कहानीकार भीष्म साहनी	166
9.	'चीफ की दावत' और 'वाङ्‌चू' कहानियों की मूल संवेदना	177
10.	भीष्म साहनी की कहानियों का शिल्प एवं चरित्र	187
11.	नयी कहानी आंदोलन और कमलेश्वर	204
12.	निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र–चित्रण एवं शिल्प विधान	213
13.	'खोई हुई दिशाएं' और 'नीली झील' कहानी की मूल संवेदना	237
14.	कृष्णा सोबती का नारी मनोविज्ञान	247
15.	निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना	255
16.	निर्धारित कहानियों का शिल्प एवं चरित्र चित्रण	263
17.	ग्रामीण चेतना के कहानीकार शिवमूर्ति	279
18.	निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना	294
19.	निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र	304

मैला आँचल की समस्याएँ

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 मैला आँचल की समस्याएँ

1.3.1 आँचल का भौगोलिक परिवेश

1.3.2 मैला आँचल की सामाजिक समस्याएँ

1.3.3 धार्मिक समस्याएँ

1.3.4 राजनीतिक समस्याएँ

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्द

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप –

- आँचलिक उपन्यासों के बारे में जानेंगे।

- मैला आँचल उपन्यास आँचलिक उपन्यासों में विशेष स्थान क्यों रखता है, इससे अवगत होंगे।
- इस समस्त उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समस्त ग्रामीण जीवन की समस्याओं को उकेरा है, जानेंगे।

1.2 प्रस्तावना

आँचलिक उपन्यासों की कथावस्तु के निर्माण का धरातल व्यापक, बहुआयामी और वैविध्यपूर्ण होता है। उनमें समसामयिक राजनीति से लेकर सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ, मानवीय रिश्ते तथा धार्मिक–नैतिक समस्या जैसी व्यापक मानवीय समस्याएँ होती हैं। आँचलिक उपन्यास उस सीमित क्षेत्र में रहने वाले लोगों की ही आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा राजनीतिक आदि समस्याओं के आधार पर निर्मित होते हैं। ये आँचलिक समस्याएं इतनी प्रबल और प्रभावशाली होती हैं कि इनका तात्कालिक प्रभाव आँचलवासियों के आर्थिक, सामाजिक जीवन पर पड़ता है और दूरगामी प्रभाव उनकी मानसिकता पर। उस क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और नैतिक मूल्यों तथा चेतना के निर्माण में इन समस्याओं की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं यह कहा जा सकता है कि किसी अंचल विशेष को उसके आस–पास के क्षेत्रों से भिन्न तथा विशिष्ट इकाई बनाने में उस अँचल की अपनी विशिष्ट समस्याओं की ही सर्वाधिक महत्ता होती हैं।

1.3 मैला आँचल की समस्याएँ

रेणु का 'मैला आँचल' तो एक तरह से संपूर्ण आँचलिक–समस्याओं का जीता–जागता उदाहरण है। आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक और राजनीतिक हर तरह की समस्याओं से ग्रस्त बिहार के पूर्णिया जिले का 'मेरीगंज' गांव इस अँचल का प्रतीक है।

1.3.1 अँचल का भौगोलिक परिवेश

मेरीगंज का परिचय देते हुए रेणु लिखते हैं– "मेरीगंज! रौहतट स्टेशन से सात कोस पूरब, बूढ़ी कोशी के किनारे–किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगाजी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ ज़मीन। बंध्या धरती का विशाल अँचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है।" इस वर्णन से हमारी आँखों के सामने एक विशिष्ट आँचलिक भूखंड का चित्र घूम जाता है। मेरीगंज एक वज्र देहात है। यह बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले का अत्यंत पिछड़ा हुआ अंचल (गांव) हैं। "पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत से गांव और कस्बे हैं, जो आज भी अपने नाम पर नीलहे साहबों का बोझा ढो रहे हैं। वीरान जंगलों और मैदानों में नील कोठी के खंडहर राही, बटोहियों को आज भी नील युग की भूली हुई कहानियां याद दिला देती है।" इन्हीं खण्डहरों में घने जंगलों में गांव के लोग जड़ी–बूटी ढूंढते फिरते हैं। रौहतट स्टेशन पूर्णिया से बारह कोस दूर है मेरीगंज एक बड़ा गांव है। रेणु ने इसका

परिचय इस प्रकार दिया है – "मेरीगंज एक बड़ा गांव है बारहो बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब में एक धारा है जिसे कमला नदी कहते हैं। बरसात में कमला भर जाती है, बाकी मौसम में बड़े–बड़े गड्ढों में पानी जमा रहता है। मछलियों और कमल के फूलों से भरे हुए गड्ढे।"

इस प्रकार मेरीगंज एक पिछड़ा हुआ गांव है, जिसकी ज्यादातर धरती लगभग बंध्या है। यह घोर देहात है। मेरीगंज जिला पूर्णिया का पूर्वी अंचल है, जहाँ मलेरिया, कालाज़ार रोग हर साल आते हैं जिसके कारण अनेक लोग मर जाते हैं। रेणु ने इस अँचल का सजीव एवं यथार्थ चित्रण कया है इस प्रकार मेरीगंज गांव का चित्र पाठकों के सामने साकार हो उठा है।

उपन्यास का उद्देश्य व्यक्ति की कथा नहीं है, रेणु का मकसद तो ग्राम या अंचल की कथा कहना है। अँचल के प्राकृतिक परिवेश के चित्रण के बिना अंचल का सजीव चित्रण संभव नहीं हो सकता इसीलिए रेणु ने 'मैला आँचल' में मेरीगंज के प्राकृतिक परिवेश का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है। रेणु की वर्णन शैली संपूर्ण परिवेश को जीवित बना देती है प्रकृति के अंतर्गत वे भौगोलिक दृश्यों के साथ मनुष्य और पशु–पक्षी सबको शामिल देखते हैं। "खूंटे में बंधे हुए बैलों ने चौकन्ना होकर कान खड़े किये। गांव के बाहर चरती हुई बकरियाँ दौड़ती मिमियाती हुई गांव में भागी आ रही हैं। कुत्ते भौंकने लगे।"

1.3.2 मैला आंचल की सामाजिक समस्याएँ

'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज अँचल की समग्र विशेषताओं के साथ वहाँ के ग्राम जीवन, निवासियों के रहन–सहन, उनके आपसी संबंध स्थितियों का सहज, वास्तविक तथा यथार्थ चित्रण हुआ है। गांव में तीन प्रमुख दल हैं। कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मण अभी भी केन्द्रीय शक्ति हैं। गांव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीनों दलों में बंटे हुए हैं।

मेरीगंज का अधिकांश समाज मूर्ख और अज्ञानी है। उसकी मानसिकता अविकसित है, बौद्धिक चेतना पिछड़ी है। मलेरिया सेंटर का निर्माण करने के लिए जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के लोग जमीन की पैमाइश करने आते हैं तब गांव वाले समझते हैं कि मिलटरी आई है स्वराजियों को पकड़कर ले जाने को और वे सब स्वराजी बालदेव को बांध कर ले जाते हैं। 1942 के आन्दोलन के समय गोरी मिलटरी ने गांव–गांव जाकर स्वराजियों को पकड़ने के लिए उत्पात मचाया था, अब चार साल बाद हमारे गांव की बारी आई है। यह मेरीगंज के समाज की अज्ञानता, अशिक्षा का परिणाम है। "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े–लिखे हैं। पढ़े–लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नये पढ़ने वालों की संख्या है पन्द्रह।" गांव के लोग बड़े अंधविश्वासी हैं। भूत–प्रेत, जादू–टोना पर इनका विश्वास है। आंचलिक उपन्यास में स्थानीय रंग को प्रस्तुत करने के लिए किसी अंचल के रहन–सहन व आचार–विचार का वस्तुनिष्ठ चित्रण विस्तार से किया

जाता है। मैला आंचल के लोगों के आचार–विचार मैं नैतिकता, अच्छाई के साथ अनैतिकता, कुरूपता तथा बुराईयों आदि का प्रधान्य है। गांव वासियों के जीवन की रेणु ने उसकी (मेरीगंज की) समस्त दुर्बलताओं और सबलताओं के साथ चित्रण किया है। मैला आँचल में पिछड़े हुए गांव व पिछड़े हुए वर्ग–विशेष के लोक–जीवन का यथातथ्य चित्रण हुआ है। मैला आँचल की लक्ष्मी से बलदेव के विषय में महंत साहब कहते थे– "शुद्ध विचार का आदमी हैं। संस्कार बहुत अच्छा है।" लक्ष्मी कहती है, "कालीचरण असल नियमी आदमी है। पर उसका स्वभाव जरा तीव्र है। लेकिन दुनिया के लोग अब इतने कुटिल हो गए हैं कि सीधे लोगों की गुज़र नहीं। फिर सुभाव में जरा कड़ापन तो सुपुरुष का लच्छन है।" अनैतिक व्यवहार के संदर्भ भी 'मैला आंचल' में बड़ी खूबी व स्वभाविकता से चित्रित हुए हैं मानसिक दुर्बलताओं आदि का यहाँ यथार्थ चित्रण हुआ है। फूलिया की रंगरलियाँ एवं अनैतिक जीवन के चित्रण, रमजूदास की स्त्री के कारनामे, अंध सेवादास की करतूत, मठ–जैसे पवित्र स्थल पर महंत रामदास व साधू–राक्षस नागबाबा और जोतखी जी की पत्नियों का व्यवहार आदि – ये सब नैतिक ढीलेपन तथा लोक–जीवन के स्थानीय आचार–विचारों के नहीं हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैला आंचल में सीधे–सादे लोग व आचार–विचार नहीं है। मेरीगंज के स्थानीय जीवन की ये विशेषताएँ हैं। दूराग्रहपूर्ण नैतिकता कहीं नहीं थोपी गई है। लोक जीवन का खुला चित्रण हुआ है।

रीति–रिवाज– लेखक ने स्थानीय जीवन के रीति–रिवाजों का भी चित्रण किया है। मैला आँचल में अँचल–विशेष के समग्र चित्रण को प्रस्तुत करने के लिए मेरीगंज के जन–जीवन के रीति–रिवाजों का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक एवं वस्तुनिष्ठ हुआ है। ये रीति–रिवाज किसी अंचल–विशेष के विशिष्ट सामाजिक जन–जीवन की गतिशीलता के परिचायक होते हैं, सामूहिक जीवन की पहचान होते हैं। 'मैला आँचल' में महंत द्वारा दिये गए भंडारे के समय– "सबसे पहले कालीथान में पूड़ी चढ़ाई जाती है, इसके बाद कोठी के जंगल की ओर दो पूड़ियाँ फेंक दी जाती है– जंगल के देव–देवी और भूतपिसाच के लिये। इसके बाद साधु और बांमन भोजन।" यह अंचल विशेष में दिये जाने वाले भंडारे सामूहिक भोज के अवसर पर प्रचलित सामाजिक रिवाज का उदाहरण है। इसके साथ अन्य अनेक रीति–रिवाजों का उल्लेख मैला आंचल में मिला है– जैसे–गौना, चुमौना, तिलक पर दान देने की रस्म, शादी–ब्याह पर सोहर गाने की रस्म, आदि का मैला आंचल में बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ भरपूर चित्रण मिलता है। रेणु में सत्य के प्रति आग्रह है। गाँवों की समस्याओं के प्रति वे सजग हैं।

शिक्षा की स्थिति– मेरीगंज अँचल–विशेष के जन–जीवन में शिक्षा के प्रचार–प्रसार का अभाव है। रेणु लिखते हैं– "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े–लिखे है– पढ़े लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़ने वालों की संख्या पंद्रह।" अशिक्षित होते हुए भी मेरीगंज के लोग सांसारिक बुद्धि वाले, अनुभवी, स्वार्थी और चालाक भी हैं। डॉ० प्रशान्त ममता को पत्र में लिखता है। "गांव के लोग बड़े सीधे हैं। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे तुम्हारे जैसे लोगों को दिन मे

पांच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मज़बूर हो जाओगी।" मेरीगंज के लोग अनपढ़ अज्ञानी होते हुए भी सांसारिक बुद्धि से होशियार एवं चालाक हैं। मैला आंचल के पात्रों में ममता एवं कमली पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ हैं।

आर्थिक दशा– मेरीगंज की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय है। गांव की लगभग सारी जमीन, तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, रामकिरपाल सिंध और खेलावन यादव के पास है। बाकी गांव वाले इन तीनों के पास मानो मजदूर की भांति हैं। संथालों से झगड़े के बाद तो सारे गांव की जमीन के इकलौते मालिक विश्वनाथ प्रसाद तहसीलदार ही हो जाते हैं। डॉ० प्रशान्त सेवा भाव से मेरीगंज आता है। गांव वालों की चिकित्सा के साथ–साथ वह मलेरिया रोग पर शोध भी करता है। वह देखता है कि यहाँ सात महीने के बच्चे को बथुआ और पाठ के साग पर पाला जाता है। "यहाँ के लोग सुबह को बासी भात खाकर, पाट धोने के लिए गंदे गड्ढों में घुसते हैं और करीब सात घंटे तक पानी में रहते हैं।" मज़दूरी करके पेट भरने वाले मज़दूरों की स्थिति तो और भी दयनीय है। "यहाँ के मज़दूरों को सवा रूपये रोज़ मज़दूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता। कपड़े के बिना सारे गांव के लोग अर्धनग्न हैं।" इस प्रकार मेरीगंज के तीन चार लोग ही धनवान हैं और पेट भर खाते हैं। बाकी सब गरीब एवं पिछड़ा हुआ अंचल है।

स्त्री–पुरुष सम्बन्ध– स्त्री पुरुष सम्बन्धों के सन्दर्भ में लेखक ने सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अनैतिक, रुग्ण और गर्हित प्रवृत्ति को ही अधिक अभिव्यक्ति दी है। गाँव के स्त्री–पुरुषों के गलत शारीरिक सम्बन्धों की उपकथाएँ 'मैला आँचल' शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट करती हैं। इन सम्बन्धों को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये एक विशिष्ट वर्ग में ही व्यवहृत होते हैं। सभी वर्गों में इस प्रकार के अनैतिक सम्बन्धों की स्थिति है– यहाँ तक कि डॉ० प्रशान्त भी इससे अछूते नहीं रहते। तहसीलदार की बेटी कमला उनके प्रति आकर्षित होती है। यह आकर्षण परस्पर आकर्षण में बदलता है विवाह से पहले ही कमला डॉ० प्रशान्त का गर्भ धारण करती है और जब घर में बात खुलती है और शिशु का जन्म होने वाला होता है, उस समय डॉ० प्रशान्त के नायकत्व की प्रतिष्ठा के लिए लेखक ने यह योजना अवश्य प्रस्तुत की है कि जेल से छूटने के पश्चात् कमला को अपनी पत्नी और उसके शिशु को अपना शिशु स्वीकार कर लेते हैं। इस स्वीकारोक्ति में स्त्री–पुरुष का यह सम्बन्ध विशेष रूप से गरिमायुक्त हो जाता है। अन्यथा अन्य स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में अशिक्षा, कुंठा, गलत संस्कारों और रुग्ण परिवेश की छाया ही अधिक परिलक्षित होती है। मठ की दासिन लछमी को सेवादास, रामदास, नागा बाबा सभी भोगना चाहते हैं लेकिन वह कांग्रेसी कार्यकर्त्ता बालदेव से अपने सम्बन्ध अनुभव करती है। फुलिया खलासी से विवाह रचाती है और 'पैटमान' तथा 'सहदेव मिसिर' से अनैतिक सम्बन्ध रखती है। यही स्थिति रामपियारिया और रधिया की है। चरखा संघ की मंगल देवी के बारे में अनेक किस्से प्रचलित हैं। नैतिक दृष्टि से अवांछित इन समस्त सम्बन्धों को निरूपित करने के पीछे लेख का उद्देश्य मेरीगंज के अंचल में व्याप्त रूग्णता को उभार–कर प्रस्तुत कर देना है। इस योजना के द्वारा लेखक

ने जैसे यह कहना चाहा है कि अशिक्षा, कुसंस्कार और असंस्कृत परिवेश में इस सबका होना बहुत स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक होते हुए भी यह गलत है। डॉ० प्रशान्त एक संस्कृत व्यक्ति है। यद्यपि यह गलती उससे भी होती है लेकिन अपने शिष्ट और परिष्कृत संस्कारों के माध्यम से वह अपनी इस गलती को सुधार लेता है। तब उसकी गलती, गलती न रहकर उसके लिए गरिमा प्राप्ति का साधन बन जाती है। सैक्स की प्रवृत्ति–स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण की यह भावना बहुत नैसर्गिक है, यह ठीक है। लेकिन जब यह सस्ती भूमिका पर व्यवहृत होती है तब उसकी उदात्तता समाप्त हो जाती है और जीवन गर्हित हो जाती है। स्त्री–पुरुष सम्बन्ध उच्चतर और स्वस्थ भूमिका पर प्रतिष्ठित होने पर ही आभामय बन पाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि अविकसित अँचलों में ही स्त्री– पुरुषों के बीच में रुग्ण सम्बन्ध बनते विकसित होते हैं। इन सम्बन्धों के पीछे जबकि लेखक ने आर्थिक कारणों की हल्की– सी झलक दी है, फिर भी मूलतः ये सम्बन्ध व्यक्तियों की रुग्ण प्रवृत्तियों से जुड़े हुए ही अधिक प्रतीत होते हैं। नगरीय जीवन भी इससे अछूता नहीं है। अमलेश शहरी पात्र है। वह शिक्षित है। लेकिन उसकी स्थिति यह है कि पहले वह नौकरानियों के पीछे पड़ा रहता था अब अपनी चचेरी बहन बीना के साथ उसके सम्बन्ध बनते हैं। रेणु ने वस्तुतः स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की इस जटिलता को अधिक विस्तार देकर, इस रुग्ण प्रवृति के प्रति अपनी चिन्ता प्रकट करनी चाही है। उन्होंने इन सम्बन्धों के नियोजन में कहीं रस नहीं लिया है। इन सन्दर्भों में लेखक की सफल तटस्थता ही लेखक की प्रवृत्ति और उसके आशय को भली–भाँति स्पष्ट कर देती है। कुछ समीक्षकों ने रेणु की इसलिए आलोचना की है कि स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर उन्होंने एकांगी दृष्टि ही अपनाई है और उसके स्वस्थ पक्ष को उपेक्षित कर दिया है। इसका स्पष्टीकरण इसी प्रकार दिया जा सकता है कि रेणु अपने प्रतिपाद्य के प्रति संकल्पबद्ध हैं। इस कृति में उनका आशय "मैला आँचल" को दर्शाना रहा है। इसीलिए स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के हीन पक्ष को प्रस्तुत करने में भी उन्होंने विशेष परिश्रम किया है।

1.3.3 धार्मिक समस्याएँ

धार्मिक पाखंड एवं आडम्बर

अविकसित समाज में धर्म के नाम पर पाखंड, आडम्बर, अंधविश्वास और व्यभिचार का प्रचार और प्रसार बहुत पुरानी परम्परा है। धर्म, चाहे वह किसी भी जाति और देश का हो, मूलतः मानवीयता के उदात्त आदर्शों का प्रवक्ता होता है लेकिन जब धर्म कुछ निठल्ले, स्वार्थी और हीन–प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों द्वारा एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया जाता है तब उसकी उदात्त भावना का तिरोहण हो जाता है और उसकी आड़ में अनेक विसंगतियाँ पनपने लगती हैं। भारतीय समाज में बहुत पहले से धर्म का इसी प्रकार का व्यवसाय होता आया है। यह धार्मिक पाखंड अपने सर्वाधिक गर्हित रूप में ग्रामीण अंचलों में परिव्याप्त हुआ परिलक्षित होता है। 'मैला आँचल' में महन्तों, सन्तों और ज्योतिषयों के चरित्र उद्‌घाटन द्वारा लेखक ने धर्म के इसी गर्हित

स्वरूप का परिचय देना चाहा है। महंत सेवादास, रामदास, लरसिंघदास, बूढ़े जोतिखी (ज्योतिषी) नागा बाबा – ये सभी चरित्र धार्मिक पाखंड के नामांकित नमूने हैं। महंत सेवादास ने लक्ष्मी कोठारिन को अपने मठ में दासी के आवरण में रखैल बनाकर रखा है। "महंत जब लक्ष्मी को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान एक ही कपड़ा पहनती थी। कहाँ वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध। रोज रात में लक्ष्मी रोती थी– ऐसा रोती कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए।" सेवादास की भाँति ही रामदास भी व्यभिचारी ही है। इसी लक्ष्मी को लेकर सेवादास की बसुमतिया मठ के महंत के साथ कानूनी लड़ाई हुई। इसमें सेवादास विजयी हुआ और लक्ष्मी उसको मिल गई। सेवादास के वकील ने उसको समझाकर कहा था कि 'इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा और महंत ने उसे विश्वास दिलाया था कि लक्ष्मी हमारी बेटी की तरह रहेगी।' पर मठ पर लाते ही किशोरी लक्ष्मी को उसने अपनी दासी बना लिया। इतना ही नहीं, इस धूर्त और स्वार्थ–लोलुप महंत के पाखंड की चरम परिणति इस बात को लेकर है कि एक ब्रह्मचारी को धर्म भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे पर है।

महंत सेवादास का सेवक रामदास भी अपने स्वामी से कम पाखंडी नहीं है। सेवादास की मृत्यु के पश्चात् मेरीगंज मठ की महंती उसे मिलती है। वह सेवादास का एकमात्र चेला है। रामदास के लिए भी महंती प्राप्त करना धर्मप्राण और लोक–सेवा में रत जीवन व्यतीत करना नहीं है बल्कि सुख–सुविधा और विलास को भोगना है। लक्ष्मी को भोगने की इच्छा उसके मन में भी बलवती होने लगती है, "वह लक्ष्मी को अपने निकट बुलाने लगता है– लक्ष्मी जरा इधर आना तो।" अपने इस कुकर्म में वह सफल नहीं हो पाता, यह बात दूसरी है। लेकिन लक्ष्मी को भोगने और भ्रष्ट करने का उसका यह प्रयास हमारे मठों–मन्दिरों में व्याप्त पाखंड और व्यभिचार को अभिव्यक्त करने में पर्याप्त सक्षम है। रामदास के प्रति लक्ष्मी का व्यवहार उसके लिए चेतावनी है। वह जानता है कि वह नाम का महंत है। "................. वह समझ गया है कि यदि इज्जत के साथ बैठकर दूध–मलाई भोग करना हो तो लक्ष्मी को जरा भी अप्रसन्न नहीं किया जाये। ......यदि एक दासिन रखने का हुकुम लक्ष्मी दे दे तो.......।" रामदास की इस प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति देकर लेखक ने मठों–मन्दिरों में प्रतिष्ठित मोटे पेट वाले महंतों–पुजारियों में व्याप्त व्यभिचार की जैसे पोल खोलकर रख दी है।

इसी सन्दर्भ में एक और चरित्र की निर्मिति हुई है। यह चरित्र है लरसिंघदास। महंत सेवादास के निधन के बाद नये बनने वाले महंत (रामदास) को चादर–टीका देने के लिए आने वाले आचारणगुरू के आने की सूचना लेकर मेरीगंज में आता है तो मेरीगंज मठ पर केवल एक रात रहने के बाद उस पर महंती का मोह सवार होने लगता है। मेरीगंज मठ की सम्पत्ति विशाल है। "नौ सौ बीघे की काश्तकारी। कलमी आम का बाग। दस बीघे में केले की फसल। गायें, भैसे। और इन सबसे ऊपर लक्ष्मी दासिन।"

'कासी' से आए आचारजगुरु नागा बाबा है जो सभी मठों के नेता हैं। वे लक्ष्मी और रामदास से

भद्दी–भद्दी गालियों के साथ बात करते हैं। नागा बाबा सबूत के अभाव में रामदास को महंती का टीका नहीं देना चाहते। लक्ष्मी क्योंकि सेवादास की रखैलिन थी, सो अब वह मठ में नहीं रह सकती। नागा बाबा के आदेशों के विरुद्ध कोई फरियाद नहीं हो सकती। फिर भी लक्ष्मी अपना दुखड़ा रोने के लिए गाँव के सम्भ्रान्त लोगों के पास जाती है। 'साधु–सती, बाबू–बबुआन तथा दास– सेवकान' से मठ का शामियाना भरा पड़ा है.... मेरीगंज मठ की महंती लरसिंघदास को दे दी जाती है। सब लोग उस पर हस्ताक्षर करने लगते हैं। लेकिन कागज का यह टुकड़ा जब हस्ताक्षर के लिए कालीचरन के पास आता है तो वह इस कागज़ पर लिखी दलील का विरोध करता है। वह ज़ोर देकर कहता है कि रामदास इस मठ का चेला है अतः महंती उसे ही मिलनी चाहिए। नागा बाबा उसे भी गाली देकर चुप कराने की कोशिश करते हैं। लेकिन कालीचरन मार–पीट पर उतर आता है। आचारजगुरु नागा बाबा का गाँजे का नशा उतर जाता है आचारजगुरु कालीचरण के निर्देशों के अनुसार रामदास को ही महंती का टीका देते हैं। इस सम्पूर्ण योजना के माध्यम से लेखक ने धार्मिक विश्वासों के खोखलेपन और धर्म तथा आस्था के उस पाखंड पर करारा व्यंग्य किया है जो तर्क और साहस के सामने अधि
ाक समय तक खड़ा नहीं रह सकता।

अशिक्षितों और भोले–भाले ग्रामीणों के बीच इस पाखंड–प्रसार में ज्योतिषी कहलाने वाले लुटेरों का भी कम योग नहीं है। मेरीगंज में भी एक बूढ़े जोतखी जी हैं जो हमेशा भविष्य में किसी अहित की चिन्ता से व्यग्र रहते हैं। भविष्य की चिन्ता बतलाकर अपना उल्लू सीधा करना और ग्रामीणों में भय को बनाए रखना ही जैसे इनका कर्त्तव्य हैं इस वर्ग के लोगों की भविष्यवाणियों में कभी कोई आस्था रचनात्मकता का स्वर नहीं होता। उनमें हमेशा किसी न किसी प्रकार के अनिष्ट की ही आशंका होती है– 'कोई माने या न माने, हम कहते हैं कि एक दिन इस गाँव में गिद्ध–कौआ उड़ेगा लक्षण अच्छे नहीं हैं। गाँव का ग्रह बिगड़ा हुआ है।"

लेखक ने इन चरित्रों के माध्यम से यह बतलाना चाहा है कि हमारे समाज में एक वर्ग ऐसा है जो अपने स्वार्थ के लिए एक ओर समाज में होने वाली प्रत्येक प्रकार की प्रगति का विरोध करता है और दूसरी ओर धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की विसंगतियों और पाखंडों को बढ़ावा देकर अधर्म फैलाता है और चारित्रिक पतन का कारण बनता है। ये सन्त और महन्त कहलाने वाले लोग वैयक्तिक कुंठाओं के शिकार होते हैं और भोली जनता का शोषण करके यह अपने लिए दूध–मलाई बटोर लेते हैं। सामाजिक हित से इनका कोई सरोकार नहीं होता लेकिन जन–सम्मत बनने और उनके बीच प्रतिष्ठित होने के लिए इन्हें त्याग और साधना का मुखौटा पहनना पड़ता है। अशिक्षित जनता इस मुखौटे में छिपे हुए इनके असली रूप को नहीं देख पाती और इसलिए पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसका शोषण होता रहता है। परिणामस्वरूप नैतिक रूप से भ्रष्ट व्यवस्था की यह परम्परा चलती रहती है। लेखक ने बड़े सूक्ष्म संकेतों के माध्यम से यह निर्दिष्ट करना चाहा है कि धार्मिक पाखंड की इस प्रवृत्ति को जन–चेतना और शिक्षा के विकास द्वारा रोका जा सकता है।

जातिगत वैमनस्य –

'मैला आँचल' में ग्रामीण जीवन में व्याप्त जातिगत वैमनस्य का चित्रण भी हुआ है। मेरीगंज के लोग जातीय वर्गों में बंटे हुए है। राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी मन–मुटाव और झगड़े होते आए हैं। ब्राह्मण इन दोनों के बीच दुश्मनी को बढ़ाने और स्वयं तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते रहे हैं। मेरीगंज में हर जाति में हर स्तर पर जातिगत वैमनस्य है। कुछ दिनों से यादवों के दल ने भी जोर पकड़ा है। लेकिन जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी, उल्टे वे समय–समय पर यदुवंशियों के क्षत्रित्व को व्यंग्यविद्रूप के बाणों से उभारते रहे। ब्राह्मण टोली के पण्डित कायस्थों के खिलाफ हमेशा राजपूतों को चढ़ाते रहे हैं। कायस्थ टोली के लोगों से राजपूतों की अनबन हो जाने पर ब्राह्मण टोली के पण्डित उन्हें समझााते हैं– "जब–जब धर्म की हानि हुई है, राजपूतों ने ही उनकी रक्षा की है। घोर कलिकाल उपस्थित है राजपूत अपनी वीरता से धर्म को बचा लें। इस प्रकार अपने से समर्थ दो जातियों को परस्पर लड़ाकर ब्राह्मण बौद्धिक धूर्तता से अपनी जातीय सुरक्षा के प्रयत्न में लगे रहते हैं। जातीय स्तर पर गाँवों में स्वार्थपरता बढ़ती जा रही है। प्रत्येक जाति का सम्पन्न और समर्थ व्यक्ति अपने नेतृत्व को स्थापित करना चाहता है और साथ ही वह दूसरों के विकास में अवरोध भी उत्पन्न करता चलता है। जोतखी काका, खेलावन यादव, ठाकुर रामकिरपाल सिंह, विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक मेरीगंज के जातीय नेता हैं। इन्होंने अपने स्वार्थ साधन के प्रयास में पूरे गाँव भर के जीवन में एक विश्रृंखलता उत्पन्न कर रखी है। इनके अतिरिक्त कांग्रेसी कार्यकर्त्ता बालदेव का चरित्र भी जातीय भावना से लबरेज है। वह सोचता है– "वह अब अपने गाँव में रहेगा। अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। जाति बहुत बड़ी चीज है। ....जाति की बात ऐसी है कि अब सभी बड़े–बड़े लीडर अपनी–अपनी जाति की पार्टी में हैं।" जातीय भावना को प्रस्तुत करने में लेखक ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। इस प्रस्तुतीकरण में जातीय जीवन के अनेक चित्र भिन्न–भिन्न स्तरों पर प्रकट हो गये हैं जिससे जीवन में विष बेलि की भाँति व्याप्त जातिगत दूषण और उसके शोषक परिणामों को स्पष्ट रूप से देखने में सुविधा होती है। गाँव में अस्पताल बनने की प्रसन्नता में महंत साहब भंडारा खोलते हैं। गाँव भर को दावत खिलाई जाएगी, लेकिन इस सामूहिक भोज को ब्राह्मण नकार देने की बात कहते हैं। ब्राह्मणों ने कह दिया है कि यदि उनके लिए अलग प्रबन्ध न हुआ तो सरब संघटन में नहीं खाएँगे। उधर सिपैहिला टोली के लोगों से भी मीनमेख निकाल कर बखेड़ा करने की आशंका है। वे ग्वाले लोगों (यादव जाति) के साथ एक पंगत में नहीं खाएँगे। जातिगत ऊँच–जीच की यह भावना, जो सामूहिक प्रसन्नता के अवसर पर भी लोगों को एक साथ भोज तक के लिए परस्पर नहीं मिलने देती, हमारी एकता के प्रयास में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। लेखक ने जातिगत विद्वेष की वस्तुस्थिति के अनेक चित्र प्रस्तुत करके प्रबुद्ध चेतना को इस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करना चाहा है। गाँव में व्याप्त जातिगत विद्वेष की यह भावना भोज जैसे अवसरों पर ही परिलक्षित नहीं होती, बल्कि पंचों और पंचायत के स्तर तक व्याप्त दिखलाई पड़ती है। "पंचायत में भी जातिगत भाव अब गहरा पैठा

हुआ है। यादव और राजपूतों में वहाँ भी एक–दूसरे को होशियारी के साथ नीचा दिखलाने के लिए चालें चली जाती हैं।" सिंघजी यादव टोली के 'बदमाशों' का सीना तानकर चलना बर्दाश्त नहीं कर सकते। इतना ही नहीं यहाँ के लोग बाहर से आए डॉ० प्रशान्त की जाति की टोह भी लेना चाहते हैं। डॉ० प्रशान्त शुद्ध और उदात्त मानवीयता से प्रेरित हो मेरीगंज में आए हैं। लेकिन लोग उनकी भी जाति जानने के इच्छुक हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में जाति बहुत बड़ी चीज है। जात–पात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। "सिर्फ हिन्दू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण है? कौन ब्राह्मण! गोत्र क्या है? मूल कौन है? ....शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना, लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता।" ब्राह्मण गाँव में सबसे कम हैं लेकिन अपने को तीसरी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करके वे अनेक अवसरों पर अपनी मनचाही करवा लेते हैं। फुलिया के प्रसंग को लेकर जब पंचायत होती है तब ब्राह्मण लोग राजपूतों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे ब्राह्मणों का साथ दें। अगर राजपूत ऐसा नहीं करते तो वे ग्वालों को भी राजपूत मान लेंगे। अर्थात् इस तरह राजपूतों के सामाजिक स्तर को नीचे गिरा देंगे।

वस्तुतः यह बात बड़ी विचित्र लगती है कि इस संक्रान्तिकाल में एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था और दूसरी ओर स्वयं उसमें नगर ही नहीं ग्राम्य और आंचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विष बीज विकास पा रहा था जिससे व्यक्ति–व्यक्ति के बीच मतभेद की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति–समाज जातिगत आधार पर अलग–अलग समूहों में विभाजित और विच्छिन्न होकर परस्पर द्वेष, ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढ़ाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति, एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था। रेणु ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ इस विरोधाभास को लक्षित किया है।

वर्गीय शोषण की समस्या–

मेरीगंज के अचंल को केन्द्रीय भूमि बनाकर लेखक ने हमारे सामाजिक जीवन में व्याप्त वर्गीय शोषण को भी अभिव्यक्ति दी है और यह प्रस्थापित करना चाहा है कि अपने समाज में मात्र सामान्य व्यक्ति को जीवन निर्वाह के निमित्त कितनी विषमताओं और अन्याय के बीच रहना पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग द्वारा किस प्रकार उसका शोषण होता है और किस प्रकार शिक्षा, संस्कारों और साधनों के अभाव में शेषित होते रहने के अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प नहीं रह जाता। प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य जीते रहने के कारण शोषित होने और अन्याय सहते रहने की एक परम्परा–सी उसके रक्त में घुल–मिल जाती है। मेरीगंज के अंचल में शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व संथाल जाति के लोग करते हैं। "इनके परिश्रम से मेरीगंज की सैंकड़ों बीघे परती धरती आबाद करवा ली गई है। लेकिन फिर भी इन्हें गाँव वालों के साथ नहीं बसने दिया जाता। ये लोग निकटवर्ती जंगलों में ही बसते हैं।" नीलहे साहबों के नील के हौज़ों में भी इन्हीं मूक इन्सानों का

पसीना बहता रहता था। "फिर भी इनके पास अपने झोंपड़े बाँधने के लिए अपनी ज़मीन नहीं है। ये लोग हल में जुते बैल हैं जो दूसरों के लिए काम करते हैं। उनका किसी वस्तु पर अपना कोई अधिकार नहीं होता। वर्षों से वहाँ रहने के बाद भी उन्हें मेरीगंज का नहीं माना जाता। वे बाहरी आदमी हैं।" और इसी आधार पर उन्हें अपने उस गाँव में जिसकी ज़मीन को उर्वर बनाने में उनकी पीढ़ियाँ खप गई है जब–तब चालान कर दिया जाता है। उनकी फरियाद को सुनने वाला कोई नहीं है। जब भी वे अन्याय और शोषण के खिलाफ अपने सर उठाने का प्रयास करते हैं और विद्रोह की दिशा में बढ़ते हैं, उन्हें ज़ोर–जुल्म और कानून दोनों तरह से कुचल दिया जाता है। सेशन केस में उन्हें आजीवन कारावास की सजा होती है। न्याय और न्यायालय भी धनवानों की सम्पत्ति है।

संथालों की ही भांति गांव में रहने वाले मज़दूरों की स्थिति है। उनका भी नियमित शोषण होता है। उनको सवा रुपये रोज़ मजदूरी मिलती है जिसमें एक व्यक्ति का पेट भी नहीं भरता। पाँच साल पहले पाँच आने रोज मिलते थे और उसी में घर के लोग खाते थे। महंगाई बढ़ रही है लेकिन उस अनुपात में खेत–मजदूर को कुछ नहीं मिल पा रहा है। लेकिन इस लाभ का विभाजन मजदूरों के बीच नहीं हो पाता। कपड़े के अभाव में ये लोग अर्धनग्न रहने लगे हैं। औरतें आँगन में काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेटकर काम चला लेती हैं। "गाँव में उनका जीना दूभर हो गया है। जमींदार और धनी हो गए हैं। लेकिन मजदूर दिन–प्रतिदिन गरीब होता जा रहा है। इसलिए मात्र दो रुपये रोज मजदूरी पाने के लिए वह अपना गाँव छोड़कर शहर के जूट–मिलों की ओर भागने लगता है।"

जमींदारों और शासन के अधिकारियों के अतिरिक्त गाँव के महाजन भी सामान्य वर्गीय व्यक्ति का शोषण करते हैं। सहदेव मिसर गाँव का महाजन है। वह किसानों–मजदूरों की सादे कागज पर टीप ले लेता है और फिर उसके हाथ में मनमानी करने का अधिकार आ जाता है। इस प्रकार ग्रामीण को इन सब प्रकार के शोषणों के बीच रहते हुए तिल–तिल नष्ट होने के लिए विवश होना पड़ता है। लेखक ने अपने डॉक्टर नायक के माध्यम से इस शोषित वर्ग के प्रति अनेक अवसरों पर संवेदना प्रकट की है। एक स्थान पर वह कहता है– 'खेतों में फैली हुई काली मिट्टी की संजीवनी इन्हें जिलाए रखती है। शस्य, श्यामला, सुजला–सुफला .... इनकी माँ नहीं? अब तो शायद धरती पर पैर रखने का भी अधिकार नहीं रहेगा।'

लेकिन गरीबी और जहालत के बावजूद शोषण की प्रक्रिया को अनिश्चित समय के लिए नहीं सहा जा सकता। दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति भी लगातार होने वाले अन्याय के विरोध में एक न एक दिन अपना सर उठा ही लेता है। उनके बीच में से ही कोई व्यक्ति निकल आता है जो उनको सम्मान के साथ खड़े होने की प्रेरणा देने लगता है। 'मैला आँचल' में यह कार्य कालीचरन द्वारा सम्पन्न हुआ है। वह गाँव भर के हलवाहों, चरवाहों और मजदूरों का नेता है। कालीचरन उनके दिल में आग लगाना चाहता है। वह चाहता है ये मज़दूर

लोग पीढ़ियों से अन्याय को सह रहे हैं, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनें। इस तरह अन्याय और शोषण के प्रति गरीब ग्रामीणों में आक्रोश उत्पन्न करके वह बेज़मीन लोगों को धनी जमीदारों के खिलाफ एकजुट करता है वह गरीब किसानों को बतलाता है कि 'ये पूँजीपति और जमींदार खटमलों और मच्छरों की तरह शोषक हैं। .... खटमल। इसीलिए बहुत से मारवाड़ियों के साथ 'मल' लगा हुआ है।' भले ही इस चेतना के संघर्ष में उनको और अधिक कुचला जाता है, भले ही उनमें से कुछ को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है, भले ही कुछ विद्रोही जीवन भर के लिए जेल के भीतर धर दिए जाते हैं लेकिन फिर भी इस पूरी घटना में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दलित से दलित और शोषित से शोषित व्यक्ति अनन्तकाल के लिए दलित और शोषित नहीं रह सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने मेरीगंज के अँचल में व्याप्त उन हीन, अस्वस्थ और निष्प्राण रूढ़ियों के अनिष्टकारी परिणामों को लक्षित किया है जिससे मनुष्य की महिमा पर आघात लगता है और स्वस्थ जीवन यापन की संभावनाएँ धूमिल हो जाती हैं। इन बिन्दुओं का सप्रसंग विवेचन करते हुए लेखक ने दानवीयता के प्रतीक इस शोषित और उपेक्षित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना प्रस्तुत की है और उसकी यह अपेक्षा रही है कि मनुष्य होने के नाते इन लोगों को भी अज्ञान, शोषण और अन्याय के गर्त से बाहर आकर आत्म–सम्मान और सामान्य सुविधाओं और अवसरों की खुली हवा में साँस लेने का अवकाश मिलना चाहिए जिससे समाज में सही व्यवस्था की सहज प्रतिष्ठा हो सके।

अंधविश्वास –

मेरीगंज के निवासी अंधविश्वासी हैं। उन्हें भूत–प्रेत, डायन, जादू–टोना आदि मिथकों में विश्वास है। मंत्र–तंत्र, ओझाई पर भी इस अंचल के वासी विश्वास करते हैं। मेरीगंज की चुड़ैल प्रेतनी का जिक्र देखिये–कोठी के जंगल में तो दिन में भी सियार बोलते हैं। लोग उसे भूतहा जंगल कहते हैं। ततमा टोले का नन्दलाल एक बार ईंट लाने गया था। ईंट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया। जंगल में से एक प्रेतनी निकली और नन्दलाल को कोड़े से पीटने लगी। साँप के कोड़े से नन्दलाल वहीं ढेर हो गया। बगुले की तरह उजली प्रेतनी।" लोगों का विश्वास है कि कमला नदी के वरदान से जन्मी कमला को विवाह करके दूसरे गांव भेजना कमला माता को पसंद नहीं है। कमला मैया कमला को अपने से दूर, अलग नहीं करना चाहती ऐसी अफ़वाह फैल जाती है। सारे गांव में जोतखी जी के कहने कर हीरू मान जाता है कि उसके बेटे को पारवती की माँ डायन ने ही मार डाला है। वह रात में पारवती की माँ को डायन समझ कर मार डालता है।

खलासी अपनी ओझाई दिखाता है, वह भूत–प्रेत को अपने मंत्र–तंत्र के बल पर दूर करता है। गांव वालों को एक नए किस्म के भूत, बानर–भूत का परिचय देता है। डॉ० प्रशान्त के कमरे में सांप दिखाई देता

है तो कमला समझती है कि वह डायन द्वारा भेजा गया है इसी प्रकार के अंध–विश्वास के कारण जोतखी जी अपनी पत्नी को खो देते हैं। ऐसे अनेक अंधविश्वासों का चित्रण हुआ है जिसके फलस्वरूप अँचल–विशेष का जीवन उन अज्ञानों में साकार हो उठता है।

1.3.4 राजनीतिक समस्याएँ

'मैला आँचल' उपन्यास का आरंभ ही राजनीतिक पृष्ठभूमि से होता है और उपन्यास का अंत भी राजनीतिक घटनाक्रम के एक दुखांत मोड़ से होता है। उपन्यास में राजनीतिक घटनाक्रम की अनेक परतें व अनेक स्तर चित्रित हुए है। इस अर्थ में 'मैला आँचल' उपन्यास को गहरे रूप में राजनीतिक उपन्यास भी कहा जा सकता है। उपन्यास का आरंभ सन् 1946 के समय से होता है और अंत अप्रैल 1948 के आसपास। सन् 1946 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत कांग्रेसी मंत्रीमंडल बन गए थे। 15 अगस्त सन् 1947 के विभाजन और सत्ता–परिवर्तन के उपरांत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से प्रत्यक्षतः हट जाने, किंतु शासन–व्यवस्था उसी ब्रिटिश व्यवस्था के रूप में बनी रहने की स्थिति में स्वातंत्र्योत्तर शासन–व्यवस्था का आरंभ हुआ। दोनों ही स्थितियाँ एक संक्रमणकालीन दौर की उपज हैं और इस संदर्भ में यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ये हमारे देश की राजनीति के व्यवस्थागत रूप को स्पष्ट करने वाली हैं। उपन्यास का आरंभ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था के जनमानस में अंकित बिंब से होता है। उपन्यास का आरंभिक वाक्य ही इस बिंब को शब्दों में बाँधता है, "मलेटरी ने बहरा चेथरू को गिरफ्तार कर लिया है।"

ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था –

ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था का जो पहला लक्षण उपन्यास के आरंभ में ही चित्रित हुआ है, वह है– औपनिवेशिक शासन की भयंकर दमन–नीति। इस दमन–नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आतंक था कि मलेटरी के आने की अफवाह मात्र से गाँव वाले स्वतंत्रता–सेनानी बालदेव को रस्सी से बाँध लेते हैं अर्थात् दमन की नीति का आतंक जनमानस की मानसिक गुलामी का ही दूसरा रूप है। जनमानस व जन को शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम बनाना– यह ब्रिटिश औपनिवेशिक दमन नीति का मुख्य उद्देश्य था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था अपने इस लक्ष्य में काफी सफल रही।

उपनिवेशवादी दमन–व्यवस्था का एक रूप है– सेना या पुलिस द्वारा यातना देना, जेल भेजना या अन्य प्रकार से दंडित करना। इसका जनमानस पर प्रतिबिंब तो उपन्यास के आरंभ में ही मिल जाता है, लेकिन इसके अनेक ठोस उदाहरण उपन्यास में सर्वत्र मिलते हैं, जैसे– स्वतंत्रता–सेनानी बालदेव जब गाँव वालों को अपनी पीठ उघाड़ कर दिखाते हैं, तो न सिर्फ सामान्य–जन वरन् देश के स्वतंत्रता–सेनानियों पर भी कैसी–कैसी यातनाएँ ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पुलिस द्वारा दी जाती थीं, वे चित्रित होती हैं।

ब्रिटिश शासन–व्यवस्था के चित्रण के साथ–साथ रेणु ने अधिक सकारात्मक रूप में तथा काफी विस्तार से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध तथा बाद में सन् 1948 के सत्ता–परिवर्तन के बाद देशी हाथों से परिचालित उसी व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे जन संघर्षों को भी चित्रित किया है। कांग्रेस के निः स्वार्थ व ईमानदार कार्यकर्ताओं के रूप में 'डेढ़ हाथ' के बावनदास व बालदेव का अधिक उल्लेख हुआ है। दूसरी ओर उन दिनों कांग्रेस पार्टी के अंग के रूप में, लेकिन अधिक जुझारू संघर्ष का बिगुल बजाने वाले दल के रूप में सोशलिस्ट पार्टी का भी उपन्यास में चित्रण है। जयप्रकाश नारायण इस दल के नेता थे और वे बिहार के ही थे, इसलिए उनका जिक्र भी ससम्मान हुआ है। गाँव में सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व कालीचरन यादव सँभालता है। उपन्यास में कालीचरन वासुदेव को समझाता है, "यही पाटी असल पाटी है। गरम पाटी है। 'किरांतीदल' का नाम नहीं सुना था ?...... बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगतसिंह, यह गाना नहीं सुने हो? वही पाटी है। इसमें कोई लीडर नहीं सभी साथी हैं, सभी लीडर हैं।"

भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में सक्रिय राजनीतिक दलों व शक्तियों की मानसिकता क्या थी, आदिवासी समुदाय के प्रति संवेदनशीलता से उपनिवेशवाद व स्वराज की सीमा–रेखा के इस ओर घटी एक घटना तथा सीमा–रेखा के दूसरी ओर हुए अदालती निर्णय से अंकित कर दिया है। उपन्यास के अंत तक आते–आते ईमानदार कांग्रेसी कार्यकर्ता बावनदास का हश्र भी संथाली आदिवासियों जैसा ही होता है। 'रेणु' ने 'मैला आँचल' में राष्ट्रीय स्वाधीनता–आंदोलन में सक्रिय राजनीतिक शक्तियों का चरित्र अत्यंत सटीक और वस्तुगत ढंग से अंकित किया है।

1.4 सारांश

सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक भूमिका पर 'मैला आँचल' में आंचलिक क्षेत्रों की टुच्ची राजनीति, जातिगत भेदभाव और वैमनस्य, धार्मिक पाखण्ड, श्रमिक–कृषक संथालों पर ज़मीन मालिकों के अत्याचार, भोली–भाली अशिक्षित जनता को ठगने वाले पण्डित और ज्योतिषी, मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा नेता किस्म के लोगों के दोमुहेपन आदि की प्रस्तुति तथा इस प्रकार आंचलिक परिवेश के यथार्थ का रेखांकन बड़ी ईमानदारी से हुआ है। इससे शोषण के विविध रूपों और बिन्दुओं तक पाठक की दृष्टि जाती है और उसे इस बात का तल्ख एहसास होता है कि हमारे देश के विभिन्न अंचलों में रहने वाले लोग किस प्रकार के दुर्दिनों के बीच अपनी जिन्दगी जी रहे हैं।

1.5 कठिन शब्द

(1) वैविध्य

(2) बंध्या

(3) वस्तुनिष्ठ

(4) रुग्ण

(5) प्रतिपाद्य

(6) सरोकार

(7) अवरोध

(8) प्रतिष्ठित

(9) धूर्त

(10) आघात

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मैला आँचल की सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

2. मैला आँचल उपन्यास समाज की कौन सी मुख्य समस्या को उद्‌घाटित करता है, स्पष्ट कीजिए।

____

____

____

____

3. मैला आँचल में व्यक्त धार्मिक समस्याओं का विवेचन कीजिए।

4. मैला आँचल उपन्यास में व्यक्त राजनीतिक समस्याओं को उद्‌घाटित किया गया है। स्पष्ट कीजिए।

5. आँचलिकता के आधार पर मैला आँचल की समीक्षा कीजिए।

1.7 पठनीय पुस्तकें

1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन

4. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास – उमेश शास्त्री
5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी
6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा
7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा
8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल
9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर
10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा
11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान
12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना
13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

– – – – –

मैला आँचल की लोक संस्कृति

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 मैला आँचल की लोक संस्कृति

2.3.1 लोकगीत और प्रकृति

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- मैला आँचल में व्यक्त लोक संस्कृति।
- किसी अँचल विशेष की संस्कृति को जानने के लिए उसके लोक जीवन से जुड़ना आवश्यक है।
- अँचल विशेष की लोक संस्कृति विशिष्ट और महत्वपूर्ण होती है।

2.2 प्रस्तावना

अँचल विशेष की लोकसंस्कृति विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण होती है। लोकसंस्कृति की दृष्टि से 'मैला आँचल' हिन्दी का विशिष्ट उपन्यास है। आंचलिक जीवन के संयोजन में लेखक ने लोक–सांस्कृतिक तत्त्वों को वहाँ के उत्सवों और लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया है। विशिष्ट लोक संस्कृति ही किसी अँचल विशेष की विशिष्टता की परिचायक होती है और आँचलिक उपन्यासकार इसी विशिष्ट आँचलिक संस्कृति के माध्यम से अँचल–जीवन की अंतर्धारा को पकड़ने की कोशिश करता है। निश्चित ही फणीश्वरनाथ रेणु लोकसंस्कृति के महानायक हैं। अपने अँचल की लोककथा, लोकगीत, लोकभाषा, लोककला से रचबस कर उनका व्यक्तित्व तैयार हुआ है। रेणु ने 'मैला आँचल' में वहाँ की लोक संस्कृति का जो चित्र उकेरा है वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस मैले परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए उस परिवेश के बीच जीने वाले लोगों के चरित्रों की, उनके क्रिया कलापों–विश्वासों–व्यवहारों की सहायता ली है। लेखक का लक्ष्य इस सबके द्वारा मूलतः परिवेश पर रोशनी डालना रहा है। इस को गहरा और वास्तविक रंग देने के लिए उन्होंने वहां के सामान्य जीवन के अनेक व्यवहारों और घटनाओं की योजना की है। उनकी इस योजना में वास्तविकता के रंग भरे गए हैं जिससे आँचलिक जीवन का सफल संयोजन हो सका है। आँचलिक जीवन के संयोजन में लेखक ने लोक सांस्कृतिक तत्त्वों को वहां के उत्सवों और लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'मैला आँचल में लोकगीत भउजिया, बारहमासा, चैती, लोकनाट्य जाट जट्टिन, लोक नृत्य बिदापत नाच, होली वर्णन आदि औपन्यासिक कथा के रक्त में घुल मिल गए हैं .... शादी ब्याह, पर्व, त्यौहार और जन्म मृत्यु के अवसरों में लोक जीवन किस प्रकार हंसता, रोता–गाता है उस की अकुन्ठ झांकी 'रेणु' ने पाठकों को दिखाई है। देशभक्ति के गीत, निरगुन, समदाउनी, सारंगा– सदावृज, आल्हा लेरिक, वेज्जेभान सब मिलाकर देहात का समा बाँध देते हैं।

रेणु 'मैला आँचल' में बड़ी सूक्ष्म कलात्मक कुशलता से इन लोक कथाओं के पात्रों को उपन्यास के पात्रों से जोड़ देते हैं। कथा के मध्य खलासी जी का मोरंगियां गांजा लाने का प्रयोजन रमजू की स्त्री के लिये कंगन का उपहार, फुलिया के चुमौने की बात, बैसवारी में सहदेव मिसर का हाल। तंत्रिमा टोली के रमजूदास की स्त्री अपनी टोली की सरदारिन है। "सब बबुआन से उस की मुहाँ है।" महंगूदास के साथ बातचीत व झगड़ा और फिर एक दूसरे के परिवार तथा संबंधियों के गढ़े मुर्दे खोदने के प्रसंग आदि उपन्यासकार के शिल्प चातुर्य के नमूने हैं। किस प्रकार गीत कथा के सारंगा–सदाव्रिज उपन्यास के पात्रों खलासी–फुलिया से जुड़ जाते हैं यह कमाल रेणु की कला ही कर सकती है।

आँचलिक परिवेश को व्यक्त करने के लिए लोक गीतों के संयोजन और प्रकृति निरूपण से

बड़ी सहायता मिलती है। इनसे अँचल का व्यक्तित्व उभरता है और सहजता प्रतिष्ठित होती है। साथ ही, जहाँ प्रकृति निरूपण से अँचल विशेष के भौगोलिक परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है, वहीं लोकगीतों में उस अँचल का जन जीवन झलकता है। अँचल के लोक व्यवहार, उत्सव–पर्व, संस्कृति, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता और मानवीय सम्बन्धों की झाँकी लोक गीतों के माध्यम से जितनी प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त होती है, उतनी सम्भवतः भाषा शैली के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं।

2.3 मैला आँचल की लोक संस्कृति

'मैला आँचल' किसी व्यक्ति विशेष की विशिष्ट अभिव्यक्ति न होकर एक आँचलिक परिवेश की लगभग सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। आंचलिक कृति के लिए यह स्थिति बहुत आवश्यक और एक शर्त जैसी है। इसमें परिवेश का प्रस्तुतीकरण ही लेखक का मुख्य आशय रहा है। 'मैला आँचल' का यह चित्र यहाँ का परिवेश है जिसको सहानुभूति, और प्रतिबद्धता के साथ लेखक ने यहाँ के व्यक्ति चरित्रों, संस्कारों, संस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों और वातावरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

2.3.1 लोकगीत और प्रकृति

'मैला आँचल' में लोकगीतों का प्रचुर उपयोग हुआ है। मैथिली के इन लोकगीतों का विस्तृत संयोजन एक ओर जहाँ लेखक की भाव–प्रवणता, रुचि और संवेदना को प्रकट करता है, वहीं इनके माध्यम से मेरीगंज के जन–जीवन के विविध पक्षों को भी बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह ठीक है कि हिन्दी पाठक देश के विशाल क्षेत्र में फैला हुआ है और मध्य भारत अथवा उत्तरी भारत का पाठक अथवा अहिन्दी प्रदेशों का हिन्दी पाठक इन गीतों के रस और भाव ग्रहण में, कठिनाई अनुभव कर सकता है। फिर भी थोड़े से प्रयास भर से इन गीतों के मूल भाव तक पहुँचा जा सकता है और वहाँ के जनजीवन को जाना जा सकता है। ये लोकगीत बिहारी अंचल की संस्कृति वाहिनी शिराएँ हैं जिनके अभाव में अंचल निष्प्राण होकर रह जाएगा। 'मैला आँचल' के ये लोकगीत बहुत सहज प्रणय भावना के साथ–साथ वहाँ के पर्व–उत्सवों, विवाह आदि मांगलिक कार्यों, सामाजिक यथार्थ और चेतना तथा राष्ट्रीय संदर्भों को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। हम जानते हैं कि हमारे देश के अंचल (अंचल से हमारा आशय लोक–अंचल से ही है) विविध प्रकार के अभावों से अभिशप्त हैं। वहाँ सामाजिक चेतना नाम भर को है। प्रबुद्धता के अभाव में जड़–संस्कारों की बहुलता है। फिर भी वहाँ के लोगों की संवेदना और भावनाशीलता समाप्त नहीं हो गई है। उनके मन–प्राण प्रणय भावना से संकुलित हैं। प्रणय का यह भाव 'मैला आँचल' के लोकगीतों की पंक्तियों में अनेक प्रकार से प्रकट हुआ है। सुरंगा–सदाब्रिज की प्रणय भावना को भोली शब्दावली में अभिव्यक्ति देने वाली इन पंक्तियों में आँचलिक प्रणय की भावपूर्ण प्रस्तुति हुई है –

नहीं तोरा जाहे प्यारी तेग तरबरिया से

नहीं तोरा पास में तीर जी ! ....

कौनहि चीजवा से मारलू बटोहिया के

धरती लोटाबेला बेपीर जी ई ई ई।........

फँसी गइली परेम की डोर जी ....।

यही स्थिति प्रेयसी की भी है। अपने प्रिय के रूप की स्मृति मात्र से ही उसके प्राणों में तीर–सा सालने लगता है–

याद जो आए हे प्यारी तोहरी सुरतिया से,

शाले करेजना में तीर जी ....।

प्रणय प्रेरणा मुक्त वातावरण की उपज है। ननद–भाभी के परिहास लोक प्रसिद्ध हैं। ननद, भाभी के सम्मुख अपने मन की आकांक्षा भी रख देती है। वह युवा हो गई है लेकिन अभी तक उसका गौना नहीं हुआ। गाड़ी वालों का दल भौजी का यह गीत गाता हुआ चला जा रहा है–

चढ़ली जवानी मोरा अंग–अंग फड़के से

कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया ऽ ऽ ऽ

हथया रँगाये सैंयाँ देहरी बैठाई गइले

फिरहू न लिहले उदेश रे भउजिया ऽ ऽ ऽ।

मैथिली के इन लोकगीतों में शब्द–प्रयोगों की मिठास तो है ही, अनेक स्थलों पर भाव–प्रवणता की दृष्टि से भी ये बेजोड़ बन पड़े हैं। मध्य रात्रि के बीच सन्तुष्ट पिया गहरी नींद सो गया है। सिरहाने बैठी प्रिया पंखा झेल रही है। तभी कोयल कूक उठती है। प्रिया को भय होता है कि कहीं चैन से सो रहे प्रिय की नींद न टूट जाये। नींद के साथ सपना न बिखर जाये ....

सब दिन बोले कोयला भोर भिनसरवा .... वा .... वा

बैरिन कोयलिया, आजु बोलय आधी रतिया हो रामा – आँ .... आँ

सूतल पिया को जगावे हो रामा .... आँ .... आँ ....।

प्रणय की कोमलता किसी वर्ग और किसी जाति की बपौती नहीं। प्रणय जहाँ भी पलता है, अतिशय कोमलता और सुन्दरता को लेकर ही पलता है। प्रेयसी चाहती है कि उसे प्यार किया जाए लेकिन इसके साथ ही वह यह भी अवश्य चाहती है कि उसके प्रति प्रेयसी का प्रेम स्थायी हो ....। प्रेम में क्षणिक सुख के प्रति उसका आकर्षण नहीं होता। प्राणों में घुले हुए रंगों के मोह में वह स्थायी रूप से अपने में सँजो लेना चाहती है –

छोटी–मोटी पुखरी, चरकुलिया पिड रे

पोरोइनी फूटे लाल–लाल

पासचे तेरी फूल देखी फूलय लाबेलब

पासचे तेरी आधा दिन लगित।

प्रेयसी के प्रिय का रूप सुवर्णवर्णी है। सोने की मुंदड़ी को देखकर उसे अपने प्रिय की स्मृति हो आती है –

'सोनो रे रूप, रूपे रो रूप

सोनो रो रूप लेका गाते ज मेलाय।

संथाल युवतियों द्वारा गाये गये ये प्रणय गीत उनकी भाव–प्रवणता और प्रणयाकांक्षा को मुखर कर देने के लिए पर्याप्त हैं।

संथालिनें ही नहीं, गाँव की महिलाएँ भी वैवाहिक जीवन के हास–विलास को व्यक्त करने वाले लोकगीतों की धुन से अपने आँगन–मैदान सजाती हैं। रूठी हुई सुन्दर और जवान जाटिन पत्नी पति या परिवार वालों से रूठकर नैहर चली जाती है। जाट उसे खोजता हुआ जा रहा है। इस प्रसंग का यह गीत स्थिति के सन्दर्भ में विनोदी और पति–पत्नी के परस्पर सम्बन्धों के सन्दर्भ में अतिशय मार्मिक बन पड़ा है –

सुनरी हमर जटनियाँ हो बाबूजी,

पातरी बाँस के छौंकनियाँ हो बाबूजी,

गोरी हमार जटनियाँ हो बाबूजी

चाननी रात के इंजोरिया हो बाबूजी

नान्ही–नान्हीं दँतवा, पातल ठोरवा ....

छटके जैंसन बिजलिया ....।

बारहमासा–निरूपण ग्राम्य गीतों की एक आवश्यक शर्त है। प्रत्येक प्रदेश के लोकगीतों में ऋतु वर्णन की भरमार होती है। 'मैला आँचल' में भी बारह–मासा के कुछ दृश्य संकलित हैं। बाहर बारिश हो रही है। और भीतर झोंपडी में बैठा कोई गायक इन स्वरों को संगीत दे रहा है –

एहि प्रीति कारन सेत बाँधल,

सिय उदेस सिरी राम है।

सावन हे सखी, सबद सुहावन

रिमझिम बरसत मेघ है।

प्रिया का प्रिय परदेश जाने वाला है। अब आषाढ़ चढ़ आया है। यदि गाँव की कमला नदी में बाढ़ आ जाए तो प्रिय का जाना रूक सकता है –

अरे मास आषाढ़ है ! गरजे घन

बिजूरी–ई चमके सखि हे ए ए !

मोहे तजी कंता जाए परदेसा आ .... आ....... !

कि उमडू कमला माई हे

.... है रे ! है रे।

और जिन प्रियाओं के प्रिय इस मौसम में परदेश से लौट आए हैं, उनकी कंठों की रागिनी झुलनी के माध्यम से घर–घर में गूंज रही है –

मास आसाढ़ चढ़त बरसाती

घर–घर सखी सब झूलनी लगाती

झूली जावे,

झूली गावति मंगल बानपी

सावन सखि अलि हे मस्त जवानी ....

देखो, देखो !

इस प्रकार फाल्गुन की बसन्त ऋतु आ जाती है। इसी महीने में नववधू का गौना होने वाला है। बसन्त की मादकता को लोकगीतकारों ने शब्दों में बाँध लेने का प्रयत्न किया है। यह झूमर बारहमासा है –

अरे फागुन मास रे गवना मोरा होइल

कि पहिरू बसन्ती रंग है,

बाट चलैत–आ केशिया संथारि बान्हू

अंचरा हे पवन झरे हे ए ए ए।

यही फाल्गुग मास होली का पर्व भी लेकर आता है। 'फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है। आसिन (आश्विन) और कातिक (कार्तिक) के मलेरिया और काला आज़ार से टूटे हुए शरीर में फागुन की हवा संजीवनी फूंक देती है। .... होली मुर्दा दिलों को भी गुदगुदी लगाकर जिलाती है। बौरे हुए आम के बाजा से हवा आकर बच्चे–बूढ़ों को मतवाला बना जाती है। और रसिक ग्राम्य अंचल में नवयुवक और नवयुवितयों के कंठ से मधु बहा देने वाली पंक्तियाँ गूँज उठती है –

नयना मिलानी करी ले रे सैयाँ, नयना मिलानी करी ले

अब की बेर इम नैहर रैहबो, जो दिल चाहे करी ले।

इस बार होली की पत्नी अपने नैहर में रहना चाहती है।

होली में सब माफ है। होली का सार्वभौम नायक श्याम है। गोरी की बाँहे पकड़कर उसका झकझोरना और उसकी चूड़ियों का फूट जाना– ये सारी विनोद–विलास की क्रियाएँ क्षम्य हैं –

अरे बेहियाँ पकड़ि झकझोरे श्याम रे

फूटलरेसम जोड़ी चूड़ी

मसकि गई चोली, भीगावत साड़ी

आँचल उड़ि जाये हो

ऐसो होरी मचायो श्याम रे ....।

और क्योंकि होली में सब कुछ क्षम्य है, इसीलिए होली की ओट में आज के नेताओं का चरित्र भी व्यक्त कर दिया जाता है–

बरसा में गउढ़े जब जाते हैं भर

बेंग हजारों उसमें करते हैं टर्र

वैसे ही राज आज काँग्रेस का है

लीडर बन है, सभी कल के गीदड़

जोगीड़ा .... सर.............. र..........र।

इसी के साथ–साथ राष्ट्र–पुरूषों की होली भी गायी जाती है–

गावत गांधी राग मनोहर

चरखा चलावे बाबू राजेन्दर

गूँजल भारत अभहाई रे

....

वीर जमाहिर शान हमारो

बल्लभ है अभिमान हमारो

जयप्रकाश जैसो भाई रे।

होरिया आई फिर से ....।

देश की आजादी की लड़ाई केवल शहरों में ही नहीं लड़ी गई बल्कि ग्रामीण जीवन के अन्तरंग का भी स्वतन्त्रता संग्राम में कम महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं रहा है। अब वह संघर्ष सफल हुआ है और हमें स्वराज्य मिल गया है। स्वराज्य प्राप्ति की यह प्रसन्नता गाँव–गाँव, खेत में फैल गई है। लोकगीतों में 'सुराज कीर्तन' के बोल जुड़ने लगे हैं। ठेठ मैथिली की ये पंक्तियाँ ग्रामीणों के मन की अपने देश और अपने राष्ट्रनायकों के प्रति श्रद्धा भावना का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुई है –

कथि जे चढ़िए आयेल

भारथ माथा

कथि जे चढ़ल सुराज

चलु सखि देखन को।

कथि जे चढ़िए आयेल

वीर जमाहिर

कथि पर गांधी महराज ! चलु सखि ....

हाथी चढ़ल आवे भारथ माता

डोली में बैठाल सुराज ! चलु सखि देखन को

घोड़ा चढ़िए आए वीर जमाहर

पैदल गंधी महाराज ! चलु सखि देखन को !

राष्ट्रीय पुरुषों की प्रशस्ति की भांति गांधीजी की साम्प्रदायिक ऐक्य की भावना को भी 'मैला आँचल' के लोकगीतों में अभिव्यक्ति मिली है। ग्राम्य–जीवन चाहे वह देश के किसी भी खण्ड का क्यों न हो, गांधीजी के व्यक्तित्व और उनके आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित रहा है। राष्ट्र की शक्ति के संचय और उन्नयन के लिए गांधीजी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता का आदर्श प्रस्तुत किया था। लोक–गायकों ने भी उनके इस आदर्श को वाणी दी –

अरे चमके मन्दिरवा में चाँद

मसजिदवा में बंसी बजे !

मिली रहू हिन्दू–मुसलमान

मान अपमान तजो !

इसी प्रकार कुछ पंक्तियों में सामाजिक यथार्थ को भी अभिव्यक्ति मिली है। सन् बयालीस में बंगाल में अकाल पड़ा। उसकी पीड़ा मैथिली लोककवि तक ने अनुभव की –

बड़ जुलुम कहलक अकलवा रे

बंगाला मुलुकवा में

चार करोड़ आदमी मरल ....।

इन विविधवर्णी लोकगीतों ने वस्तुतः 'मैला आँचल' के परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति देने में बड़ा योग दिया है।

लोकगीत मन की सहज भावना से निःसृत होते हैं। उनमें कृत्रिमता और कूटनीति के लिए कोई स्थान नहीं होता। परिवेश–प्रस्तुति के साथ–साथ लोकगीतों द्वारा व्यक्ति की सहज वृत्तियाँ भी व्यक्त होती हैं और उनको प्रकाश मिलता है। 'मैला आँचल' के लोकगीतों में इन दोनों स्थितियों का सफलतापूर्ण निर्वाह हुआ है।

'मैला आँचल' उपन्यास में लोकसंस्कृति का पक्ष जितना मजबूत है शायद उससे कम अंधविश्वास का नहीं। विडम्बना तो तब लगती है कि लोक–संस्कृति प्रगतिशीलता को व्यक्त कर रही है उसमें जन–मन के भीतर से निसूत होता प्रगतिशील बीज दृष्टिगत होता है वैसे में वहाँ अंधविश्वास की फसल भी लहलहा रही है। डा॰ प्रशान्त के सारे प्रयास अलग–थलग पड़ने लगते हैं। पूरा 'मैला आँचल' कदम–कदम पर अंधविश्वास की जंजीरों से जकड़ा है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद भी इस अंधविश्वास के कायल हैं। कमली को कमला मैया का वरदान समझते हैं। वे कमली के विवाह में आ रही अड़चनों को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखते हैं जब–जब विवाह का प्रयास होता है तो कभी लड़के की माँ मरती है तो कभी लड़के के घर में आग लगती है तो कभी लड़का ही मर जाता है। परिणाम होता है कि कमली हिस्टिरिया की रोगी हो जाती है। अंधविश्वास से उपजी समस्या काफी गंभीर हो जाती है।

ऐसे ही गाँवों में किस प्रकार विधवा स्त्री को देखा जाता है, का सच्चा उदाहरण है गणेश की मौसी–पार्वती की माँ। गाँव वालों का दृढ़ विश्वास है कि वह डायन है और जिस पर कृपा करती है उसी को खा जाती है। वह अपनी मुस्कान से लोगों पर जादू करके लोगों को मार डालती है जिस प्रकार अपने सारे परिवार को समाप्त कर चुकी है। गाँव के लोग व्यग्रता से इस बात की चर्चा करने लगते हैं कि अब वह डाक्टर को भी खा जाएगी क्योंकि वह उसके घर आने जाने लगा था और एक बार डाक्टर के घर सांप निकलता है, तो लोगों का विश्वास दृढ़ हो जाता है कि इस डायन ने ही सांप भेजा था।

जोतखी काका द्वारा यह बताना कि हीरू के बेटे को पार्वती की माँ ने मार डाला है और फिर हीरू को इस बात के लिए प्रेरित करना कि रात के आधे पहर में पार्वती तुम्हारे बच्चे खेत में ले जाती है ऐसे में उस पर हमला करो तो बच्चा मिल जाएगा। हीरू का तैयार होना प्रसंगात गणेश की नींद खुलना और पार्वती की माँ का घर से बाहर निकलना और निकलने पर हीरू द्वारा लाठियों से पीट पीट कर मार दिया जाना विवेकशून्यता की हद को बताता है।

जोतखी जैसा व्यक्ति स्वयं अपनी ही पत्नी को इसी चक्कर में गंवा बैठा है। गर्भवती पत्नी के पेट में दर्द होता है किन्तु वह डाक्टर को आप्रेशन नहीं करने देता है जिससे उसकी पत्नी मर जाती है और इसका भी श्रेय पार्वती की माँ को मिलता है। यह तो सामाजिक जकड़न है। जब गाँव में मलेरिया सेंटर की स्थापना होती है तो जोतखी का कथन अंधविश्वास की ज़मीन को और भी मजबूत करता है – "डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं विलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।

इतना ही नहीं मार्टिन की पत्नी मैरी को बताया जाता है कि पुराने बंगले में जो रहती है, वो लोग जो ईट या अन्य चीजें चुराते हैं उन्हें कोड़े मारती है। दरअसल जनमानस तिल–सी वास्तविकता को मिथकीय पहाड़ में परिवर्तित कर सकता है। समझा जा सकता है कि नंदलाल ततमा खण्डहर की ईटें चुराते समय सर्पदंश का शिकार हुआ होगा पर इस घटना के गिर्द सफेद चुड़ैल और सांप के कोड़े की कल्पना जिस आसानी से जनमनोविज्ञान लेता है उससे 'रेणु' अच्छी तरह परिचित हैं। इसी तरह कमला नदी के द्वारा बरतन देने की कल्पना के पीछे लोगों को ईमानदारी और बेईमानी लोभ–लालच और संतोष के द्वन्द्व के भीतर से अच्छाई और नैतिक मूल्यों से जुड़ा आग्रह काम करता है। ऐसा नहीं है कि यहीं यह स्थिति है, गाँव का दूसरा हिस्सा तांत्रिमा टोली भी इससे है। फुलिया से चुमौना तय हो चुका है खलासी जी का। किन्तु पहले से ही खलासी जी आते हैं। रेलवे में नौकरी करते हैं, साथ ही ओझा गुनी भी हैं। उन पर देवी देवता आते हैं। वे अभुहाते हैं और अपने भक्तों की तकलीफें दूर करते हैं, मुरादें पूरी करते हैं। अपने जादू से बांझ औरतों को भी बच्चों का वरदान दे सकते है। वे सिफलियन इलाज करते हैं। गाँव में बुरे दिनों के लिए 'बनरीभुत्ता' जैसे उपाय गढ़ लेते हैं। उनका कहना है कि डॉ॰ प्रशान्त द्वारा बन्दरों पर किया गया शोध ही इन सबका कारण है। शोध में मारे गए बन्दर की आत्मा ही गाँव को सता रही है। फिर खलासी जी द्वारा यह कहना है कि अपने जादू की शक्ति से ततमा टोली को बचा सकते हैं। उन्हें प्रश्नों के घेरे में रखता है। उपन्यास में खलासी जी के करतब की भी चर्चा मिलती है।

जैसा कि पूर्व में ही कहा गया है कि उपन्यास अंधविश्वासों से भरा है। विज्ञान की सारी विकास यात्राएँ यहाँ के अंधविश्वास में रुक–सी गयी प्रतीत होती हैं। अंधविश्वास के मुद्दे पर एक बात परेशान करती है कि अंधविश्वास सभी लोगों में है चाहे वे जोतखी काका हो या गाँव के बुद्धिजीवी तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद क्यों न हों। तहसीलदार तो पढ़े लिखे थे। डाक्टर की इज्जत भी करते थे और इलाज भी कराते थे। कमली के संदर्भ में कहीं भी ओझा–गुनी की चर्चा नहीं है। फिर भी तहसीलदार मानते थे कि उनकी बेटी कमला मैया की वरदान है। ग्राम्य जीवन में यदि अंधविश्वास है तो कुछ कम अर्थ रखता है लेकिन शहर से सम्बन्ध रखने वाला खलासी बाबू तो अंधविश्वास का एजेंट लगता है। मेरीगंज का कोई भी हिस्सा और वर्ग अंधविश्वास से अछूता नहीं दिखता है। 'मैला आँचल' में अंधविश्वासजनित परिणाम सोचने को बाध्य करते अंधविश्वास के मुद्दे पर सभी एक से लगते हैं। कालीचरन कम्युनिस्ट का नेता है किन्तु रौतहट टीशन पर नहीं खाता क्योंकि उसकी जानकारी में इसमें मुर्गी का अंडा रहता है। वह रह–रहकर बिस्कुट के डब्बे को देखता है। इसके अन्दर कुड–कुड क्या बोलता है ? कहीं अंडा फूटकर ....।"

यहाँ एक बात और दिखती है वह यह कि अंधविश्वास की खेती से कुछ खास लोगों को फायदा है सम्मान मिलता है चाहे वह जोतखी काका हो या खालसी जी। इन्हें इसे जिला कर रखने में लाभ है।

दरअसल 'मैला आँचल' में जनसामान्य के भीतर फैले अंधविश्वासों को कुछ ज्यादा ही बढ़ा

चढ़ा कर दिखाया गया है। जबकि वहाँ की जनता अशिक्षित पिछड़ी हुई जरूर है, पर उसमें मानवीय रिश्तों से जन्मी ऊर्जा नहीं है। वे हारी–बीमारी, सुख–दुख, पर्व त्यौहार, शादी–विवाह में एक दूसरे के सहायक होते हैं। सामंती जकड़न में बँधे वे घोर अंधविश्वासी भी हैं।''

वास्तव में "किसी विशेष अँचल के लोकजीवन सहित उसकी आस्था, भाषा कलारूचि, रूढ़ियाँ, गीत–नृत्य और तमाम अतीतमुखी सांस्कृतिक बुनावटों को कोई कथाकार तरल रागबोध के स्तर पर सोद्‌देश्य डालता चलता है तो उससे मूल्यवान आँचलिक कथा साहित्य का सृजन होता है" (डॉ॰ विवेकी राय)। निश्चित ही अतिवादी दृष्टि के बावजूद 'मैला आँचल' में आये अंधविश्वास भूत–प्रेत, देवी–देवताओं, लोककथाओं, लोकविश्वास तर्केतर या तर्कातीत ही नहीं वरन् उनके पीछे संलग्न मिथकीय सत्ता का बड़ा जटिल और पेचीदा, मनोविज्ञान होता है, इसमें अनुभव स्तरों की परत दर परत उभरती सच्चाइयाँ गहरे जीवन सत्य से जुड़ी होती हैं। भले ही इसके मूल में अज्ञान और अशिक्षा, सादगी और निश्छलता ही कार्यरत है। लोक उपादानों का यह उत्स मैला आँचल की खासियत है। लोकरंग की अभिव्यक्ति को जीवंत बनाने के लिए लोकगीतों, लोकविश्वासों की जो झांकी प्रस्तुत की गई है, उसमें जीवन की अनन्त धाराएँ प्रवाहमान हैं। गीतों की थिरकन में ढोल–मृदंग, झाँझ–खंजड़ी, दिग्गा की ध्वनियां मुखरित हो जाती हैं। निश्चित ही 'रेणु' ने स्थानीय भाषा रूप का सहारा लेकर अँचल की लोकधुनों, लोकोक्तियों, कहावतों, लोकगीतों, लोकविश्वासों, मुहावरों, ध्वनियों शब्दों में सन्निहित विविध अर्थ छवियों का प्रयोग कर लोकरंग को, लोकजीवन की अतल गहराईयों में उतारने का सफल प्रयास किया है। गीतों के माध्यम से लोकमानस के सामान्य बोध को 'रेणु' ने मिथक, स्वप्न और निजी दिवास्वप्न के आयामों से समृद्ध किया है। यह सब 'रेणु' ने परम्परा से चली आ रही मौखिक गीत परम्परा को मद्‌देनजर रखकर किया है। अपने जागरूक कलात्मक लक्ष्य को उन्होंने पारम्परिक गीत विधा की वर्णन शैली में गूंथकर प्राप्त किया है। 'रेणु' ने एक नयी तरह की शैली विकसित की जिसमें लयबद्ध काव्य चेतना और वर्णनात्मक गद्य का अद्‌भुत तालमेल है।"

बावजूद इसके 'रेणु' के पाठक उनकी मौखिक गीत परम्परा के प्रयोग से अच्छी तरह परिचित हैं किन्तु कथा कहने की 'रेणु' की देशज तकनीक उनके लिए इतनी स्पष्ट नहीं है। वास्तविकता में गीत और गाथा की तरह रेणु ने संस्कृत की कथा और उर्दू की किस्सा परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। यही कारण है कि गीतों को जब छन्दोबद्ध करने की कोशिश करते हैं तो कथा का रूप अव्यवस्थित हो जाता है। तुकबंदी, स्थानीय भाषा, प्रतीकों की पारम्परिक शब्दावली, लाक्षणिक प्रयोग और छन्दोबद्ध रचना गीतों का वैशिष्ट्‌य है जो गीतों को सघन और ठोस रूप प्रदान करते हैं। गीतों की कसावट और व्यापकता की वजह से कथावस्तु के स्वरूप पर भी असर आता है, जहाँ वस्तुजगत के यथार्थ के भीतर से निःसृत होकर स्मृति और स्वप्नलोक की तर्कहीन दुनिया भी निर्मित हो सकती है। अपने अँचल के

लोकगीत, लोकभाषा, लोककला, लोककथा में रच–बसकर उनके व्यक्तिव का निर्माण हुआ है, जहाँ अभिजात्य मानसिकता से परे वे लोकजीवन के भीतर ही परिस्थितियों का साक्षात्कार करते हैं। रेणु की आँचलिक संवेदना बहुत सजग ढंग से भारतीय संस्कृति के बीच प्राचीन और नवीन का संश्लेष उपस्थित करती है। ये गीत सदियों से सुरक्षित जीवंत मौखिक परम्परा को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करते हैं। बिना पढ़े–लिखे लोग भी सहज ही शाब्दिक समृद्धि, ध्वनि–प्रतिध्वनि के अंशों को शहरी जीवन तक संप्रेषित करने में समर्थ हैं। यह तालमेल भाषा को पुनर्जीवन प्रदान कर जीवंत रूप देता है। भाषाई गद्य का यह लचीलापन ग्रामीण और शहरी एकता को प्रभावकारी ढंग से उपस्थित करता है। यही वजह है कि रेणु लयात्मक गीतों, लोककथाओं, कथात्मक अन्तर्वस्तु, लोक किवंदंतियों के चित्र ग्राम्य बोली के शब्दों को यांत्रिक ढंग से नहीं समेटते वरन् भाषा के स्थानीय रूप के चुनाव में वे ग्रामीण जीवन से जुड़ी सहजता, निश्छलता सादगी और सरलता का ख्याल रखते हैं तो दूसरी ओर शहरी जीवन के व्यर्थ के मुखौटों से भरे कृत्रिम आडम्बरपूर्ण जीवन शैली से मुक्ति के प्रयास के साथ खड़े होते हैं। अतः भाषा के माध्यम से समाज के अनेक स्तरीय स्वरूपों का संश्लिष्ट और काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया है।

2.4 सारांश

अपने गीतों में रेणू ने भाषा की लय, ध्वनि की अनुकरणात्मक संभाव्यता, द्वयर्थक शब्दों का इस्तेमाल बहुत कौशल के साथ किया है। अवधी, भोजपुरी, मैथिली, बँगला, नेपाली, अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, अर्द्ध तत्सम शब्दों के माध्यम से ग्राम्यांचल की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का संश्लिष्ठ काव्यात्मक रूप उन्होंने उपस्थित किया है। भाषा का सरलीकृत ताजा मूर्त रूप वक्तव्य को संप्रेषणीयता प्रदान करता है, ग्राम्य जीवन में समाहित सच्चाई, सादगी को बेबाकी से उपस्थित करता है बावजूद इसके स्थानीय शब्दों के प्रति उनका अत्यधिक मोह जिसका अर्थ भी उन्हें फुटनोट के रूप में बताना पड़ा, कथावस्तु के अन्तः प्रवाह में बाधा अवश्य उपस्थित करता है। जिसमें पाठकों के भी बोध को धक्का पहुँचता है। रेणु पर हिन्दी भाषा को भ्रष्ट करने का आरोप लगाते हुए यह कहा गया है कि वह कलाकार की स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। दरअसल रेणू ने अँचल के वैशिष्ट्य को निरूपित करने के लिए ग्राम्य यथार्थ से सम्बद्ध बोलचाल की भाषा पर आधृत नयी शैली विकसित की, वह इतनी स्थानीय भी नहीं है कि पूर्णिया के लोगों की समझ से परे हो। यह भाषा परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा से अवश्य कुछ भिन्न है जिसमें शब्द प्रयोग और व्याकरण की दृष्टि से विचलन उपस्थित है, पर जनजीवन के वैविध्यपूर्ण बहुरंगी जीवन छवियों के चित्र उकेरने में पूर्णतया सफल है। अतः रेणु ने भाषा का एक अपरिचित और नया रूप उपस्थिति किया जो अपने आप में महत्वपूर्ण है।

2.5 कठिन शब्द

1. प्रतिबद्ध
2. प्रबुद्धता
3. अतिशय
4. परिप्रेक्ष्य
5. संलग्न
6. संवेदना
7. सार्वभौम
8. अन्तरंग
9. अंधविश्वास
10. आडम्बर

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मैला आँचल की लोक संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

2. मैला आँचल के परिवेश पर विचार कीजिए।

3. मैला आँचल के कथानक पर विचार कीजिए।

4. मैला आँचल में व्यक्त अन्ध–विश्वासों पर एक परिच्छेद लिखिए।

5. मैला आँचल की विशेषताएं बताते हुए उसकी वस्तु संरचना की समीक्षा कीजिए।

2.7 पठनीय पुस्तकें

1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास – उमेश शास्त्री

5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी

6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा

7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा

8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल

9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर

10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा

11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान

12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना

13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

– – – – –

M.A. HINDI	**Lesson No. 3**
Course Code : HIN-302	**Semester-III**

आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 आँचलिकता परिभाषा तथा स्वरूप विवेचन

3.4 स्वरूप

3.5 आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल

3.6 सारांश

3.7 कठिन शब्द

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.9 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- आँचलिकता आधुनिक संदर्भों की अवधारणा है।
- आँचलिक उपन्यास, उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार है।
- आँचलिकता शब्द के स्वरूप को जानेंगे।
- आँचलिक उपन्यास परम्परा में 'मैला आँचल' एक विशिष्ट स्थान रखता है।

3.2 प्रस्तावना

आँचलिकता आधुनिक संदर्भों की अवधारणा है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, पूंजीवादी विकास आदि के चलते ग्राम और जनपद उपेक्षित होने लगा तो उन पर विशेष रूप से कतिपय रचनाकारों ने नज़र डाली और अपनी रचनात्मकता के केन्द्र में अँचल को रखा। आँचलिक और आँचलिकता जैसे शब्द अँचल से बने।

अँचल शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। इसका कोशगत अर्थ है वस्त्र, प्रान्त, भाग इत्यादि। इन अर्थों के आधार पर अँचल के स्थूल रूप में निम्नलिखित आशय निश्चित होते हैं –

1. देश का वह भाग या प्रान्त जो किसी सीमा के समीप हो।
2. कोना या छोर
3. तट या किनारा

अँचल का रूढ़ एवं अभिप्रेत अर्थ कोई स्थान–विशेष अर्थात् भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ कोई विशेष जनपद या क्षेत्र हो सकता है। अंचल एक ऐसा भूखंड विशेष होता है, जिसकी जनता, जन जीवन, भौगोलिकता, धार्मिक विश्वास, संस्कृति, आर्थिक व्यवस्था, समस्याएं आदि अपने–आप में विशेष महत्व रखते हैं। वहाँ के नदी नाले, पेड़ पौधे, खेत–खलिहान, बंध्या–मरूभूमि, हरे भरे मैदान सभी अपने आप में एक विशेष भौगोलिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करते हों। ऐसी सभी विशेषताओं, जिनसे एक भूखंड विशेष दूसरे से भिन्न हो, से युक्त क्षेत्र को अँचल कहा जा सकता है। इस प्रकार अँचल भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक विशेषताओं वाला होता है। अँचल का एक विशिष्ट प्राकृतिक भूखंड व भौगोलिक परिवेश होता है, उसकी विशिष्ट संस्कृति और सामाजिक मान्यताएं होती हैं तथा विशिष्ट ऐतिहासिक लोक परंपरा से भी वह समृद्ध होता है।

आँचलिक उपन्यास, उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार है क्योंकि उसका उद्देश्य भिन्न है। आँचलिक उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अँचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं को उद्‌घाटित करना। आँचलिक उपन्यासकार एक दिशा में बहने की अपेक्षा पूरे अँचल की चतुर्मुख यात्रा करता है और उन उपादानों को यहाँ से, वहाँ से चुनता है जो मिल कर अँचल की समग्रता का निर्माण करते हैं। ये वास्तव में आपस में बिखरे नहीं होते इनमें एक अन्तः सूत्रता होती है। आँचलिक उपन्यासों में अँचल अपनी सम्पूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अँचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों, अशक्तियों, छवियों, अछवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा, अँचल जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होगा।

अँचल से संबंध रखने वाली किसी भी वस्तु को आँचलिक कहा जा सकता है। किसी साहित्यिक कृति में जब किसी अँचल विशेष के समाज और जीवन का उस क्षेत्र की समस्त विशेषताओं के साथ चित्रण होता है तो उस कृति को आँचलिक कह सकते हैं। हर अँचल दूसरे अँचल से भिन्न और विशिष्ट होता है। एक अँचल के निवासियों के रहन सहन, प्रथाएँ, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संबंध दूसरे अँचल से भिन्न होते हैं और आँचलिकता का निर्माण करते हैं। इन सभी विशेषताओं का जब किसी उपन्यास में चित्रण होता है तो उस उपन्यास को आँचलिक उपन्यास कहते हैं।

3.3 आँचलिकता परिभाषा तथा स्वरूप विवेचन

आँचलिकता की परिभाषा में दो बातों का विशेष महत्व है। अँचल का आंतरिक रूप और अँचल का बाह्य रूप। डॉ॰ ओमानन्द सारस्वत के अनुसार, "आँचलिकता एक प्रकार की अन्तर्मुखता है जहाँ व्यापक यथार्थ को छोड़कर मर्यादित यथार्थ को महत्त्व दिया जाता है जिससे व्यापक यथार्थ व्यंजित होता है।" अपने आंतरिक रूप में आँचलिकता अँचल की सांस्कृतिक आर्थिक आत्मा से संबद्ध होती है। धार्मिक, राजनीतिक आदि पक्ष इसकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं।

आँचलिकता के संबंध में विचार करते हुए जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है "आँचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है, जिसके केन्द्र में अमुक पात्र या चरित्र उतना विशिष्ट नहीं जितना वह स्वयं भू भाग या अँचल है।" इससे यह स्पष्ट होता है कि आंचलिकता किसी अँचल–विशेष का आँचलिक निरूपण है। किसी जनपद विशेष के जीवन का समग्र चित्रण माटी की महक और मनःस्थिति का सजीव और समग्र यथार्थ चित्रण ही आँचलिकता कहलाता है।

डॉ॰ सुवास कुमार के अनुसार "आँचलिकता रचना का स्थापत्य होती है, न कि विशेषता। इसी स्थापत्य के कारण आँचलिक उपन्यास को गैर आँचलिक उपन्यासों से अलगाया जा सकता है। आँचलिक उपन्यास के केन्द्र में संपूर्ण अँचल का जीवन होता है। आँचलिक उपन्यास में व्यक्ति का वही महत्व अंकित होता है जो महत्व उसका समाज में वास्तविक तौर पर है। आँचलिक उपन्यास में जीवन संपूर्ण अँचल के साथ गतिशील होता है।"

आँचलिकता को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ आदर्श सक्सेना ने लिखा है अँचलों की अपनी एक विशिष्ट सृष्टि होती है, जिसमें भूतप्रेत होते हैं, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा होती है, अन्याय, पाप होता है, कसक होती है पीड़ा होती है, परंतु कहीं पर मीठापन अवश्य छिपा होता है।

डॉ॰ विश्वमभर उपाध्याय के मत में 'किसी विशेष जनपद अँचल (क्षेत्र) के जन–जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करने वाली औपन्यासिक कृति आँचलिक उपन्यास है।

3.4 स्वरूप

आँचलिकता के स्वरूप निर्धारण में अनेक तत्वों का सामूहिक योगदान होता है। किसी भी अँचल की अंतरात्मा को उसके आंतरिक एवं बाह्य तत्वों को साथ–साथ यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की विशेष रूप से आवश्यकता होती है।

अँचल विशेष के सभी तत्वों का सजीव चित्रण ही आँचलिकता के स्वरूप को निर्धारित करता है। वस्तुतः आँचल की प्रकृति, सहज वातावरण, जनजीवन, वेशभूषा, जीवनयापन, आर्थिक व्यवस्था, वर्गगत भेदभाव, विश्वास, संस्कार, खान पान आदि की समग्र सजीव अभिव्यक्ति में योग देनेवाले सभी उपकरण आँचलिकता के तत्व हैं। आँचलिकता के स्वरूप का निर्धारित करने वाला तत्व है–अँचल विशेष के जन जीवन का सर्वांगीण चित्रण। यहाँ अँचल विशेष के संपूर्ण जन–जीवन तथा उसके विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया जाता है। आँचलिक उपन्यास में अंचल के मनुष्यों के दैनिक जीवन से संबंधित समस्याओं (जैसे–उनकी खेती किसानी की समस्याएँ आदि) को प्रस्तुत किया जाता है। आँचलिक कथाकार का उद्देश्य मनुष्यों के संपूर्ण जीवन क्रम को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करना होता है। लोगों के सुख दुख, उनके द्वन्द्वों का निरूपण, उनके संकल्प विकल्प का आरेखन, उनकी बोली बानी के माध्यम से प्रस्तुत करना ही आँचलिकता है।

आँचलिकता का अगला तत्व है लेखक की वस्तुन्मुखी दृष्टि। अँचलवासियों के व्यक्तित्व विकास में अँचल के प्रभावों को स्पष्ट करने के लिए अँचल, वहाँ के लोगों और समस्याओं का वस्तुन्मुखी विवरण दिया जाता है। लेखक का किसी के प्रति कोई पूर्वग्रह नहीं होता न ही लेखक के लिए यहाँ अतिरिक्त रूप से भावुक होने का ही अवकाश होता है वस्तुतः यहाँ पर वास्तविक दैनिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण ही अपेक्षित है।

आँचलिकता किसी अँचल विशेष के व्यक्ति और पर्यावरण का तटस्थ आँचलिक निरूपण है। इसीलिए आँचलिक उपन्यासों में स्वभाविक, विश्वसनीय और यथार्थवादी चित्रण होता है।

आँचलिकता का संबंध मूलत यथार्थवाद से है। मनोवैज्ञानिक, नृतत्वविधा, जीवविज्ञान आदि से संबंधित तथ्यों का प्रत्यक्ष जीवन यथार्थ, सामाजिक अनुभवों के आधार पर किये गये चित्रण में आँचलिकता का स्वरूप मिलता है।

3.5 आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल

3.5.1 हिन्दी आँचलिक उपन्यास का उद्‌भव और विकास

हिन्दी उपन्यास साहित्य में रेणु के प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद ही आंचलिक उपन्यास 1954 में एक स्वतंत्र कथा विधा का प्रतिष्ठापन हुआ। फिर भी कई विद्वानों ने प्रेमचन्दीय परंपरा में लिखे गए अनेक उपन्यासों में आँचलिकता के तत्वों को ढूंढने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों ने शिवपूजन सहाय कृत देहातीदुनिया (1925) को हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास घोषित किया। देहाती दुनिया में आँचलिकता के तत्वों को ढूंढने का प्रयास किया। उपन्यास आँचलिक भी होता है, यह जानकर और मानकर सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की सृष्टि करने वाले, फणीश्वरनाथ रेणु ही थे। रेणु को ही सर्वप्रथम मौलिक आँचलिक उपन्यासकार मानना उचित होगा। विशिष्ट शिल्प के अर्थ में यद्यपि आँचलिक उपन्यास शिल्प का प्रथम उद्‌घोष फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) की भूमिका में हुआ। डॉ॰ सत्यापाल चुघ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कृति 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1941) को पहला आँचलिक उपन्यास मानते हैं। देहाती दुनिया में भोजपुर अँचल को उसके समस्त मुहावरों–मिथकों के साथ चित्रांकित किया गया है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में अवध अँचल के विशिष्ट सामाजिक जीवन, उसकी रूढ़ियों–विकृतियों और संकीर्णताओं सहित उसकी माटी की मौलिक गंध की पकड़ है। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की 'बसन्त मालती' जिसमें मुंगेर जिले के मलयपुर अँचल के मल्लाहों का जीवन, हरिऔध की कृति 'अधखिला फूल (1907), गोरखपुर अँचल की रूपाभा से युक्त, गोपाल राम गहमरी की कृति 'भोजपुर की ठगी', रामचीजसिंह की 'वन विहंगिनी (1909), संथाल परगना के आदिवासी क्षेत्र की कोसकुमारियों के जीवन–संघर्ष से युक्त, बृजनन्दन सहाय की रचना 'अरण्यबाला' (विन्ध्याचल के पर्वतांचल का जीवन–चित्र) और मन्नन द्विवेदी की कृति 'रामलाल' (1904) जिसमें गोरखपुर जिले की बाँसगाँव तहसील के एक गाँव की जीवन–छवि और स्थानीय रंग से परिपूर्ण, जैसी कृतियाँ महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन आँचलिकता को बहुत स्पष्ट रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। कुछ उपन्यासों में भारत जैसे विशाल और वैविध्य–वैचित्र्य सम्पन्न राष्ट्र की प्रादेशिक रूपाभा अति चमकीले सांस्कृतिक रंगों में उभरती है और बिहार के पूर्णिया और मध्य प्रदेश के बस्तर से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, तिब्बत, मणिपुर और अंडमान आदि की प्रादेशिक इकाइयाँ अपनी पृथक अन्तरंग–बहिरंग झलकियों के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। अविकसित आदिवासी और जंगली जन–जातियों को जो मालवा, संथाल परगना, बस्तर, बुन्देलखण्ड और राजस्थान आदि में निवास करती हैं आँचलिक उपन्यासकारों ने समारोह संभवी उत्साह में उठाकर चित्रांकित किया है प्रादेशिक रूपाभा के चितेरों में रेणु, बलभद्र ठाकुर, गोबिन्द बल्लभ पंत, रामदरश मिश्र, बलवन्तसिंह नागार्जुन आदि और जंगली आदिवासियों के अंकन कर्ताओं में शानी, राजेन्द्र अवस्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, जयसिंह, रांगेय राघव,

देवेन्द्र सत्यार्थी और श्याम परमार आदि का कृतित्व स्मरणीय है। शैलेश मटियानी और शिवानी आदि में पर्वतांचलिकता है। विशेषकर शैलेश मटियानी ने पर्वतीय जन–जीवन की छवि–रेखा को गहरी रागात्मकता के साथ अंकित किया है। विश्व–साहित्य के श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासों में सरितांचलिका की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है। हिन्द में इस धारा को रेणु, मधुकर गंगाधर, देवेन्द्र सत्यार्थी, भैरव प्रसाद गुप्त और रामदरश मिश्र आदि प्रवाह प्रदान करते हैं और कोसी, गंगा, ब्रह्मपुत्र और शप्ती आदि नदियों का तटवर्ती जीवन– संघर्ष हिन्दी–पाठकों के सामने विशेष आंचलिक आकर्षणों के साथ मूर्त्त हो उठता है। इस तरह हिन्दी उपन्यासों की यह आंचलिक विविधता 'परती परिकथा', 'मैला आँचल', 'बाबा बटेसरनाथ', 'कलावे', 'मुक्तावती', 'जल टूटता हुआ', 'हौलदार', 'गंगामैया', 'ब्रह्मपुत्र', 'आधा गाँव', 'सागर लहरें और मनुष्य', 'जुलूस', 'कस्तूरी', 'कब तक पुकारूँ', आदि उपन्यासों में अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रकाशित हुई है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् भिन्न–भिन्न अँचलों के निवासी और संवेदनशील यायावर लेखकों का ध्यान आंचलिक जीवन की ओर आकृष्ट हुआ और उनकी कृतियों में आंचलिकता के तत्व सहज ही प्रवेश कर गए हैं। ऐसी कृतियों के भी मोटे तौर पर दो वर्ग किए जा सकते हैं। पहले वर्ग में उन कृतियों को लिया जा सकता है जिनमें आंचलिक संस्पर्श अथवा स्थानीय रंगत की विशिष्टता तो अवश्य है किन्तु उनकी आत्मा आंचलिक नहीं है। उनको पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि हम किसी अंचल विशेष का अध्ययन कर रहे हैं जो अन्य अंचलों से भिन्न है। इन कृतियों में कथा और पात्र उभरकर आते हैं अंचल नहीं। इस वर्ग के उपन्यासों को हम आंचलिक संस्पर्श से संयुक्त कृतियाँ कह सकते हैं। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं जिनमें आंचलिक तत्त्व प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं और कथा अथवा पात्र के स्थान पर अंचल विशेष की संस्कृति, व्यवहार–व्यापार और वहाँ का परिवेश विशेष रूप से अपनी समग्रता में उभरकर व्यक्त होता है। इन कृतियों में अँचल पाठक का ध्यान आकर्षित करता है। कृति की समाप्ति पर पाठक के मस्तिष्क पर अँचल की समग्रता का प्रभाव छाया रहता है। किसी पात्र का अथवा कथानक की विशिष्टता का नहीं। ऐसे उपन्यासों के पात्र और कथानक दोनों अँचल को उभारने के निमित्त होते हैं।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत हम नागार्जुन–'नयी पौध (1953), रांगेय राघव–'काका' (1953), देवेन्द्र सत्यार्थी–'रथ के पहिये' (1953), बलभद्र ठाकुर–'मुक्तावली' (1955), अमृतलाल नागर–'सेठ बाँकेमल' (1955), पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र–'फाल्गुन के दिन चार' (1955), अमृतलाल नागर–'बूँद और समुद्र (1956), देवेन्द्र सत्यार्थी–'ब्रह्मपुत्र' (1956), नागार्जुन– 'दुख मोचन (1956), हिमांशु श्रीवास्तव–'लोहे के पंख (1957), बलभद्र ठाकुर– ' आदित्यनाथ' (1958), उदयशंकर भट्ट–'लोक–परलोक' (1958), बलभद्र ठाकुर–'नेपाल की बेटी' (1959), भैरवप्रसाद गुप्त–'सती मैया का चौरा' (1959), उदयशंकर भट्ट–'शेष–अशेष' (1960), हिमांशु श्रीवास्तव– 'नदी फिर बह चली' (1961), मनहर चौहान– 'हिरना सांवरी' (1962), योगेन्द्र नाथ सिन्हा–'वन के मन में' (1962), सुरेन्द्र पाल – 'लोक लाज खोई' (1963), श्याम परमार– 'मोर

झाल' (1963) फणीश्वरनाथ रेणु–'दीर्घ–तपा' (1963), राही मासूम रजा–'आधा गाँव (1966), श्री लाल शुक्ल–'राग दरबारी' (1968) आदि उपन्यासों को सम्मिलित कर सकते हैं।

इन कृतियों के अतिरिक्त कुछ कृतियाँ ऐसी हैं जिन्हें हम मोटे तौर पर आँचलिक उपन्यासों की संज्ञा दे सकते हैं। इन आँचलिक कृतियों द्वारा देश के अनेक अंचलों की संस्कृति, संस्कारों और समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली है। इन कृतियों में नागर्जुन कृत 'रतिनाथ की चाची, (1948), 'बलचनमा' (1952), शिवप्रसाद रूद्र 'बहती गंगा' (1952), नागार्जुन ' बाबा बटेसरनाथ' (1954), उदय शंकर भट्ट ' सागर, लहरें और मनुष्य (1955), फणीश्वर नाथ रेणु, 'परती परिकथा' (1957), राजेन्द्र अवस्थी 'जंगल के फूल' (1960), शैलेश मटियानी 'चिट्ठी रसैन' (1961), रामदरश मिश्र 'पानी के प्राचीर' (1961), शैलेश मटियानी 'चौथी मुट्ठी' (1962), जयप्रकाश भारती 'कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' (1968), आनन्द प्रकाश जैन 'आठवी भाँवर' (1969) विशेष रूप से उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनमें विभिन्न अंचलों के जन–जीवन और परिप्रेक्ष्य को व्यापक झलक पर वाणी मिली है, आंचलिक भाषा–शक्ति के दर्शन हुए हैं और रचनात्मक विधा को अभिव्यक्ति की नयी भूमिकाएँ प्राप्त हुई हैं।

'रतिनाथ की चाची' में लेखक नागार्जुन ने विधवा जीवन को केन्द्र में रखकर ग्राम्य समाज में फैली हुई कुलीनता–अकुलीनता, अस्पृश्यता, विधवा–विवाह, बाधित वैधव्य, नारी विक्रय की उन समस्याओं को प्रकाश दिया है जिनसे पूरा मिथिलांचल ग्रस्त है। अभिव्यक्ति के प्रकार, परिवेश के प्रस्तुतीकरण और भाषा–संस्कृति की विशिष्टता ने इस कथा को गहरा आंचलिक रूप दे डाला है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। नागार्जुन का 'बलचनमा' भी आंचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'बलचनमा' का कथा–विकास विशिष्ट अँचल के केन्द्र में हुआ है जिसमें बलचनमा की आपबीती के माध्यम से अंचल विशेष का चित्र उभारा गया है। 'बलचनमा' वर्ग–संघर्ष की कथा कहता है। देहाती जीवन की साधारण घटनाओं को सूत्रित करने में, उसके छोटे–छोटे सुखों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा सजीव चित्रण में, जमीदारों के निरंकुश व्यवहार तथा उत्पीड़न में, नये जीवन के स्पन्दन में, अंचल विशेष की भाषा को पकड़ने में सफल रहा है। अपने उपन्यास ' बाबा बटेसरनाथ' में लेखक ने उत्तर–बिहार की आंचलिक संस्कृति की यथार्थ भूमिका पर निरूपण किया है। इस कथा का नायक व्यक्ति–विशेष न होकर एक वट–वृक्ष है। इसमें वट्वृक्ष की 'आत्म–कथा' है। अँचल विशेष में व्याप्त वर्ग–संघर्ष, राजनीतिक जोड़–तोड़, तथा रूढ़ियों के व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' एक स्मरणीय आँचलिक कृति है।

शैलेश मटियानी के उपन्यास 'चिट्ठी रसैन' और चौथी मुट्ठी' आँचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। कूर्मांचल की संस्कृति, प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ के लोगों की, विशेष रूप से महिलाओं की दयनीय स्थिति और इन सबके साथ वहाँ के लोक जीवन की घाटियों में व्याप्त प्रणय चर्या का अविरल प्रवाह आदि का हृदयग्राही विवेचन हमें इन कृतियों में प्राप्त होता है।

फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' भी आंचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें भी पूर्णिया जिले के आँचल को अभिव्यक्ति मिली है। आँचलिक जीवन की समग्रता के दर्शन इस कृति में होते हैं। इस उपन्यास का कथानक 'लैंड सैटिलमेन्ट सर्वे, तथा कोशी प्रोजेक्ट के सन्दर्भ में विकसित होकर परानपुर अँचल के निवासी ग्रामीणों की मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालता है।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य' एक विवादास्पद कृति है। कृति की आधार–भूमि बम्बई के नागरीय जीवन से प्रभावित और सम्पृक्त अँचल मछुवारों की बस्ती वरसोवा है। इस उपन्यास में वरसोवा अँचल के निवासी मछुवारों के जीवन की सांस्कृतिक, सामाजिक झाँकियाँ मिलती हैं, उनके परिवेश के नीति–नियम, व्यवहार, आदर्श, आस्था–अनास्था, परम्परा और प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है।

रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' तथा राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' जातीय आँचलिकता से सम्पृक्त कृतियाँ हैं। इनमें अँचल विशेष के समान ही जातिगत संस्कारों, परम्पराओं और प्रवृत्तियों को, नैतिक–अनैतिक मानदण्डों को और आदर्शों को अभिव्यक्ति मिली है। 'कब तक पुकारूँ में लेखक ने राजस्थान के बैर नामक ग्राम तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में रहने वाली नटों की एक उपजाति 'करनट' के जीवन–व्यापार को कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। खानाबदोश या जरायम–पेशा कहे जाने वाले ये करनट स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अन्य अनेकों जातियों और अंचलों के निवासियों की भाँति आज तक उपेक्षित, शोषित और प्रताड़ित हैं।

राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' उपन्यास में मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र के निवासी गोंडों के जीवन को जीवन्त अभिव्यक्ति मिली है। इस उपन्यास का कथ्य गोंडों के अधिकार और रक्षा के प्रश्न के चारों ओर केन्द्रित है। पात्रों के माध्यम से, जिनमें महुआ, झालरसिंह आदि मुख्य हैं, आंचलिक जीवन के विविध रंगी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। समग्रतः 'जंगल के फूल' गोंड जीवन को उसकी समस्त जातिगत विशिष्टता के साथ प्रस्तुत करने वाली सूक्ष्म और सफल कृति बन पड़ी है।

रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' जय प्रकाश भारती का 'कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' तथा आनन्द प्रकाश जैन का 'आठवी भाँवर' का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। 'कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' में जौनसार बाबर के जन–जीवन को यथार्थ की भूमिका पर देखने का प्रयास करने की अपेक्षा उसे मौलिक संवेदना का विषय बनाकर छोड़ दिया है। फिर भी उस अँचल के लोगों और विशेषकर वहाँ की महिलाओं के शोषण को अभिव्यक्ति देकर लेखक ने उस अलक्षित प्रथा की ओर सोचने की दिशा दी है जो इस अंचल की अपनी विशेषता कही जा सकती है।

आनन्द प्रकाश जैन की 'आठवी भाँवर' की आंचलिकता भी बहुत करके उसकी परिमार्जित

अत्यधिक स्वाभाविक और प्रवाहमान भाषा– शैली के कारण ही प्रतिष्ठित हुई है। इसका कथ्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गोसाइयों की जीवन–प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। गोसाइयों की वैवाहिक परम्परा की जो अदला–बदली के रिवाज पर आधारित है, इस कृति में विस्तार से विवेचना हुई है।

आँचलिक उपन्यासों में 'मैला आँचल' का विशिष्ट स्थान है। रेणु ने अपने उपन्यास के माध्यम से उपेक्षित एवं पिछड़े हुए आँचल को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। उनकी प्रमुख उपलब्धि भी रही–अँचल की समग्र अभिव्यक्ति। मैला आँचल में पूर्णिया अंचल के ग्रामीण जीवन के सभी समाजिक क्रिया–चेतना तथा अनभिज्ञता की संपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। रेणु ने पूरे ग्रामीण समाज के जीवन की एक ओर व्यापकता और दूसरी ओर गहराई को भी अभिव्यक्त करने के लिए बाह्य सतहों से जुड़ी घटनाओं, सामाजिक क्रियाओं और संबंधों का इतना संपूर्ण तथा विस्तृत चित्रण किया है कि भारतीय गांव संबंधी किसी एक समाजशास्त्रीय अध्ययन में पर्यवेक्षण का इतना विस्तार तथा गहराई नहीं मिलती है। यह उपन्यास इस अर्थ में आँचलिक है कि यह किसी एक व्यक्ति विशेष की कथा नहीं है। वह तो एक अँचल–विशेष मेरीगंज गांव की संपूर्ण एवं समग्र जीवन–कथा है। जैसा रेणु ने स्वयं 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है– यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथांचल है पूर्णियां पूर्णिया–बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर है नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। इस प्रकार 'मैला आँचल' उपन्यास पिछड़े राज्य बिहार के पिछड़े जिले पूर्णिया के पिछड़े अंचल–विशेष कर पिछड़े हुए गांव मेरीगंज की कथा है। सभी कथाएं आँचलिक परिवेश की ही पुष्टि करती हैं। पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से वस्तुतः उपन्यासकार ने अँचल–विशेष की समस्त अच्छाई एवं बुराई की ही अभिव्यक्ति की है। मेरीगंज का परिवेश भौगोलिक, मानसिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से पिछड़ा हुआ है। इन सब की यथार्थ अभिव्यक्ति 'मैला आँचल' में हुई है।

'मैला आँचल' का जहाँ वस्तुगत महत्त्व है वहीं इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। 'मैला आँचल' उपन्यास की विशिष्टता ये है कि ये अन्य आँचलिक उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस कृति के द्वारा ही आँचलिकता को हिन्दी में पहली बार रेखांकित किया गया। जहाँ तक इस उपन्यास के विशिष्ट महत्त्व का प्रश्न है, उसके सन्दर्भ में पहली बात यह कही जा सकती है कि यह आँचलिक उपन्यासों की श्रृंखला में ऐसा प्रथम उपन्यास है जिसके प्रकाशन के बाद से हिन्दी में आँचलिकता की खोज आरम्भ हुई और उपन्यासों का एक नया प्रकार पाठकों के सम्मुख आने लगा।

'मैला आँचल' का दूसरा महत्त्व इस बात को लेकर भी है कि रेणु ने इसमें आँचलिक जीवन के अस्वस्थ और पुष्ट दोनों पक्षों का उद्घाटन किया है। मानवीय संवेदना के साथ इस बात का संकेत दिया है कि इन उपेक्षित अँचलों को भी शहरी सुविधा, विकास और सम्पन्नता में अपना भाग मिलना चाहिए। इस कृति में अत्यन्त मानवीय संवेदना के साथ लोक जीवन की उन विशेषताओं और

विसंगतियों को भी देखा है, जहाँ सामान्य सी दवाइयों के अभाव में लोग कीड़ों की तरह मर रहे हैं और उन्हें इस बात का पता ही नहीं है कि विज्ञान के इस युग में कितनी जीवन–सेवी औषधियों का निर्माण हो चुका है। बिना मानवीय संवेदना के साहित्यकार कालजयी रचना नहीं दे सकता। 'मैला आँचल' में समाजगत और व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर उन्होंने इसी उदात्त आदर्श की स्थापना की है और सफलता के साथ की है। अपने समय की विभिन्न और परस्पर विपरीत वादात्मक भूल–भूलैया में पड़ी रचनाधर्मिता का उन्होंने अपनी रचनात्मक, स्वस्थ और लोकहितोन्मुखी दृष्टि से संस्कार किया है और अन्याय, शोषण, अभाव तथा क्रूरता के बीच कठिनता से साँस लेते हुए लोक जीवन के हित के लिए एक ऐसा जीवनादर्श प्रस्तुत किया है जिससे जीवन में संतुलन और संगति आ सके। कथ्य की दृष्टि से रेणु की यही मानवीयता, जो 'मैला आँचल' के पृष्ठ–पृष्ठ पर रेखांकित हुई चलती है, उनकी रचनाओं का सत्य है–ऐसा सत्य जो समाज में समतावादी आदर्श की व्यावहारिक प्रतिष्ठा होने तक धूमिल नहीं हो सकता।

भाषा और शिल्प के स्तर पर भी रेणु का प्रदेय कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह ठीक है कि आंचलिक शब्दों के बहुल प्रयोग ने बिहार अँचल से अपरिचित पाठकों के लिए कई स्थलों पर कठिनाई उत्पन्न कर दी है, लेकिन उनकी भाषा का प्रभाव उनके भाव को पाठक को भीतर तक गुदगुदा देने की अपूर्व क्षमता से सम्पन्न भी है। 'मैला आँचल' में भाषा और शिल्प के विभिन्न प्रयोगों से जो विविधता ला दी है वह उसके महत्व को बढ़ाने में सहायक ही हुई है। इस उपन्यास में कथ्य और भाषा के स्तर पर भी सन्तुलन का निर्वाह हुआ है।

3.6 सारांश

स्पष्ट है कि रेणु ने इस कृति के माध्यम से हिन्दी उपन्यास को लोक जीवन से जुड़े शब्दों से समृद्ध करने की दिशा भी दी है। एक कृति के माध्यम से वैचारिकता और शिल्प दोनों स्तरों पर इतनी नवीनता को सम्प्रेषित और प्रतिष्ठित करना निश्चित ही एक बड़ी प्रतिभा का कार्य है।

3.7 कठिन शब्द

1. वैचारिकता
2. प्रतिष्ठित
3. नवीनता
4. सम्प्रेशित

5. निर्वाह
6. अनभिज्ञता
7. उपेक्षित
8. विवादास्पद
9. संवेदना
10. भौगोलिक

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आँचलिकता की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।

2. आँचलिक उपन्यास के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

3. आँचलिक उपन्यास परम्परा में 'मैला आँचल' का स्थान निर्धारित कीजिए।

4. 'मैला आँचल' की किसी प्रमुख विशेषता का चित्रण कीजिए।

5. ''जितना जीवन की गति की तीव्रता का आभास 'मैला आँचल' में होता है उतना उसकी गंभीरता का नहीं''। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

3.9 पठनीय पुस्तकें

1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास – उमेश शास्त्री
5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी
6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा

7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा

8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल

9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर

10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा

11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान

12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना

13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

– – – – –

मैला आँचल के पात्र

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 'मैला आँचल' के पात्र

4.3.1 डॉक्टर प्रशान्त

4.3.2 कालीचरण

4.3.3 बालदेव

4.3.4 लछमी

4.3.5 कमला

4.4 कठिन शब्द

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे कि–

- उपन्यास की कथावस्तु का विकास इसमें समाहित पात्रों के माध्यम से होता है।

- किसी भी उपन्यास में पात्र योजना और उनके चरित्रांकन–कौशल का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
- 'मैला आँचल' का कथा संसार एक छोटे से गाँव में केंन्द्रित होने पर भी पात्रों से भरापूरा है।
- इस उपन्यास में उपन्यासकार ने कथ्य के अनुसार ही अपने पात्रों का संसार गढ़ा है।

4.2 प्रस्तावना

उपन्यास की कथावस्तु का विकास उसमें समाहित पात्रों के माध्यम से किया जाता है, अतः किसी भी उपन्यास में पात्र–योजना और उनके चरित्रांकन–कौशल का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उपन्यासकार अपनी कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का चयन करके उनकी आकृति, प्रकृति, मनोदशा, विचार, अनुभव आदि का चित्रण करता है और इस प्रकार कथानक को सजीव, स्वाभाविक, जीवन के अनुकूल और सप्राण बनाता है। उपन्यासकार की इस दृष्टि से सफलता का मानदण्ड यह होता है कि उसके पात्रों के क्रिया कलाप और विचार आदि सजीव–स्वाभाविक प्रतीत हों।

4.3 'मैला आँचल' के पात्र

'मैला आँचल' का कथा संसार एक छोटे से गांव में केंद्रित होने पर भी पात्रों से भरापूरा है। 'मैला आँचल' में एक भी ऐसा पात्र नहीं जिसे 'केन्द्रीय' कहा जा सके। रेणु अपने कथ्य के अनुरूप ही अपने पात्रों का संसार गढ़ते हैं। चूंकि मेरीगंज इस संसार के केंद्र में है अतः इसके आधे से अधिक पात्र या तो मेरीगंज के निवासी हैं या मेरीगंज उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। रेणु जी का चरित्र–चित्रण मनोविज्ञान की आधार–भूमि पर नितांत सप्राण, स्वाभाविक और मौलिक बन पड़ा है।

4.3.1 डॉक्टर प्रशान्त :–

यद्यपि 'मैला आँचल' एक नायक–नायिका–विहीन उपन्यास है। इस उपन्यास में किसी भी पात्र के चरित्रांकन को इतनी प्रमुखता नहीं दी गई है कि उसे उपन्यास का नायक कहा जा सके, तथापि जहाँ तक पुरुष पात्रों का सम्बन्ध है डाक्टर प्रशान्त उपन्यास के मुख्यतम पात्रों में से एक है। मेरीगंज के ग्रामीण वातावरण में जहाँ डाक्टर प्रशान्त का शोधकार्य और कमला का प्रेम–प्रसंग भी चलता रहता है जिसकी परिणति उन दोनों के विवाह में होती है।

अज्ञात कुलशील :–

डा॰ प्रशान्त के माता–पिता और कुल गोत्र के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वह मेरीगंज आता है तो लोग उससे नाम के साथ–साथ जाति भी पूछते हैं। प्रशान्त अपनी जाति डाक्टर बताता है। जब उससे

यह पूछा जाता है कि बंगाली है या बिहारी तो उसका उत्तर है– हिन्दुस्तानी। लोग समझते हैं कि डाक्टर अपनी जाति छिपाता है।

"सच्ची बात यह है कि वह अपनी जाति के बारे में खुद नहीं जानता। यदि उसे अपनी जाति का पता होता तो शायद उसे बताने में झिझक नहीं होती। तब शायद जाति–पाति के भेद–भाव पर से उसका भी पूर्ण विश्वास नहीं हटता। तब शायद ब्राह्मण कहने में वह गर्व अनुभव करता।"

इधर–उधर के लोगों से उसने अपने विषय में जो कुछ सुना है वह इस प्रकार है –

"बचपन से ही वह अपने जन्म की कहानी सुन रहा है। घर की नौकरानी, बाग का माली और पड़ोस का हलवाई भी इसके जन्म की कहानी जानता था। लोग बरबस उसकी ओर उँगली उठाकर कहने लगते थे–उस लड़के को देखते हो जी ? उसे उपाध्याय जी ने कोशी नदी में पाया था। बंगालिन डाक्टरनी ने पाल–पोसकर बड़ा किया है।' फिर लोगों के चेहरों पर जो आश्चर्य की रेखा खिंच जाती थी और आँखों में जो करूणा की हल्की छाया उतर आती थी, उसे प्रशान्त ने सैकड़ों बार देखा है। .... एक लावारिस लाश को भी लोग वैसी ही दृष्टि से देखते हैं।

प्रशान्त अज्ञात कुलशील है। उसकी माँ ने एक मिट्टी की हाँडी में डालकर बाढ़ से उमड़ती हुई कौशी मैया की गोद में उसे सौंप दिया था। नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार ने, नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा अंचल में आदर्श आश्रम की स्थापना की थी। एक दिन उपाध्यायजी बाढ़ पीड़ितों की हाँडी देखी– नई हाँडी। उनकी स्त्री को कौतूहल हुआ, जरा देखो न, उस हाँडी में क्या है ? नाव झाड़ी के पास पहुँची, पानी के हिलोर से हाँडी हिली और उससे एक साँप गरदन निकालकर फों–फों करने लगा। साँप धीरे–धीरे पानी मे ंउतर गया और हाँडी से नवजात शिशु के रोने की आवाज आई, मानो माँ ने थपकी देना बन्द कर दिया। ..... बस यही उसके जन्म की कथा है, जिसे हर आदमी अपने–अपने ढंग से सुनाता है।

अध्ययन–काल में वह अपने पिता के रूप में 'अनिलकुमार बनर्जी' का फर्जी, नाम लिखता आया है जबकि जाति के कालम में ब्राह्मण भरता आ रहा है–

".... प्रशान्तकुमार, पिता का नाम अनिलकुमार बनर्जी, हिन्दू ब्राह्मण। सब झूठ। बेचारा डॉ० अनिलकुमार बनर्जी, नेपाल की तराई के किसी गाँव में अपने परिवार के साथ सुख की नींद सो रहा होगा। प्रशान्तकुमार नामक उसका कोई पुत्र हिन्दू विश्वद्यािलय में नाम लिखा रहा है, ऐसा वह सपना भी नहीं देख सकता। लेकिन प्रशान्त अपने तथाकथित पिता डा० अनिलकुमार को जानता है। मैट्रिक परीक्षा के लिए फार्म भरने के दिन डॉ० अनिल उसके पिता के रिक्तकोष्ठ में आकर बैठ गए थे।"

परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा परिपोषण :–

शिशु प्रशान्त का पालन–पोषण एक परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा किया जाता है–

"आदर्श आश्रम में एक दुखिया युवती थी–स्नेहमयी। स्नेहमयी को उसके पति डॉ॰ अनिलकुमार बनर्जी ने त्याग कर नेपालिन से शादी कर ली थी। उपाध्यायजी के आश्रम में रहकर वह हिरण, खरगोश, मयूर और बन्दर के बच्चों पर अपना स्नेह बरसाती रहती थी। तरह–तरह के पिंजड़ों को लेकर वह दिन काट लेती थी। उस दिन जब उपाध्याय दम्पति ने उसकी गोद में सोया हुआ शिशु दिया, तो वह आनन्द–विभोर होकर चीख उठी थी– प्रशान्त ! ...... आमार प्रशान्त ! उस दिन से प्रशान्त स्नेहमयी का एकलौता बेटा हो गया। कुछ दिनों के बाद नेपाल सरकार ने निष्कासन की आज्ञा रद्द करके उपाध्याय परिवार को नेपाल बुला लिया– आदर्श आश्रम के पशु–पक्षियों के साथ। स्नेहमयी और प्रशान्त भी उपाध्याय परिवार के ही सदस्य थे। उपाध्याय जी ने नेपाल की तराई के विराटनगर में आदर्श–विद्यालय की स्थापना की। स्नेहमयी उसी स्कूल में सिलाई–कढ़ाई की मासटरनी नियुक्त हुई।"

प्रशान्त की डाक्टर की पढ़ाई इस अपनायी हुई माँ की इच्छा के ही कारण होती है –

"हिन्दू विश्वविद्यालय से आई॰ एस॰ सी॰ पास करने के बाद वह पटना मेडिकल कालेज में दाखिल हुआ। मां की इच्छा थी कि वह डाक्टर बने। लेकिन अपने प्रशान्त को वह डाक्टर के रूप में नहीं देख पाई। काशीवास करते–करते काशी की किसी गली में वह हमेशा के लिए खो गई। .... एक बार लाहौर से प्रशान्त के नाम पर एक मनीआर्डर आया था–विजय का आशीर्वाद लेकर भेजने वाली थी– श्रीमती स्नेहमयी चोपड़ा ! कि माँ ने जन्म लेते ही कोशी गया की गोद में सौंप दिया और दूसरी ने जनसमुद्र की लहरों को समर्पित कर दिया।"

ग्रामीण लोगों की सेवा की सच्ची भावना :–

सन् 1942 के देशव्यापी आन्दोलन में प्रशान्त का सम्बन्ध उपाध्याय परिवार से होने के कारण उसे भी नजरबन्द कर लिया गया था। जेल में उसका सम्पर्क विभिन्न दलों के कार्यकर्त्ताओं और नेताओं से हुआ।" .... सभी दल के लोग उसे प्यार करते थे। अपने इस परिचय का लाभ उठाकर उसने अपनी नियुक्ति गाँव में कराई–

"1946 में जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल का गठन हुआ तो एक दिन वह हेल्थ मिनिस्टर के बंगले पर हाजिर हुआ। वह पूर्णिया के किसी गाँव में रहकर मलेरिया और काला आज़ार के सम्बन्ध में रिसर्च करना चाहता है। उसे सरकारी सहायता दी जाए। मिनिस्टर साहब ने कहा था– 'लेकिन सरकार तुम को विदेश भेज रही है। स्कालरशिप......"

"जी मैं विदेश नहीं जाऊँगा," पूर्णिया और सहरसा के नक्शे को फैलाते हुए उसने कहा था– "मैं इसी नक्शे के किसी हिस्से में रहना चाहता हूँ। यह देखिए, यह है सहरसा का वह हिस्सा जहाँ हर साल कोशी का तांडव नृत्य होता है। और यह पूर्णिया का पूर्वी आँचल, जहाँ मलेरिया और काला आजार हर साल मृत्यु की बाढ़ ले आते हैं।"

मिनिस्टर साहब प्रशान्त को अच्छी तरह जानते थे। इस विषय पर प्रशान्त से तर्क में जीतना मुश्किल है। लेकिन सवाल यह है कि ....."

"सवाल जवाब कुछ नहीं, मुझे किसी मलेरिया सेंटर में ही भेज दीजिए।"

"मलेरिया सेंटर में ? तुम एम॰ बी॰ बी॰ एस॰ हो और मलेरिया काला आजार सेंटरों में एल॰ एम॰ सी॰ डाक्टर लिए जाते हैं।"

"जब तक मैं यह रिसर्च पूरा नहीं कर लेता, मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरी डिग्री किस काम की !"

अंततः प्रशान्त की जीत हुई थी और केन्द्रीय सरकार के परामर्श से प्रेस नोट में यह सूचना प्रकाशित की गई कि पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक गांव में मलेरिया स्टेशन खोला गया है–दि स्टेशन विल अंडरटेक मलेरिया एण्ड काला आजार इन्वेस्टिगेशन इन ऑल ऐस्पेक्ट्स– प्रिवेंटिव, क्यूरेटिव एण्ड इकॉनामिक।

प्रशान्त के किसी भी साथी को उसका यह निर्णय पसन्द नहीं आया था और कुछ ने तो इसे उसकी बेवकूफी तक कह दिया था।

"प्रशान्त के इस फैसले को सुनकर मेडिकल कालेज के अधिकारियों, अध्यापकों और विद्यार्थियों पर तरह–तरह की प्रतिक्रिया हुई। मशूहर सर्जन डा॰ लटवर्धन ने कहा – "बेवकूफ है।"

बस एकमात्र उसके प्रिंसिपल ने ही उसे इस निश्चय की सराहना करते हुए कहा था–

"तुमसे यही उम्मीद थी। मैं तुम्हारी सफलता की कामना करता हूं। जब कभी तुम्हें किसी सहायता की आवश्यकता हो, हमें लिखना।"

उसके प्रिंसिपल द्वारा उत्साह–वर्द्धन किए जाने के साथ मद्रास के मेडिकल गजट में भी उसके इस साहसिक कदम की सम्पादकीय लिखकर प्रशंसा की गयी थी। उसके प्रति स्नेहभाव रखने वाली ममता के उद्‌गार थे–

"आखिर तुम्हारा भी माथा खराब हो गया ! तुमने तो कभी बताया नहीं बलिहारी है तुम्हारी ! ... . ओह, प्रशान्त, तुम कितने बड़े हो, कितने महान्।...."

प्रशान्त भावुकता–वश ही मेरीगंज में अपनी नियुक्ति नहीं करता अपितु उसके हृदय में मलेरिया और काला आजार के विषय में शोध और निर्धन ग्रामीणों की सच्ची भावना विद्यमान है। ममता को लिखे एक पत्र में वह ग्राम वासियों के विषय में सूचित करता है –

"गाँव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञान, और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहां तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पांच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगी।"

ग्रामीणों के इलाज के लिए प्रशान्त दवाओं के साथ–साथ अपनी बुद्धि का भी सम्यक् उपयोग करता है। कमला के विषय में वह ममता को लिखता है–

"केस अजीब है। केस–हिस्ट्री और भी दिलचस्प है। तुम्हारी शीला रहती तो आज खुशी से नाचने लगती, हिस्टीरिया, फोबिया, काम–विकृति और हठ–प्रवृत्ति जैसे शब्दों की छड़ी लगा देती। शीला से भेंट हो तो कहना मैंने अपने पोर्टेवल रेडियो से उसके दिमाग को झकझोर कर दूसरी ओर करने की चेष्टा की है।"

मेरीगंज में आकर एक ओर तो वह वहां के आबाल–वृद्ध नर–नारियों के इलाज में लगा रहता है, दूसरी ओर अपने शोध–कार्य में निमग्न रहता है–

"प्यारू को इन चूहों और खरगोशों से बेहद नफरत है। ..... आदमी के इलाज से जी नहीं भरता है तो जानवरों का इलाज करते हैं। दिन–भर पिजड़ी को लेकर पड़े रहते हैं। बुखार देखते हैं, सूई देते है और खून लेते हैं। जब से ये जानवर आये हैं, डाक्टर साहब को प्यारू से बात करने की भी छुट्टी नहीं मिलती।"

यही कारण है कि अवसर मिलते ही वह प्रशान्त के परीक्षणों के हेतु लाए गए जानवरों को भगाता रहता है।

ग्रामवासियों के जीवन को सुख–वैभवपूर्ण और नीरोग बनाने के लिए उसने जो स्वप्न देख रखा है, वह इस प्रकार है –

"वह नये संसार के लिए इन्सान को स्वस्थ और सुन्दर बनाना चाहता था। यहाँ इन्सान है कहाँ ? अभी पहला काम है जानवर को इन्सान बनाना ! उसने ममता को लिखा है –

"यहीं की मिट्टी में बिखरे, लाखों लाख इन्सानों की जिन्दगी के सुनहरे स्वप्नों को बटोरकर, अधूरे अरमानों को बटोरकर, यहाँ के प्राणी के जीवकोष में भर देने की कल्पना मैंने की थी। मैंने कल्पना की थी, हजारों स्वस्थ इन्सान हिमालय की कन्दराओं में त्रिवेणी के संगम पर, अरूण, तिमुर और सुणकोशी के संगम

पर एक विशाल डैम बनाने के लिए पर्वत तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। .... लाखों एकड़ बन्ध्या धरती, कोशी कवलित मरी हुई मिट्टी शस्य श्यामला हो उठेगी। कफन जैसे सफेद बालू में भरे मैदान में धानी रंग की जिन्दगी के वेल लग जाएंगे। मकई के खेतों से घास गढ़ती हुई औरतें बेवजह हँस पड़ेंगी। मोती जैसे सफेद दांतों की चमक ....।"

संथाल लोगों को डाक्टर जो परामर्श देता है वह उसके प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक है –

"डाक्टर ने कहा है कि तुम लोग ही जमीन के असल मालिक हो। कानून है, जिसने तीन साल तक जमीन को जोता बोया है, जमीन उसी की होगी।"

प्रशान्त को कम्यूनिस्ट होने के संदेह में गिरफ्तार किया जाता है तो वह इस बात को छिपाता नहीं है कि बहुत से कम्यूनिस्ट उसके दोस्त हैं।

कमला के प्रति अनुराग–भाव :–

कमला को पड़ने वाले हिस्टीरिया के दौरों के संदर्भ में प्रशान्त उसके सम्पर्क में आता है। प्रथम भेंट में ही वह कमला का मन अपनी मीठी बातों से मोह लेता है– हां उसकी मीठी बातों का उद्देश्य कमला की ओर आकर्षण–भाव न होकर उसे इंजैक्शन या दवा देने के लिए प्रस्तुत करना है। कमला प्रशान्त की जान–लेवा मुस्कराहट से परेशान है। वह अपनी माँ से कहती है कि तुम्हारा डाक्टर तो माटी का महादेव है, जबकि वह रोज शिव की पूजा करती है प्रशान्त उसकी बहकी–बहकी बातें सुनकर समझता है कि वह कुछ–कुछ पागलपन की शिकार है और उसे इंजेक्शन देना चाहता है। पागलपन की बात सुनकर कमला का चेहरा लाल हो उठता है बौर वह ब्लड–प्रेशर की जांच करने वाले प्रशान्त से कह ही देती है –

"हां जी मुझे पगली कहते हो ! लेकिन मुझे पगली बना कौन रहा है ?" कमला की नित्यप्रति की बातों का प्रशान्त के जीवन पर यह प्रभाव पड़ता है कि वह यह मानने को विवश हो जाता है कि कोई दिल नामक ऐसा भाव यंत्र भी है जो बायलॉजी के सिद्धान्तों से परे है–

"डाक्टर की जिन्दगी का एक नया अध्याय शुरु हुआ है। उसने प्रेम, प्यार और स्नेह को बायलॉजी के सिद्धांतों से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी। वह हँसकर कहा करता–दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में है, हमें नहीं मालूम। पता नहीं आदमी 'लंग्स' को दिल कहता है या हार्ट को। जो भी हो, हार्ट, लंग्स या लीवर का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

वह अब यह मानने को तैयार है कि आदमी का दिल होता है, शरीर को चीर–फाड़ कर जिसे हम नहीं पा सकते। वह हार्ट नहीं, वह अगम–अगोचर जैसी चीज हैं, जिसमें दर्द होता है, लेकिन जिसकी दवा

–ऐड्रिलिन' नहीं। उस दर्द को मिटा दो। आदमी जानवर हो जाएगा। .... दिल वह मन्दिर है जिसमें आदमी के अन्दर का देवता वास करता है।"

कमला से मिलने से पूर्व उसने किसी स्त्री को प्रेमिका के रूप में देखने की चेष्टा नहीं की है। जिसका मूल कारण उसकी अपनी जन्म–कथा में निहित है –

"पतिता, निर्वासिता और समाज की दृष्टि में सबसे नीच मां की गोद में वह क्षण भर के लिए अपना सिर रखने के लिए व्याकुल हो जाता है। किसी स्त्री को प्रेमिका के रूप में कभी देखने की चेष्टा नहीं की। वह मन ही मन बीमार हो गया था। एक जवान आदमी को शारीरिक भूख नहीं लगे तो वह निश्चय ही बीमार है, अथवा एब्नार्मल है।"

हां कमला के संसर्ग में आकर जो स्वयं को शकुन्तला और प्रशान्त को दुष्यंत, या स्वयं को दमयंती और प्रशान्त को नल मानती है, प्रशांत को सर्वथा एक नयी अनुभूति होती है–

"डाक्टर ने एक नये मोड़ पर मुड़कर देखा, दुनिया कितनी सुन्दर है ! "

जीवन के प्रेममय सुनहरे पक्ष से अब तक अछूते रहने वाले प्रशान्त के हृदय में कमला के सम्पर्क के पश्चात् ऐसी भाव लहरियाँ उठने लगती हैं–

"डाक्टर भी किसी की दुलार भरी मीठी धमकियों के सहारे सो जाना चाहता है, गहरी नींद में खो जाना चाहता है। जिन्दगी की जिस डगर पर यह बेतहाशा दौड़ रहा था, उसके अगल–बगल आस–पास, कहीं क्षण–भर सुस्ताने के लिए कोई छाँव नहीं मिली। उसने किसी पेड़ की डाली की शीतल छाया की कल्पना भी नहीं की थी। जीवन की इस नयी पगडण्डी पर पाँव रखते ही उसे बड़े जोरों की थकावट मालूम हो रही है। वह राह की खूबसूरती पर मुग्ध होकर छाँव मे पड़ा नही रह सकेगा। मंजिल तक पहुँचने का यह कितना जबरदस्त रास्ता है। जो राही को मंजिल तक पहुंचने की प्रेरणा देता है। ... वह क्षंण भर सुस्ताने के लिए उदार छाया चाहता है प्यार ! ..... "

कमला और प्रशान्त का एक–दूसरे के प्रति आकर्षण दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है और पहले तो प्रशान्त ही चाय पीने और कमला को देखने के लिए तहसीलदार साहब के यहां जाया करता था जबकि बाद में कमला उसके यहाँ आने और गई रात लौटने लगती है। परिणाम यही निकलता है जिसकी युवक–युवतियों के नित्य–प्रति एकांत में मिलते रहने पर संभावना की जा सकती है। प्रशान्त की कम्यूनिस्ट होने के संदेह में गिरफ्तारी के पश्चात् रहस्योद्घाटन होता है कि कमला गर्भवती है। कमला के माता पिता को संदेह है कि प्रशान्त कमला को नहीं अपनाएगा किन्तु वह जेल से मुक्त होकर मेरीगंज आ पहुंचता है और तहसीलदार साहब की चरण–धूलि लेकर इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वह कमला को अपनाने

के लिए सहर्ष प्रस्तुत है। यही नहीं एक बार तो प्रशान्त निराश हो उठा था किन्तु अंततः अपना यह निश्चय व्यक्त करता है कि वह मेरीगंज में ही रहते हुए प्यार की खेती में साधना लीन रहेगा।

"ममता ! मैं फिर काम शुरु करूंगा– यहीं इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहराएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले। कम–से–कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये होठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।"

भावुकता :–

प्रशान्त यद्यपि पेशे से डाक्टर है जो अपने व्यवसाय के प्रभाव–स्वरूप किंचित् अकरूण और शुष्क–नीरस हो जाते हैं, किन्तु प्रशान्त इसके विपरीत भावुकता से ओत–प्रोत है। प्रथमतः तो वह अपनी उस अभागिनी किन्तु क्रूर हृदया जननी के प्रति ही जब तब भावुक हो उठता है जिसने उसे जन्म देते ही काशी में प्रवाहित कर दिया था–

"अंधेरे में एक अभागिनी माँ, दिल का दर्द दबाए और आँचल में अपने नवजात शिशु को छिपाए खड़ी है। एक काली और भयावनी छाया आकर हाथ बढ़ाती है, माँ अन्तिम बार अपने कलेजे के टुकड़े को, रक्त के पिंड को, एक पलक निहारती है, चूमती है। भयावनी छाया उसके हाथ से शिशु को छीन लेती है। माँ दाँतों से ओंठ दबाए खड़ी रह जाती है।

डाक्टर ने अपनी माँ के स्नेह को अंधेरे में खड़ी 'सिल्हुटेड' तस्वीर सी माँ के दुलार की कीमत को समझने की चेष्टा की है। वह गला टीप कर मार भी तो सकती थी। खटमल को मसलने के लिए अँगुलियों पर जितना जोर डालना पड़ता है, उस पाँच घंटे की उम्र के शिशु की जीवन–लीला को समाप्त करने के लिए उतने–से जोर की ही आवश्यकता थी। माँ ऐसा नहीं कर सकी।" शायद उसने चेष्टा की होगी। गले पर एक–दो बार उंगलियाँ गई होंगी। सोया हुआ शिशु मुस्कुरा पड़ा होगा और वह उसे सहलाने लगी होगी।... उसने अपनी बेबस लाचार और अभागिनी माँ के मन में उठने वाले तूफान के झकोरे की कल्पना की है। ..... वह अपनी माँ के पवित्र स्नेह का, अपराजित प्यार का जीता जागता प्रमाण है।"

अपनी अभागिनी माँ की कल्पना में डूबने वाला प्रशान्त जब किसी ऐसी ही अभागिनी माँ की कहानी सुनता है तो विभोर हो उठता है –

"किसी भी अभागिन माँ की कहानी सुनते ही वह मन ही मन उसकी भक्ति करने लगता है। पतिता, निर्वासिता और समाज की दृष्टि में सबसे नीच माँ की गोद में वह क्षण–भर के लिए अपना सिर रखने के लिए व्याकुल हो जाता है।"

इस जगत में व्याप्त आपा–धापी और स्वार्थपरता की भावना से व्याकुल होकर वह सोचता है कि लोग धरती–माँ की हत्या करके रहेंगे –

".... माँ ! माँ वसुन्धरा, धरती माता ! माँ अपने पुत्र को नहीं मार सकी, लेकिन पुत्र अपनी माँ को गला टीपकर मार देगा। शस्य श्यामला ! .....

"भारतमाता ग्रामवासिनी

खेतों मे ंफैला है श्यामल

धूल भरा मैला–सा आँचल।"

अपने बीमारी विषयक शोध–कार्य में सफल होकर भी वह स्वयं को इस दृष्टि से असफल समझता है कि ग्रामीणों की सबसे बड़ी बीमारी भूख है जो लाइलाज है–

"आम से लदे हुए पेड़ों को देखने से पहले उसकी आँखें इनसान के उन टिकोलों पर पड़ती हैं, जिन्हें आमों की गुठलियों से सूखे गूदे की टोटी पर जिन्दा रहना है। और ऐसे इनसान ? भूखे, अतृप्त इनसानों की आत्मा कभी भ्रष्ट हो या कभी विद्रोह नहीं करे ऐसी आशा करनी ही बेवकूफी है। .... डाक्टर यहाँ की गरीबी और बेबसी को देखकर आश्चर्यचकित होता है। वह संतोष कितना महान् है जिसके सहारे यह वर्ग जी रहा है ? आखिर वह कौन सा कठोर विधान है, जिसने हजारों–हजार क्षुधितों को अनुशासन में बाँध रखा है।

.....कफ से जकड़े हुए दोनों फेफड़े, ओढ़ने को वस्त्र नहीं, सोने को चटाई नहीं, पुआल भी नहीं ! भीगी हुई धरती पर लेटा न्यूमोनिया का रोगी मरता है।

निराश–हताश होकर वह सोचता है –

"क्या करेगा यह संजीवनी बूटी खोजकर ? उसे नहीं चाहिए संजीवनी। भूख और बेबसी से छटपटाकर मरने से अच्छा है मैलेग्नेंट मलेरिया से बेहोश होकर मर जाना। तिल–तिलकर, घुल–घुलकर मरने के लिए उन्हें ज़िन्दा रखना बहुत बड़ी क्रूरता होगी। ..... यहाँ इन्सान है कहाँ ? ..... अभी पहला काम है, जानवर को इन्सान बनाना।"

जानवर को इन्सान बनाने की दिशा में ही वह संथालों को यह समझाता है कि जमीन की तीन वर्ष तक जुताई–बुवाई करने वाला ही उसका असली मालिक हो जाता है, जिससे वहाँ के संथाल जमींदारों के प्रति विद्रोह कर देते हैं।

अनथक शोध–लगन :–

प्रशान्त के हृदय में मलेरिया और काला–आजार को निर्मूल करने के लिए शोध–कार्य करने की अनथक लगन विद्यमान है जिससे इन रोगों में लाखों की संख्या में अपने जीवन से हाथ धोने वाले नर–नारियों की जीवन रक्षा की जा सके। अपनी इस लगन के कारण ही वह पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक ऐसे गाँव को अपना शोध–क्षेत्र चुनता है, जहाँ पर जाने को उसके साथी डाक्टर और प्राध्यापक मूर्खतापूर्ण एवं भावुकता परक कदम घोषित करते हैं। हां वह स्वयं को ग्रामीण वातावरण के अनुकूल ढाल लेता है और जनकल्याण के विषय में सोचता है–

"वह लोक–कल्याण करना चाहता है। मनुष्य के जीवन को क्षय करने चाले रोगों के मूल का पता लगाकर नई दवा का आविष्कार करेगा। रोग के कीड़े नष्ट हो जाएँगे, इन्सान स्वस्थ हो जाएगा। दुनिया–भर के मेडिकल कॉलेजों में उसके नाम की चर्चा होगी।"

प्रशान्त बन्दरों, खरगोशों आदि पर प्रयोग करके अपना शोध–कार्य दिन –रात जारी रखता है और उसकी यह लगन अपना रंग भी दिखाती है, जब मेडिकल गजट में उसके शोधकार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की जाती है–

"हमें विश्वास हो गया है कि डा॰ प्रशान्त मलेरिया और काला आजार के बारे में ऐसे तथ्यों का उद्घाटन करेंगे जिससे हम अब तक अनभिज्ञ थे। ... नई दवा तथा नये उपचार की संभावनाओं से सारा मेडिकल–संसार उनकी ओर निगाहें लगाए बैठा है।"

इसका कारण यही है कि उसने मच्छरों की आदतों और अंडे देने आदि की विधियों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है–

"एमोफिलीज के भी कई ग्रुप होते हैं। हर ग्रुप के अलग–अलग ढंग हैं। किन्तु किसी–किसी ग्रुप में भी तरह–तरह के छोटे–छोटे सब–ग्रुप होते हैं जिनकी आदतों और प्रजनन ऋतु में विभिन्नता पाई गई है। .... उनके लुकने–छिपने, पसन्दगी और नापसन्दगी में भी फर्क है। ...... मैंने एक ही ग्रुप के मच्छरों को तीन किस्म से अंडे छोड़ते पाया है और हर ग्रुप में कुछ दल–विशेष हैं जो हवा में अंडे छोड़ते हैं। .... इनकी चालाकी और बुद्धिमानी का सबसे बड़ा दिलचस्प उदाहरण यह है कि एक ही मौसम में, एक ही ग्रुप के मच्छर हमलों के लिए पन्द्रह तरह के तरीके व्यवहार करते हैं। ..... कुछ तो एकदम ड्राइव फ्लाइंग करके ही हमला करते हैं।"

अपने इस सूक्ष्म अध्ययन के बलबूते पर वह अपने कॉलेज का होनहार छात्र माना जाता है।

"पटना मेडिकल कालेज को इस बात पर गर्व है कि बिहार का एक मात्र मैलेरियालॉजिस्ट डा॰ प्रशान्त उसी की देन है।"

गाँव वालों की निर्धनता और मूढ़ता से खीझकर प्रशान्त एक बार तो निराश हो उठता है। वह उनकी सबसे बड़ी बीमारी निर्धनता और अभाव मानता है जिनका उसके पास कोई इलाज नहीं है। इसके साथ ही उसे ग्राम–वासियों की इस मूढ़ता का सामना भी करना पड़ता है कि वे कुओं में हैजे से बचने की लाल दवा के डालने को हैजा फैलाने का षड्यंत्र मानते हैं। इसी प्रकार वे सूई नहीं लगवाना चाहते, क्योंकि उनका विश्वास है कि ऐसा, करके डाक्टर उनके शरीर की शक्ति को कम करना चाहता है। ज्योतिषी काका उसके परम शत्रु हैं क्योंकि प्रशान्त के आने पर उनकी गाँव में पूछ नहीं रही है और वे यह बात भी फैला देते हैं कि डाक्टर जरमनी वालों का जासूस है, किन्तु जेल से छूटकर आने पर वह पुनः यह निश्चय करता है कि मैं मेरीगंज में ही रहते हुए यहाँ के निवासियों की दशा सुधारने की चेष्टा करूंगा।

डाक्टरी के नाम पर लूट नहीं मचाता :–

प्रशान्त के चरित्र की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि डाक्टरी के नाम पर ग्राम के लोगों को उल्टे उस्तरे से नहीं मूँड़ता। आम डाक्टरों का रवैया यह होता है कि वे मरीजों को लाल पानी देकर अपनी जेबें भरते रहते हैं किन्तु प्रशान्त का दृष्टिकोण इस तथ्य के सर्वथा विपरीत है। निम्नांकित उदाहरण इस तथ्य का उत्तम परिचायक है–

"डाक्टर साहब !"

'क्या है ?"

"जरा चलिए ! मेरी बहन को कै हो रही है।"

"पेट भी चलता है ?"

"जी !"

डॉक्टर तुरंत तैयार होकर चल देता है। पास के ही गाँव में जाना है। ..... डॉयरिया होगा। लेकिन 'सेलाइन सेपरेटस' भी ले लेना अच्छा होगा।

"तीस बार पेट चला है ?"

बिछावन पर पड़ी हुई युवती पीली पड़ गई है। उसके हाथ–पाँव अकड़ रहे हैं। पेशाब बंद है। हैजा ही है। डॉक्टर 'सेलाइन आपरेटस' ठीक करता है। स्पिरिट स्टोव जलाता है, नार्मल सेलाइन की बोतल

निकालता है। बूढ़ा बाप हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहता है, और आखिर कह ही डालता है, "डाक्टर साहब, यह जो जक्शैन दे रहे हैं इसका फीस कितना होगा ?"

छोटे जकसैन का फीस तो दो रुपया है। इतने बड़े जकसैन का तो जरूर पचास रुपैया होगा।

"क्यों ? पचास रुपैया", डॉक्टर मुस्कराता है।

"तो रहने दीजिए। कोई दवा ही दे दीजिए।"

"दवा से कोई फायदा नहीं होगा।"

"लेकिन मेरे पास इतने रुपये कहाँ है ?"

"बैल बेच डालो," डॉक्टर पहले की तरह मुस्कराते हुए सेलाइन देने की तैयारी कर रहा है।

"डाक्टर बाबू, बैल बेच दूँगा तो खेती कैसे करूँगा , बाल–बच्चे भूखों मर जाएँगे। ..... लड़की की बीमारी है।"

कहना न होगा कि प्रशान्त इस निर्धन व्यक्ति से कुछ भी नहीं लेता, अगर लेता है तो मात्र दवा की कीमत ही।

गाँव में हैजा फैलने पर यदि प्रशान्त चाहता तो पहले बीमारी को फैल जाने देता और बाद में अपनी जेबें भरता, किन्तु वह तो कालीचरण और बालदेव आदि लोगों की सहायता लेकर कुओं में लाल दवा डालता है और लोगों के बलात् हैजा के टीके लगाता है। हैजे को संक्रामक रूप से फैलने से रोकने में किए अनथक प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रशान्त की देवता के रूप में प्रशंसा होने लगती है–

"घर–घर में एक–दो आदमी बीमार थे, लेकिन डॉक्टर देवता है। दिन– रात कभी एक पल चैन से नहीं बैठा। एक पैसा भी फीस नहीं ली और मुफ्त में रात–रात भर जागकर लोगों का इलाज करते रहे। रेसमनलाल कोयरी के इकलौते बेटे को जम के मुँह से छुड़ लिया। रेसम ने डॉक्टर की खुशी–खुशी एक गाय बख्शीश दी, लेकिन डॉक्टर साहब ने कहा– "अपने लड़के को इस गाय का दूध पिलाओ। दूध बिक्री मत करो। यही हमारा बक्सीस है"।

हैजे के रोगियों की देखभाल में रात–दिन लगे रहने के कारण प्रशान्त पन्द्रह दिन तक कमला को देखने नहीं जा पाता। कमला उसके बिगड़े स्वास्थ्य को देखकर चिन्तित हो उठती है।

"लेकिन डॉक्टर को देखते ही वह सब कुछ भूल गई। डॉक्टर का चेहरा एक दम लाल हो गया है। आँखें धँस गई हैं। प्यारू ठीक ही कहता था, 'डॉक्टर साहब दुनिया भर को आराम करा रहे हैं, लेकिन खुद बीमार होते जा रहे हैं। खाना–पीना तो एक दम कम हो गया है।"

विनोद–प्रिय एंव सहृदय :–

प्रशान्त स्वभाव से विनोद–प्रिय व्यक्ति है। गाँव का कोई भी पर्व–त्योहार या खेल–तमाशा हो उसमें वह खुलकर भाग लेता है। बिरपद नाच को देखना अच्छा नहीं माना जाता किन्तु वह उसे रूचिपूर्वक देखता है। होली के पर्व पर वह कालीचरन को रंग के लिए अपनी जेब से दस रुपए देता है। पारबती मौसी गाँव में डाइन के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु वह इस अभागी नारी की व्यथा को समझता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि मौसी उसे अपने पुत्र की भाँति प्रेम करती है। वह मौसी के धेवते गनेश और अपने व्यक्तिगत सेवा करने वाले प्यारू के लिए जेल से भी मनिआर्डर भेजता रहता है, जो उसकी सहृदयता के ज्वलंत प्रमाण हैं। उसे गिरफ्तार करने के लिए आप दारोगा से वह जिस ढंग से बातें करता है, वे उसकी विनोद–प्रियता का परिचायक है –

"आपका ..... बहुत लड़कियों से ताल्लुक रहा है।"

"रहा है। कम–से–कम .... चार सौ लड़कियों के साथ मैं दिन–रात रह चुका हूँ। डॉक्टर मुस्कराता है।

"चार सौ !" ..... चार ...... चार सौ ? बच्चू ..... इतनी लड़कियाँ कहाँ से मिली ?"

"मैडिकल कॉलिज हास्पिटल में।"

'ओ ! .... नहीं, मेरे पूछने का मतलब है कि भले घर की लड़कियों ...... ?

"क्यों, हॉस्पिटल में भले घर की लड़कियाँ नहीं जातीं ?

"मेरा मतलब ....। खैर छोड़िए इन बातों को।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशान्त 'मैला आँचल' के प्रमुखतम पात्रो में से एक है। इस अज्ञात कुल–शील डॉक्टर के हृदय में मानवता की प्रखर भावना विद्यमान है। उसमें शोध–लगन भी ऐसी है जिसके कारण वह अखिल भारतीय स्तर पर प्रशंसा का पात्र बनता है।

4.3.2 कालीचरण

कालीचरन को 'मैला आँचल' का सर्वाधिक क्रियाशील, निष्ठावान और प्रिय पात्र कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। उपन्यास के जिस किसी भी परिच्छेद में कालीचरन का वर्णन आता है, उसकी तेजस्विता के समक्ष अन्य सभी पात्र निष्प्रभ पड़ जाते हैं। अन्याय का विरोध करने वाले पात्रों में कालीचरन अद्वितीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार का भी इस पात्र के प्रति ममत्वभाव रहा है और उसने कालीचरन का चरित्राकंन विशेष सहानुभूतिपरक हाथों से किया है।

उपन्यास का एक भी ऐसा प्रसंग नहीं है जिसमें कालीचरन हमारी सहानुभूति और प्रसन्नता की भावना खोता हो। आलोच्य उपन्यास में उसके व्यक्तित्व और चरित्र के निम्नांकित पक्ष अधिक उभरे हैं –

बलवान एवं साहसी

कालीचरन एक कसरती नवयुवक है, जिसके शरीर में अपार बल है। लक्ष्मी को उसे देखकर आबनूसी मूर्ति की याद आ जाती है –

"लछमी देखती है कालीचरन को ..... उस बार परयागजी के जादूघर में एक आबलूस की मूर्ति देखी थी, ठीक ऐसी ही।"

शरीर से ताकतवर होने के कारण ही उसकी गाँव में धाक है। गुअर टोली के नवयुवक उसके अन्धभक्त हैं और उसके लिए खून–पसीना एक करने की तैयारी में रहते हैं। जब उसे कहीं से यह मिथ्या समाचार मिलता है कि हरगौरी ने बालदेव को जूतों से मारा है तो वह प्रतिज्ञा कर लेता है कि मैं हरगौरी का खून पीकर रहूँगा। उसके भय से हरगौरी की माँ चिल्ला उठती है –

"अरे बेटा रे ! गौरी बेटा रे ! ...... आंगन में आ जो बेटा रे ! गुअर टोली का कलिया पगला गया है।"

उसे गुअर टोली के रौदी बुढ़ा बताया है –

गुअर टोली में बूढ़े–बच्चे खौल रहे हैं कि हरगौरी ने बालदेव को जूते मारा है। कुकरू का बेटा कलचरना काली किरिया (कसम) खाया है हरगौरी का खून पीएंगे। ..... आँगन में आ जाओ गौरी के बाबू।"

बालदेव कालीचरन से कहते हैं –

"कालीचरन, तुम बहुत बहादुर नौजमान हो। लेकिन जोस में होस रखना चाहिए। हम खुस हैं, लेकिन उपवास करेंगे।"

"सचमुच यदि उस दिन बालदेवजी ठीक समय पर नहीं आ जाते तो कालीचरन इस पार चाहे उस पार कर देता।"

गाँव वालों की दृष्टि में कालीचरन उपद्रवी है। खेलावन यादव उसके विषय में कहते हैं –

"लेकिन भाई बालदेव, हम ठहरे सीधे–सीधे आदमी। कलिया पर नजर रखना। उसमें और भी बहुत गुन हैं, सो तो तुमको मालूम हो ही जाएगा किसी किस्म का उपद्रो करेगा तो हम जिम्मेवार नहीं हैं। पीछे यादव टोली मुखिया के ऊपर बात न आवे।"

कालीचरन की देख–रेख में गाँव का अखाड़ा खूब जमता है–

"लेकिन कालीचरन का अखाड़ा बन्द नहीं हो सकता। ढोल की आवाज़ में कुछ ऐसी बात है कि कुश्ती लड़ने वाले नौजवानों के खून को गर्म कर देता है।

उपन्यासकार ने कालीचरन और सोमा जट के शारीरिक पौरूष और गठन की तुलना करते हुए कहा है कि उसके शरीर में हाथी–दाँत जैसा कड़ापन है।

"सोमा का शरीर कालीचरन से भी ज्यादा बुलन्द है। पुलिस–दारोगा की मार से हड्डियाँ टूटकर गिरहा गई हैं। गिरहवाली हड्डी बड़ी मजबूत होती है। कालीचरन की देह में हाथी–दाँत का कड़ापन है और सोमा के चेहरे पर काहे की कठोरता। कालीचरन की आँखों में पानी है और सोमा की आँखें बिल्ली की तरह चमकती हैं।"

सुमरितदास को अपनी पार्टी के विरूद्ध ऊल–जलूल प्रोपेगंडा करते पाकर कालीचरन रुद्र–रूप धारण कर लेता है–

"सुर्स्लिग मत कहिए सोसलिस्ट कहिए। ... बात तो सही मुँह से निकलती ही नहीं है और मुंसियाती बघारते हैं। ....जमींदार के तहसीलदार से और अपने मैनेजर से भी जाकर कह दो, रैयतों से जमीन छुड़ाना हँसी–ठट्ठा नहीं। पार्टी के ऐजकूटी में परसताब पास हो गया है। सघर्स होगा, समझे संघर्स।

कालीचरन गर्दन ऐंठता हुआ चला गया। करैत साँप को गुस्से में ऐंठते देख है न, ठीक उसी तरह! सुमरितदास को कँपकँपी लग जाती है। आसपास बैठे हुए लोगों की भी धुकधुकी तेज हो जाती है। अभी तो ऐसा लगता था कि जुलुम हो जाएगा। अलबत देह बनाया है कलिया .... कालीचरन ने। देखकर डर लगता है। सुस्लि–सुस्लि .... सोसलिस्ट पार्टी में जाकर तो और भी तेजी से जल–जलकर रहा है।"

समाजवादी पार्टी के प्रति दृढ़ आस्था :–

कालीचरन के विषय में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उसमें अपनी समाजवादी पार्टी के प्रति दृढ़ आस्था का भाव विद्यमान है। सोमा जट और बासुदेव द्वारा डकैती डालने का दोष वह अपने सिर पर लेता है और सोचता है कि इससे हमारी पार्टी की बड़ी निन्दा हुई है। वह पार्टी के सेक्रेटरी से मिलकर उसको यह बताने के लिए व्याकुल है कि उस डकैती में उसका रंचमात्र भी हाथ नहीं था।

"कालीचरन अंधेरे में कोठी के बाग के पास छिपा हुआ है। जरा रात हो जाय तब घर जाएगा। वासुदेव और सुनरा को सोमा ने इतना आगे बढ़ा दिया, कालीचरन को ताज्जुब होता है। डकैती के तीन दिन बाद ही कालीचरन को सब पता लग गया था। सिकरेटरी साहब को कहने के लिए वह चुपचाप

पुरैनीयाँ गया था, लेकिन सिकरेटरी साहब पटना चले गए थे। सिकरेटरी साबह से सारी बातें कहनी होंगी। चलित्तर कर्मकार में हेल–मेल बढ़ाने का यही फल है। हम पर विश्वास नहीं हुआ उसकी तो–वासुदेव को चारिज दिये कि चलितर से मिलते रहो। बन्दूक पिस्तौल चलितर देता है। काली को जेहल का डर नहीं, पार्टी की कितनी बड़ी बदनामी हुई। अरे बाप ! पटना के बड़े लीडर कैसे मुँह दिखलावेंगे ? सब चौपट कर दिया।"

यही नहीं कि वह सोचकर ही रह जाता हो अपितु अपने प्राणों पर खेलकर भी पार्टी के सेक्रेटरी को इस बात की सूचना देने के लिए जाता है कि उस पर डकैती में भाग लेने का मिथ्या दोषारोपण किया गया है –

"ऐं ? कौन ? कालीचरन ? सेक्रेटरी साहब भी भड़भड़ाकर कमरे से बाहर आते हैं – और कालीचरन ! तुम हो ? इसीलिए शहर में इतना हल्ला हो रहा है ? जेल से भाग आए हो !"

"जी ! लगता है, जाँग में गोली लग गयी है।"

"तुम्हारे कलेजे पर गोली दागी जानी चाहिए। डकैत ! बदमाश !"

सिकरेटरी साहब ! इसीलिए तो ...... ! इसीलिए तो आप के पास आए हैं। सुन लीजिए ! ..... माँ कसम, गुरु कसम, देवता किरिया। जिस रात ..... उस रात को हम यहीं, जिला पाटी आफिस में थे।

"साथी राजबल्ली जी ! सिकरेटरी साहेब को समझा दीजिएगा। मेरा कोई कसूर नहीं !"

उसके निम्नांकित उद्‌गार भी इस दृष्टि से अवलोकनीय हैं –

"सिकरेटरी साहेब और धरमपुरी जी से मिलकर वह बात करना चाहता है। उसके बाद उसे फाँसी–सूली जो भी मिले वह खुशी–खुशी झेल लेगा। पार्टी की इतनी बड़ी बदनामी कराके वह जी कर ही क्या करेगा !"

कुशल नेता :–

कालीचरन में गजब की नेतृत्वशक्ति है। गाँव के नवयुवक उसके इशारों पर नाचते हैं। बालदेव मेरीगंज में कांग्रेसी आंदोलन का सूत्रपात करते हैं, तो उसके जुलूस निकालने का उत्तरदायित्व कालीचरन ही सँभालता हैं स्वयं बालदेव भी उसकी नेतृत्व–शक्ति देखकर चकित रह जाते हैं–

"बालदेव हड़बड़ाकर उठता है, आँखे मलते हुए बाहर निकल आता है। सवेरा हो गया है। गांव के नौजवानों को बटोंरकर, जुलूस बनाकर, कालीचरन जय–जय कार करता हुआ जा रहा है। वाह रे

कालीचरन ! बुद्धिमान है, बहादुर भी है और बुद्धिमान भी। यह पुलोगराम कब बनाया था , रात में ही शायद ! जरूर मेरीगंज भी चन्ननपट्टी की तरह नाम करेगा।

पुरैनियाँ में मिनिस्टर साहब के आने पर मेरीगंज से बालदेव जो जुलूस ले जाते हैं, उसका भार कालीचरन ही सँभालता है –

"गिनती करो। कितनी औरत, कितने मरद ? अजी बच्चों को मत लो, झंझट होगा। कालीचरन और गूदर सबों का देह छू–छूकर गिनते हैं। कालीचरन कहता है–पाँच कोरी चार औरत। गूदर हिसाब करता है–चार कोरी दस मरद।

सबसे पहले कालीचरन नारा लगाएगा–इनकिलाब, तब तुम जय एक साथ कहना–जिन्दाबाध। वैसे गड़बड़ा जाता है। कालीचरन कहेगा–अंग्रेजी राज, तुम लोग कहना–नास हो। लगाओं नारा कालीचरन। कालीचरन छाती का जोर लगाकर चिल्लाता है–इनकिलाब।"

वह ग्रामवासियों को राजेन्द्र बाबू के विषय में बताता है–

"मेनिस्टर साबह नहीं, यह रजिन्नर बाबू थे। सुराजी कीर्तन में रोज सुनते हो नहीं .... देसवा के खातिर महरूलहक भइले फकिरवा हो, दीन भेलै राजिन्नर परसाद देसवासियों ! .... देस के खातिर अपना सब हक–हिस्सा, जगह–जमीन, माल मवेशी गँवाकर फकीर हो गए।"

कुछ कालोपरान्त कालीचरन कांग्रेस के स्थान पर सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य बन जाता है और इस दल के कार्यकर्ता के रूप में आजीवन निष्ठापूर्वक कार्य करता है। वह अपने साथी वासुदेव को इस दल के विषय में समझाता है।

"यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। किरान्ती दल का नाम नहीं सुना था .... बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगतसिंह, यह गाना नहीं सुनने हो ? वही पार्टी है। इसमें कोई लीटर नहीं है। सभी साथी है, सभी लीटर हैं। सुना नहीं ! हिंसा बात तो बुरजुआ लोग बोलता है। बालदेवजी तो बुरजुआ है, पूंजीवाद है। ..... इस किताब में सब कुछ लिखा हुआ है। बुरजुआ, पेटी बुरजुआ, पूँजीपति, जालिम जमींदार, कमाने वाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो।"

अपनी कुशल नेतृत्व शक्ति के कारण वह कांग्रेस के मेम्बरों को अपनी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर बना लेता है। बालदेव कहते हैं –

"उधर दूसरी पार्टी वालों को मौका मिल गया है। कालीचरन दिन–रात खटता है। हमारे कांगरेस के मैम्बरों को भी सोशलिस्ट गाँव के मुख्यतः कर्मकार वर्ग का नेता बन जाता है–

"गाँव भरके हलवाले, चरवाहों और मजदूरों का नेता कालीचरन है। छोटा नेता वासुदेव।"

होली के अवसर पर कालीचरन का दल ही सबसे बड़ा होता है।

कालीचरन का दल बहुत बड़ा है दो ढोल, एक ढाक है, झाँझ–डम्फर सभी अच्छे गाने वाले भी उसी के दल में हैं। सुन्दरलाल, मुँजी लाल, देवी–दयाल और जोगीड़ा कहने वाला महंथा।" गाँव के छोटे–छोटे दल भी कालीचरन के दल में मिल गए हैं।

गाँव में हैजा फैलता है तो डाक्टर प्रशान्त गाँव वालों को इंजैक्शन लगाना चाहता है। गाँव वाले यह कहकर इंजैक्शन लगंवाने का विरोध करते हैं कि ऐसा करके डाक्टर हैजा फैलाना चाहता है। इस समस्या का हल कालीचरन ही निकालता है।

"एक बात ! आज कोठी का हाट है। हाट लगते ही चारों ओर से घेर लिया जाय और सबों को जबर्दस्ती सुई दी जाय। जो लोग बाकी बच रहेंगे, उन्हें घर पर पकड़ कर दी जाय।"

इसी पद्धति का आश्रय लेते हुए,

"कालीचरन के दल वालों ने हाट को घेर लिया है। डाक्टर साहब आम के पेड़ के नीचे टेबल पर अपना पूरा सामान रखकर तैयार हैं। कालीचरन एक–एक आदमी को पकड़कर लाता है, मास्टरनीजी स्पिरिट में भिगोई हुई रुई बाँह पर मल देती है और डाक्टर साहब सूई गड़ा देते हैं।"

बीमारी के लिए स्वयंसेवको की आवश्यकता पड़ती है तो कालीचरन अपने दल के साठ स्वयंसेवकों के साथ रात को अस्पताल में दाखिल हो जाता है इस अवसर पर वह रोगियों की जो सेवा करता है, उससे उसकी देवता के रूप में प्रशंसा होने लगती है।

"कालीचरन भी बहादुर है। कै और दस्त से भरे बिछावन पर रोगी की सेवा करना, कपड़े धोना दवा डालकर गन्दगी जलाना आदमी का काम नहीं, देवता ही कर सकते हैं।"

'सिखा' पर्व के अवसर पर जमींदार फैजबख्श पड़मार नदी में से मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध लगा देता है, तो कालीचरन एक जत्था लेकर उसके विरोध की घोषणा कर देता है।

"सारे मेरीगंज के मछली मारने वालों का सरदार है कालीचरन। भुरूकवा उगने के समय ही निकलना होगा। बारह कोस ज़मीन तय करना होगा। इस बार कालीचरन ने ऐलान कर दिया है, जुलूस बनाकर चलना होगा, लाल झंडे के साथ।

बावनदास से यह सुनकर कि दफा 40 की दरखास्तें खारिज हो गई हैं और जमींदार किसानों से जमीनें छुड़ा लेगा कालीचरन की प्रतिक्रिया हैं –

"जमीन छुड़ा लेगा–नहीं, उस दिन हम लोगों की रैली में परसताब पास हो गया। जमींदार लोग रैयतों को जमीन से बेदखल नहीं कर सकते। इसके लिए पार्टी संघर्ष करेगी।"

वह गाँव के लोगों के जमींदारों के प्रति विरोध भाव उत्पन्न करने में सफल हो जाता है और इस हेतु चमार टोली में भात खा लेता है –

"खेलावन के हलवाहों को कालीचरन ने हल जोतने से मना कर दिया है। तहसीलदार हरगौरी सिंह का नाई, धोबी और मोची बन्द करने के लिए कालीचरन घर–घर घूमकर माखन देता है। गाँव से सारे पुराने बाँध टूट गए हैं, मानों बाढ़ का नया पानी आया हो। ......

गरीबों और मजदूरों की आँखें कालीचरन ने खोल दी हैं। सैकड़ों बीघे जमीन वाले किसानों के पास पैसे हैं, पैसे से गरीबों को खरीदकर, गरीबों के गले पर गरीबों के जरिये ही छुरी चलाते हैं। ..... होशियार जिन लोगों ने बन्दों–बस्ती ली है, वे गरीबों की रोटी मारने वाले हैं।

कालीचरन ने चमारटोली में भात खा लिया ?

जात क्या है ? जात दो ही हैं, एक गरीब और दूसरी अमीर। .... खेलावन को देखा यादवों की ही जमीन हड़प रहा है। ..... देख लो आँख खोलकर, गाँव में सिरिफ दो जात हैं। अमीर–गरीब।

न्याय पक्ष का समर्थक :–

कालीचरन न्याय–पक्ष का समर्थन अपनी पूरी शक्ति से करता है। लरसिंघ दास जब ऐसा षड्यंत्र रचता है कि मेरीगंज के मठ की महंती उसे मिल जाए और वह लक्ष्मी पर भी अधिकार कर ले, तो लक्ष्मी की फरियाद कोई नहीं सुनता। हाँ, जब उसे लक्ष्मी से वस्तुस्थिति ज्ञात होती है –

"लक्ष्मी दासिन कालीचरन को रो–रोकर सुनाती है – कालीचरन बाबू ! ऐसी खराब–खराब गाली। उफ ! सतगुरु हो ! मैं अब कहाँ जाऊँगी , कौन सहारा है मेरा ?"

तो कालीचरन ही उसको यह आश्वासन देता है –

"अच्छी बात ! आप कोई चिन्ता मत कीजिए !.... बालदेवजी क्या करेंगे, वह तो बुरजुआ है। रोइए मत।"

लरसिंघदास को महंत नियुक्त करने के मसविदे पर बालदेव आदि गाँव के सभी प्रमुख व्यक्ति हस्ताक्षर या अंगूठा निशानी लगा देते हैं। तभी रंग में भंग डालते हुए –

"कालीचरन दलील हाथ में लेकर उठता है – "आचारजजी आप कहते हैं महंत सेवाराम बिना चेला के मरा है। आप क्या गाँव के सभी लोगों को उल्लू ही समझते हैं ?

"कालीचरन !" बालदेवजी मना करते हैं, बैठ जाओ।"

"कालीचरन !" खेलावन यादव डांटते हैं।

लेकिन कालीचरन आज नहीं रूकेगा। कोई हिंसाबाद कहे या अनसन करे ! वह भी माखन दे सकता है।

हम जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि रामदास इस मठ का चेला है। उसको महंती का टीका न देकर आप एक नम्बरी बदमाश को महंत बना रहे हैं। ...... मठ में हम लोगों के बाप–दादों ने जमीन दान दी है, यह किसी की बपौती संपत्ति नहीं।"

लरसिंघदास द्वारा अपनी ओर मिलाया हुआ नागा साधु कालीचरन को गाली देकर चुप कराना चाहता ही है कि कालीचरन के साथी वासुदेव आदि द्वारा उसकी जमकर पिटाई की जाती है, और वे उसकी और लरसिंघदास को कालीचरन के आदेश पर ही छोड़ते हैं। परिणाम यह निकलता है –

"पंचों को लकवा मार गया है, साधुओं की हालत खराब है।

पंचों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। और सबों के बीच, कालीचरन हाथ में दलील लेकर सिकन्नरशाह बादशाह की तरह खड़ा है। पलक मारते ही क्या–से–क्या हो गया ! ... जैसे रामलीला का धनुष जग हो।

"अब आचारजजी आपसे हम अरज करते हैं कि सुरतहाल पर रामदासजी का नाम चढ़ाकर महंती का टीका दे दीजिए।

आचारज गुरु काँपते हुए कहते हैं – "ब–बुआ। हम तो सतगुरु की दया से .... हमको तो लोगों ने कहा कि सेवादास का कोई चेला ही नहीं था। जब रामदास उसका चेला है तो वही महंत होगा। ..... . मुंशीजी लिखिए सुरतहाल ले आओं चादर, दही का बरतन।"

आभार ग्रस्त लक्ष्मी कह उठती है – काली बाबू तुम देवता हो !"

कालीचरन कुश्ती लड़ता है। उस्ताद ने कहा है, कुश्ती लड़ने वालों को औरत से पाँच हाथ दूर रहना चाहिए। वह पाँच हाथ से ज्यादा दूरी पर खड़ा है।"

फुलिया और सहदेव मिसिर–कांड में भी कालीचरन के हस्तक्षेप से ही उचित न्याय मिल पाता है।

गाँव की उच्च जातियों के लोग पंच हैं और फुलिया के पिता पर सहदेव मिसिर का कर्ज भी है अतः दबाव और भेदभाव के कारण ऐसा फैसला सुनाया जाने लगता है जिसमें सहदेस मिसिर को निर्दोष घोषित किया जाने लगता है, किन्तु तभी –

"कालीचरन कैसे चुप रह सकता है। पंचायत में एकतरफा बात नहीं होनी चाहिए। रबिया और सोनमा पार्टी का मेम्बर हैं। यह तो पंचायत नही मुंह–देखी है। कालीचरन कैसे चुप रह सकता है"–'सिंहजी जरा हमको भी कुछ पूछने दीजिए।'

पंचायत के सभी पंचों की निगाहें अचानक कालीचरन की ओर मुड़ गई ज्योतिषीजी एतराज करते हैं–कालीचरन को हम पंच नहीं मानते।"

"तो फिर पहले इसी बात का फैसला हो जाए कि पंचायत के कितने लोग हमको पंच मानते हैं और कितने लोग नहीं। एक आदमी के चाहने और न चाहने से क्या होता है ! .....अच्छा पंच परमेसर ! क्या हमको इस पंचायत में बैठने, बोलने और राय देने का हक नहीं ? क्या हम इस गाँव के बासिन्दे नहीं हैं ? कालीचरन खड़ा होकर कहता है यदि आप लोग हमको पंच मानते हैं तो हाथ उठाइए।'

गुमसुम बैठे हुए सैकड़ों मूक जानवरों के सिर में मानो अरना भैसा के सींग जग गए। सैकड़ों हाथ उठ गए। .... एक दो ... तीन .... चार .... पांच एक सौ पाँच।

एक सौ पाँच अब जो लोग हमाके पंच नहीं मानते, हाथ उठाएँ। ... एक, दो तीन ... चार.... पाँच. ..पन्द्रह।

सिर्फ पन्द्रह। सिंघजी को विश्वास नहीं होता है। खुद गिनते हैं। नजरत और ब्राह्मण टोली के लोग कहाँ चले गए ? जोतखीजी के लड़के नामलरैन ने भी कलिया के पक्ष में हाथ उठाया है।"

कालीचरन फुलिया, उसके पिता आदि से पूछताछ करता है, तो सहदेव मिसिर की पोल खुल जाती है। राजपूत टोली द्वारा सभा भंग करने की चेष्टा की जाती है और वे पंचायत से उठ जाते हैं। कालीचरन फैसला सुनाता है–

"तो पंचायत का यह फैसला है कि मँहगूदाम अपनी बेटी फुलिया, का चुमोना खलासी के साथ करा दे और आज से सभी टोले के लोग बाबू लोगों पर नजर रखें।"

पंचायत के सभी पंच एक स्वर से कालीचरन की राय का समर्थन करते हैं। जोतखी जी भी हाथ उठाते हैं और बालदेव जी भी। ..... वह मेहगूदास को यह आश्वासन भी देता है कि यदि सहदेव मिसिर झूठी नालिस करेगा तो सभी पंच तुम्हारी गवाही देंगे।

कालीचरन के विषय में लछमी की यह राय उचित ही है –

"कालीचरन असल नियायी आदमी है। गाँव के सभी बड़े लोग सिर्फ कहने को बड़े हैं। काली बाबू का सुभाव जरा तिब्र है, लेकिन दुनिया के लोग अब इतने कुटिल हो गए हैं कि सीधे लोगों की यहाँ गुजर नहीं। फिर सुभाव में जरा कड़ापन तो सुपुरुख का लच्छन है।"

महंत रामदास को भय है कि यदि उसने लक्ष्मी से कुछ छेड़खानी की तो वह कालीचरन से कह देगी, और वह निश्चय ही उसका पक्ष लेगा–

"महंत रामदास सोच–विचार कर देखते हैं, कालीचरन के डर से ही वह प्यासा है। कोई बात हुई कि लक्ष्मी उससे कह देगी और उसके बाद ? चादर टीका के दिन कालीचरन और उसके गुर्गों ने जो कांड किया था, उसे भूलना मुश्किल है। और उन्हीं की बदौलत तो रामदास महंत बना है।"

होली के मौके पर किसी भी ग्रामवासी का यह साहस नहीं होता कि वह प्रशान्त पर रंग डाले। मात्र कालीचरन ही उस पर रंग डालता है और गनेश को होली खिलाने ले जाता है। मौसी का आशीर्वाद है – जुग–जुग जियो काली बेटा। डाक्टर की टिप्पणी है – बड़ा मस्त नौजवान है।"

सच्चा पहलवान :–

कालीचरन पहलवान है और वह अपने उस्ताद की इस शिक्षा का बहुत समय तक पालन करता है कि जब तक पहलवानी करते हो, स्त्रियों से पांच हाथ दूर खड़े होना। लक्ष्मी के अनुनय पर वह लहसिंघदास और नागा बाबा को पिटवाकर भगा देता है, किन्तु लक्ष्मी से बातें करते हुए वह उससे पांच हाथ से भी अधिक दूरी पर खड़ा होता है। उसके बाद भी लक्ष्मी की दशा ऐसी है कि –

"लक्ष्मी सतगुरु वचनामृत बरसाकर शांत करने की चेष्टा करती है। सतगुरु वचनामृत से बढ़कर तन के ताप को शीतल करती है कालीचरन की याद।"

किन्तु कालीचरन उससे सदैव एक निश्चित दूरी बनाए रखता है यद्यपि–

"कालीचरन रोज मठ पर आता है एक बार, थोड़ी देर के लिए ही जरूर आता है। कभी पार्टी के लिए चंदा, आफिस घर बनाने के लिए बाँस–रबड़ मांगने आता है।"

नारी स्वभावतः ही अपने उपकारी की ओर झुकती है अतः रामदास को कालीचरन का बार–बार मठ पर आना अखरता है, किन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है –

"महंत रामदास को पहले कालीचरन पर बड़ा संदेह था। जब वह मठ पर आता तो महंत साहब छिपकर लक्ष्मी और काली की बातें सुनते थे, बाँस की टट्टी में छेद करके देखते थे। लेकिन कालीचरन हमेशा

लक्ष्मी से चार हाथ दूर ही हटकर खड़ा रहता था। उसकी बोली में भी माया की मिलावट नहीं रहती थी। लछमी से बातें करते समय कभी उसकी पलकें शरमा कर झुकती नहीं थी। बहुत कम लोगों को ऐसा देखा है रामदास ने। कालीचरन को बस अपनी सुशलिस्ट पार्टी से जरूरत है, लाल झंडा और सुशलिट पार्टी को वह औरत की तरह प्यार करता है। ..... उस पर संदेह करना बेकार है।"

हाँ बीमार मंगला देवी के सम्पर्क में आकर उसका नारियों से पाँच हाथ दूर रहने का व्रत भंग हो जाता है। मंगला को वह मास्टरनी जी कहता है किन्तु वह तभी दवा पीती है जब उसके आग्रह पर कालीचरण उसे मंगला कहकर सम्बोधित करता है –

"कालीचरण का व्रत टूट गया है। उसके पहलवान गुरु ने कहा था– पट्ठे ! जब तक अखाड़े की मिट्टी देह में पूरी तरह रमे नहीं, औरतों से पाँच हाथ दूर रहना। कालीचरण का ब्रत टूट गया। पाँच हाथ दूर रहने से लक्ष्मी की सेवा नहीं की जा सकती थी। बिछावन और कपड़े बदलते समय, देह पोंछ देने के समय कालीचरण को गुरुजी की बात याद आती थी, लेकिन क्या किया जाय ?"

कालीचरण को मंगला की कुशल–मंगल का इतना ध्यान रहने लगता है कि वह शहर से उसके लिए बिहदाना और संतोला भेजता है तथा सोचता है कि मेरी अनुपस्थिति में मंगला इनको छुएगी भी नहीं। मंगला भी उसको ठीक ही झिड़कती है –

डाक्टर साहब ने कहा था। मंगला बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहती है, डाक्टर साहब ने कहा था कि खुद भूखे रहकर सन्तरा, बेदाना और बिस्कुट खरीद लाना।" अंततः वह मंगला को अपने घर ले आता है और दोनों पति–पत्नी की तरह रहने लगते हैं। उसकी गिरफ्तारी भी मंगला के यहाँ से ही होती है जब वह गुप्त रीति से उससे मिलने जाता है और पुलिस सुराग पाकर उसको पकड़ लेती है।

कुशल वक्ता :–

कालीचरण पढ़ा–लिखा नहीं है फिर भी उसमें गजब की भाषण–शक्ति विद्यमान है। लरसिंघदास के स्थान पर रामदास को महंत बनवाने में यद्यपि उसकी शारीरिक शक्ति का भी हाथ है, तो भी उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया यह तर्क कम महत्वपूर्ण नहीं है कि मठ के लिए हमारे बाप–दादों ने, जमीन दी थी। इसी प्रकार फुलिया और सहदेव मिसिर के प्रसंग में वह अपनी भाषण–कला के द्वारा ही पंचायत का सदस्य बन जाता है। उसकी भाषण–कला का इससे भी अच्छा प्रमाण सोशलिस्ट पार्टी की ओर से दिए जाने वाले भाषणों में मिलता है।

"युगों से पीड़ित, दलित और उपेक्षित लोगों को कालीचरण की बातें बड़ी अच्छी लगती हैं। ऐसा लगता है, कोई घाव पर ठंडा लेप लगा रहा हो। लेकिन कालीचरण कहता है– मैं आप लोगों के दिल में

आग लगाना चाहता हूँ। सोये हुए को जगाना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पार्टी आपकी पार्टी है, गरीबों की, मजदूरों की पार्टी है। सोशलिस्ट पाटी चाहती है कि आप अपने हक को पहचानें। आप भी आदमी हैं, आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिए। मैं आपकी मीठी बातों में भुलाना नहीं चाहता। वह कांग्रेस का काम है। मैं आग लगाना चाहता हूं।''

अत्यधिक शक्तिशाली :–

कालीचरण शरीर से बड़ा ही हृष्ट–पुष्ट युवक है। उसके भय से सारा गाँव काँपता है। गाँव की अहीर टोली का नेता वह इस कारण भी है कि उसमें असीम शारीरिक बल है। फुलिया और सहदेव के मामले पर विचार करते हुए उसे पंचों में सम्मिलित नहीं किया जाता। विशेषतः ज्योतिषी जी कहते हैं कि इस कालीचरण को पंच नहीं मानते, क्योंकि उन्हें भय है कि कालीचरण उनकी–कोई झूठी बात न मानकर सचाई का पक्ष लेगा। किन्तु जब कालीचरण खड़ा होकर यह कहता है–

"तो पहले इसी बात का फैसला हो जाय कि पंचायत के कितने लोग हमें पंच मानते हैं और कितने लोग नहीं। एक आदमी के चाहने और न चाहने से क्या होता है। ...... अच्छा, पंच परमेसर ! क्या हमको इस पंचायत में बैठने बोलने और राय देने का हक नहीं, क्या हम इस गाँव के बासिंदे नहीं है ?"

तो कुछ तो उसके कुशल वक्ता होने और कुछ उसके शारीरिक बल के भय से बहुत से लोग इस पक्ष में हाथ उठा देते हैं कि उसे पंच स्वीकार करना चाहिए।

उसके शरीरिक बल और कुश्ती–कला में प्रवीण होने के तथ्य का परिचय चम्पापुर के मेले के दंगल में मिलता है, जिसमें पंजाबी पहलवान मुश्ताक पर चेला चाँद अखाड़े में जाँघिया लगाकर उतरता है, किन्तु किसी भी पहलवान में उससे कुश्ती लड़ने का साहस ही नहीं होता। कालीचरण उससे यह सोचते हुए भिड़ता है–

"आज की बाजी यदि हार गए तो समझेंगे कि मंगला को छूना पाप हुआ और जीत गए तो .... यही परीक्षा है मेरी।"

कहना न होगा कि वह परीक्षा में सफल सिद्ध होता है और कुछ ही मिनटों में चाँद को आसमान दिखा देता है।

होशियार एवं कूटनीतिज्ञ :–

कालीचरण पढ़ा–लिखा न होने पर भी 'गुणी' व्यक्ति है। सामान्यतः उसे क्रोध नहीं आता किन्तु अन्याय के विरूद्ध जब उसे क्रोध आता है तो उस रोद्र–रुप को देखकर सभी घबरा जाते हैं। कालीचरण, सुन्दर और

सोभा ताड़ी पी रहे होते हैं तो सोमा जट यह कहता है कि यदि कालीचरण हुकुम दें तो वह शिवशंकर सिंह के पुत्र हरगौरी (नया तहसीलदार) की एक ही रात में हड्डी–पसली एक कर दें, किन्तु कालीचरण समझदारी का परिचय देते हुए मूक ही रहता है। इसी प्रकार सोमा जट बालदेव के विषय में कहता है –

"बालदेव को गाँव से भगा नहीं सकते हो तुम लोग ? ...... कालीचरण हुकुम दें तो एक ही दिन में उसको चन्ननपट्टी का रास्ता दिखला दें।"

किन्तु कालीचरण उसको इसकी भी अनुमति नहीं देता, क्योंकि वह नहीं चाहता कि ऐसा कराकर अपनी पार्टी की निन्दा करायी जाए।

नाई, धोबी, चमार आदि लोगों द्वारा काम बन्द किए जाने पर गाँव के लोगों को बड़ी परेशानी रहती है। हरगौरी विश्वनाथप्रसाद के यहाँ जाकर कहता है –

"काका ! इस बार इज्जत बचा लीजिए। क्या आप यही चाहते हैं कि नाई, धोबी और चमार के सामने हम हाथ जोड़कर गिड़गिड़ायें ?

कालीचरण भी हरगौरी से कम चालाक नहीं है। वह भी विश्वनाथ प्रसाद के यहाँ जाकर अपने पक्ष को इस रूप में प्रस्तुत करता है –

"विसनाथ मामा, आप कांग्रेस के लीडर हैं। इसी बार देखना है कि कांग्रेस गरीबों की पार्टी है या अमीरों की। आज तक मैने आपको देवता की तरह माना है। लेकिन गरीबों के खिलाफ आप पैर बढ़ाइए तो हम मजबूर होकर .....।"

अंततः कहा जा सकता है कि कालीचरण मैला आँचल के उज्जवलतम पात्रों में से एक है। यदि मंगला के सम्पर्क में आकर उसका ब्रह्मचर्य खंडित हो जाने के तथ्य को छोड़ दिया जाए तो उसके चरित्र में अधिकांशतः' गुणों का ही प्राबल्य है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह दुर्बलों और शोषितों का सहायक है। पार्टी की बदनामी को जिस तरह वह अपने प्राणों से भी अधिक महत्त्व देता है वह भी उसकी चारित्रक उज्ज्वलता ही है। खेद है कि ऐसे सबल व्यक्तित्ववान चरित्र का अंत कारूणिक है–वह अकारण ही डकैत के रूप में जेल की यंत्रणा तथा पार्टी के सेक्रेटरी का आवमानना का पात्र बनता है। उसे अंततः चलित्तर कर्मकार का स्मरण करते चित्रित किया गया है जिसका इंगित यह है कि वह अपने परवर्ती जीवन में कदाचित् वास्तव में ही डकैत बन गया होगा।

4.3.3 बालदेव

बालदेव उपन्यास के प्रमुख पात्रों में से एक है। जहाँ तक विविध घटनाओं से सम्बन्ध का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि कदाचित् बालदेव ही उपन्यास का वह पात्र है जो सर्वाधिक घटनाओं से सम्बद्ध

है। बालदेव के माध्यम से फणीश्वरनाथ रेणु ने उन सामान्य कार्यकर्ताओं का जीवन–चित्र प्रस्तुत किया है जिन्होंने बहुत छोटे घराने में जन्म लेकर भी कांग्रेसी आन्दोलन में निष्काम भाव से अधिकाधिक योगदान किया है। जो देश के महत्त्वपूर्ण नेताओं में तो परिगणित नहीं हुए, जिन्हें मंत्री–पद प्राप्त करने का अवसर तो नहीं मिला फिर भी उनके त्याग, बलिदान और निस्वार्थ देश–सेवा को विस्मृत नहीं किया जा सकता। 'मैला आँचल' में बावनदास जीवनौत्सर्ग की दृष्टि से बालदेव से अवश्य बाजी जीत जाता है, किन्तु जहाँ तक विभिन्न पात्रों को प्रभावित करने और उनसे प्रभावित होने का सम्बन्ध है, उपन्यास की विभिन्न घटनाओं को गति प्रदान करने का प्रश्न है, बालदेव की गणना कालीचरण के साथ की जाएगी।

उपन्यास में नाटकीय रूप में अवतरण :–

बालदेव का उपन्यास में अवतरण नाटकीय पद्धति से किया गया है। मेरीगंज में खुलने वाले अस्पताल के लिए जमीन की पैमाइश करने हेतु डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्मचारी आते हैं, जिन्हें गाँव वाले मिलिट्री के लोग समझते हैं। बहरा बेथरू की काल्पनिक गिरफ्तारी की बात सारे गाँव मे जंगली आग की तरह फैल जाती है। गाँव की सभी टोलियों के लोग झुंडों में वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ वे कर्मचारी ठहरे हुए हैं। यादव–टोली में बालदेव रहता है। अंग्रेजों के शासन काल में किसी व्यक्ति का कांग्रेसी होना घोर अपराध–जैसा था अतः यादव टोली के लोग स्वयं ही बालदेव को गिरफ्तार करके ले आते हैं जिससे उन्हें एक देशद्रोही को गिरफ्तार करने का श्रेय मिल सके –

"और अंत में यादव टोली के लोग बालदेव के हाथ और कमर में रस्सी बाँधकर हल्ला मचाते हुए आए। उसकी कमर में बँधी हुई रस्सी को सभी पकड़े हुए हैं। फिरारी सुराजी को पकड़ने वालों को सरकार की ओर से इनाम मिलता है– एक हजार, दो हजार, पाँच हजार ! लेकिन साहब तो देखते ही गुस्सा हो गए, क्या बात हैं ? इसको क्यों बांधकर लाया है ? इसने क्या किया है ?

"हुजूर यह सुराजी बालदेव गोप है। दो साल जेहल काटकर आया है, इस गाँव का नहीं, चन्नपट्टी का है। यहाँ मौसी के यहाँ आया है। खध्धड़ पहनता है, जैहिन्न बोलता है।"

साहब का किरानी बालदेव को पहचान लेता है और बताता है कि 'अरे यह तो बालदेव है। सर, यह रामकृष्ण कांग्रेस आश्रम का कार्यकर्ता है, बड़ा बहादुर है"

बन्धनों से छुटकारा पाकर बालदेव साहब और किरानी को जयहिन्द करता है और तदनन्तर चन्नपट्टी के निवासी बालदेव की कर्मभूमि मेरीगंज ही बन जाता है।

अभावमय बाल्यकाल :–

बालदेव के पिता की उसके बचपन में ही मृत्यु हो जाती है, जबकि कुछ दिनों बाद उनके सिर से

माता की भी छत्रछाया उठ जाती है। अपने अभावमय बाल्यकाल की याद करके बालदेव का अंतर्मन सिहर उठता है –

"आज माँ की याद आती है। गाँव के लोग बालदेव को टुरवा (अनाथ) कहते थे। सुनकर माँ बहुत गुस्सा होती थी। बाप के मरने से कोई टुअर नहीं होता। बाप मरे तो कुमर, माँ मरे तब सूअर। मेरा बालदेव तो कुमार है, मेरा बालदेव टूअर नहीं।

माँ के मरने के बाद बालदेव बहुत दिन तक अजोधी भगत की भैंस चराता था। अजोधी भगत की याद आते ही बालदेव का देह सिहर उठता है। कैसा पिशाच था बुड्ढ़ा ! बूढ़ी तो और भी खटाँस थी, खेकासियांरी की तरह हरदम खेक–खेंक करती रहती थी। दिन–भर भैंस चराकर आने के बाद बालदेव और उँगलियाँ भगत की देह टीपते–टीपते दर्द करने लगती थीं, आँखें नींद से बन्द हो जाती थीं। लेकिन जरा भी ऊँधे कि चटाक्। उस बूढ़े की उँगलियों की चोट बड़ी कड़ी होती थी। बालदेव ने बचपन से ही मार खाई है–थप्पड़, छड़ी और लाठी की मार। बूढ़े–बूढ़ी को रात में नींद आती थी। आध पहर रात कोक ही भैंस चरपने के लिए जगा देता था। – रे टुरवा, भोर हो गई, भैंस खोल !"

इस प्रकार नाना प्रकार के अभावों और कष्टों को सहन करते हुए ही बालदेव का बाल्यकाल व्यतीत हो जाता है। अपने बाल्यकाल के विषय में उनके मन में दो ही मधुर–स्मृतियाँ हैं– एक तो वात्सल्यमी माँ की और दूसरी अधोजी भगत की लड़की रूपमती की, जो अपने माँ–बाप से छिपाकार उसके भात के नीचे दूध की थाली रख दिया करती थी और उसको कभी–भी टुरवा कहकर नहीं चिढ़ाती थी।

कांग्रेस पार्टी का सदस्य :–

बालदेव द्वारा कांग्रेस पार्टी का सदस्य बनने का मूल कारण थे–रामकिशून बाबू और उनकी पत्नी मायेजी। रामकिशून बाबू ने अपनी अच्छी प्रकार चलती हुई वकालत छोड़ दी थी और अपनी पत्नी के साथ गाँव–गाँव घूमकर भाषण देते फिरते थे –

"मायेजी के पाँव की चमड़ी फट गई थी। लहू से पैर लथपथ हो गए थे। लाल उड़हूल। मायेजी का दुःख देखकर, रामकिशून बाबू का भाखण सुनकर और तैवारी जी का गीत सुनकर वह अपने को रोक नहीं सका था। कौन संभाल सकता था उस टान को ! लगता था कोई खींच रहा हो –

"गंगा रे जामुनवाँ की धार नयनवाँ से नीर बही।

फूटल भरथिया के भाग भारत माता रोई रही।"

मायेजी के पाँव की चमड़ी फट गई थी, भारथ माता रो रही थी। वह उसी समय रामकिशून बाबू

के पास जाकर बोला था– मेरा नाम सुराजी में लिख लीजिगा।" तबसे लेकर बादलेव कांग्रेस पार्टी की ओर से देश–सेवा के कार्यों में भाग लेते हुए अनेकानेक कष्ट और जेल की यातनाएँ सहन कर चुके हैं।

अडिग सेवा–भाव और विनम्रता :– बालदेव के चरित्र में देश–सेवा की अडिगभावना विद्यमान है। ओवरसियर द्वारा कहे गए इन शब्दों से प्रेरणा पाकर कि –

"सात दिन के अन्दर ही डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मिस्तिरी लोग आवेगा। आप लोग बाँस, रबड़ सुतली और दूसरा दरकारी चीज का इन्तजाम कर देगा। तहसीलदार साहब, आप हैं, बालदेव प्रसाद तो देश का सेवक ही है, और सिह जी आए हैं। आप सब लोग मिलकर मदद कीजिए।"

बालदेव अपने देश–सेवकत्व का परिचय देते हुए अस्पताल के निर्माण–कार्य को सफल बनाने में जुट जाते हैं।

"डिस्टीबोट के मिस्तिरी लोग आये हैं। बालदेव के उत्साह का ठिकाना नहीं हैं। आफसियर बाबू ने तहसीलदार साहब और रामकिरपालसिंघ के सामने ही कहा था– आप तो देश के सेवक हैं। सबों ने सुना था दुनिया में धन क्या है ? तहसीलदार साहब और सिंह जी के पास पैसा है, मगर जो इज्जत बालदेव की है, वे कहाँ पाएँगे।"

यादव टोली के लोगों को अपनी मूर्खता का ज्ञान हो जाने पर उन्होंने बालदेव से माफी माँग ली थी जबकि यादवों में सबसे अच्छा खाते–पीते खेलावन यादव उससे अपने यहाँ रहने का आग्रह करते हैं –

"जात का नाम, जात की इज्जत तो तुम्हीं लोगों के हाथों में है। तुम कोई पराये हो ? तुम्हारी मौसी मेरी चची होगी। हम तुम भाई ठहरे।"

बालदेव की सरकारी लोगों में प्रतिष्ठा होने के कारण बालदेव की मौसी के भी भाग्य खुल जाते हैं, क्योंकि खेलावन की पत्नी उसकी मौसी के पास आकर कह जाती है –

"घर आँगन सब आपका ही है। जिस घर में एक बूढ़ी नहीं, उस घर का भी कोई ठिकाना रहता है ? मैं अकेली क्या करूँ, दूध–घी देखूँ कि गोवर–गुहाँल।"

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिस्त्रियों को सभी प्रकार की सहायता जुटाने के लिए बालदेव गाँव के प्रत्येक टोले में घूमकर सहायता का प्रबन्ध करने में जुट जाता है –

"बालदेव हर एक टोले में घूमता रहा। डिसटीबोट से मिस्तिरी जी आए हैं लोग आए हैं। कल से काम शुरू हो जाना चाहिए। .... मलेरिया बोखर मच्छड़ काटने से होता है। मगर कुलैन खाने से, जितना भी मच्छड़ काटे, कुछ नहीं होगा।

बालदेव का लोगों को समझाना–बुझाना रंग लाता है और नीची जातियों की बहुत–सी टोलियाँ अस्पताल के निर्माण कार्य में सहयोग देने को तैयार हो जाती हैं। हाँ तभी यह प्रश्न उठ खड़ा होता है।

"लेकिन हलफाल काम–काज बन्द करने से मालिक लोग मजूरी तो नहीं देंगे। एक दिन की बात रहे तो किसी तरह खेया भी जा सकता है। सात दिन तक बिना मजूरी के ? यह जरा मुस्किल मालूम होता है। यदि मालिक लोग आधे दिन की भी मजूरी दे दें तो काम चल जाय।"

उधेड़–बुन में फँसा बालदेव सोचता है कि शायद विश्वनाथप्रसाद तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर भी लेंगे कि अस्पताल के काम में लगे मजदूरों को उनकी ओर से आधे दिन की मजदूरी दे दी जाए, किन्तु सिंघजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मण टोली भी इस कार्य में सहयोग नहीं करेगी क्योंकि ज्योतिषी काका अस्पताल के विरूद्ध तरह–तरह की अफवाहें फैलाते रहते हैं। वह राजपूत–टोली में पहुँचता है तो शिवशंकर सिंह का पुत्र हरगौरी उससे व्यंग्यपूर्वक पूछता है – "कहिए बालदेव लीडर, क्या समाचार है। आपकी लीडरी कैसी चल रही है ? इस प्रश्न को सुनकर वह विनम्रतापूर्वक उत्तर देता है –

बाबू साहेब, गरीब आदमी भी भला लीडर होता है ? हम तो आप लोगों का सेवक हैं। "

हरगौरी तो बालदेव से चिढ़ा बैठा है राजपूत टोले के सभी लोग उससे चिढ़े हुए हैं कि यह हमारे गाँव में आकर लीडर बन बैठा है। अतः सामूहिक आक्रोश को अभिव्यक्त करते हुए मुँहफट हरगौरी बालदेव को यह कहकर लताड़ता है–

"आप तो लीडर हो ही गए तो आजकल कांग्रेस आफिस का चौका–बर्तन कौन करता है। अरे भाई सभी काशी चले जाओगे ? पतल चाटने के लिए भी तो कुछ लोग रह जाओ। जेल क्या गये, पंडित जमाहिर लाल हो गए। कांग्रेस के आफिस में भोलटियरी करते थे अब अन्धों में काना बनकर यहा लीडरी छाँटने आया है। स्वयं सेवक न घोड़ा का दुम।"

अपमान का घूँट पीकर भी बालदेव विनम्रतापूर्वक पूछता है –

"बाबू साहेब, मुंह खराब क्यों करते हैं ? आप विदमान है और हम जाहिल, मुझसे जो कसूर हुआ है कहिए।"

हरगौरी उसको बेईमान बताते हुए धक्का देने के लिए उठता है तो भी विनम्रता की मूर्ति बालदेव चुप बैठा रहता है और कहता है –

"मारिए, यदि मारने से ही आपका गुस्सा ठण्डा हो तो मारिए।" बालदेव को हरगौरी द्वारा पीटे जाने की मिथ्या सूचना पर जब यादवों द्वारा हरगौरी का खून पीने की घोषणा की जाती है, तो लाठी, बल्लम और बर्छे लेकर आने वाली यादवों की टोली को बालदेव ही समझाकर शान्त करता है –

"बोलिए एक बार प्रेम से इन्ही महात्मा की ... जै। जाय....जाय। पियारे भाइयो, आप लोग जो आन्दोलन किए हैं, वह अच्छा नहीं। अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना अच्छा नहीं। आप ही सोचिए, क्या यह समझदार आदमी का काम है। आप लोग हिंसाबाद करने जा रहे थे। इसके लिए हम को अनसन करना होगा। भारथमाता का, गांधी जी का, यह रास्ता नहीं। और बालदेव वास्तव में ही उपवास करके गांधीजी की भांति सच्चा अहिंसावादी होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

विनम्रता और अहिसा बालदेव के चरित्र के दो मूलभूत गुण हैं। जिनके दर्शन उपन्यास के विभिन्न प्रसंगों में होते रहते हैं। गाँव का कोई भी प्रमुख कार्य आयोजन हो बालदेव उसमें बढ़–चढ़कर भाग लेते हैं। महंत सेवादास द्वारा गाँव को भोज देने की घोषणा की जाती है तो गाँव के विभिन्न टोलों में कितने स्त्री–पुरूष और बच्चे हैं, इस तथ्य की गणना का भार बालदेव ही संभालते हैं। अस्पताल के निर्माण और गाँव में भोज के आयोजन को लेकर विभिन्न टोलों में जो पारस्परिक मन–मुटाव उभर उठता है, उसका दोष अपने ऊपर लेते हुए वे कहते हैं –

"पियारे भाइयो ! कोठारिन साहेब जितना बात मीली, सब ठीक है। लेकिन सबसे बड़ा दोखी हम हैं। हमारे कारन ही गाँव में लड़ाई–झगड़ा हो रहा है। हम तो सबों का सेवक है। हम कोई बिदमान नहीं है, सास्तर–पुरान नहीं पढ़े हैं। गरीब आदमी हैं, मुरख हैं। मगर महतमाजी के परताप से भारत माता के परताप से, मन में सेवा–भाव जन्म हुआ और हम सेवा का बाना ले लिया .... मोमेन्ट में जब गोरा मलेटरी हमको पकड़ा तो मारते–मारते बेहोश कर दिया। पानी मांगते थे तो मुँह में पेशाब कर देता था ....।"

सभा में कानाफूसी होते देखकर वह आगे कहता है –

"आप लोगों को विश्वास नहीं तो देख सकता है।"

"अरे बाप ! चीता–बाघ की तरह देह हो गया है। धन्न है।"

"लेकिन पियारे भाइयों, हमने भारथ माता का नाम महतमाजी का नाम लेना बन्द नहीं किया। तब मलेटरी ने हमकों नाखून में सूई गड़ाया, तिस पर भी हम इसबिस नहीं किये। आखिर हारकर हमको जेलखाना में डाल दिया। आप लोग तो जानते ही हैं कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं – जेहल नहीं ससुराल। यार हम बिहा करने को जाएंगे।"

जेल में जब बालदेव को अधिक यातनाएँ दी जाती हैं, तो वे पांच दिन तक अनशन कर देते हैं। बालदेव की इच्छा है कि मेरीगंज में रहकर वे उसको भी अपने गाँव चन्न्नपट्टी की तरह बनाएँ –

"सो पियारे भाइयो। सेवा–बर्त जब हम लिया है तो इसको छोड़ नहीं सकते। आप लोग अपने गाँव में सेवा नहीं करने दीजिएगा, हम चन्ननपट्टी चले जाएँगे वहाँ आसरम है, घर–घर चरखा चलता है। घर–घर

में औरत–मरद पढ़ते हैं। हम मेरीगंज को अपने चन्ननपट्टी की तरह बनाना चाहते हैं। हम अपने से गाँव में झाड़ू देंगे, मैला साफ करेंगे। हम लोगों का सब किया हुआ है।"

इव अवसर पर बालदेव गाँव वालों को स्थानीय नेता विश्वनाथ चौधरी का एक पत्र भी दिखाते हैं जिसमें 'कस्तूरबा स्मारक निधि' की अस्थायी कमेटी के गठन हेतु होने वाली मीटिंग में बालदेव की उपस्थिति को आवश्यक बताया गया है। परिणाम यह निकलता है कि उनकी गाँव वालों पर धाक जम जाती है–

"चौधरी जी भी बालदेव से राय लिए बिना कुछ नहीं करते हैं। यह अपने गाँव का भाग है कि बालदेव जैसा हीरा आदमी यहाँ आकर रहते हैं। अपना गाँव भी अब सुधर जायगा जरूर।"

डाक्टर प्रशान्त के प्रथम बार गाँव आने पर बालदेव ही उसका स्वागत सत्कार करते हैं और गाँव के लोगों का उनसे परिचय कराते हैं। अभिप्राय यह है कि वे मरीगंज के वास्तव में ही लीडर बन जाते है। पुरेनियाँ में होने वाली कांग्रेस पार्टी की सभा में बालदेव इतने स्त्री–पुरूष एकत्र कर ले जाते हैं कि नेता लोग चकित रह जाते है –

"शिवनाथ चौधरी जी, गंगुली जी, शशांकजी तथा नाथ बाबू, सभी आश्चर्य से देखते हैं। चौधरी जी बादलेव पर बड़े खुश हैं। नाथ बाबू कहते हैं ऐसे ही सभी वरकर अपने फील्ड में वर्क करें तब तो ? दो महीने में ही इतने गाँवों को अकेले ही आरगेनाइज कर लिया है। चदन्निया मेम्बर कितना बनाया है ? पाँच सौ ? तब तो तुम .... आप जिला कमेटी के मेम्बर हो गए।"

उन्हें कपड़े चीनी आदि कंट्रोल रेट की वस्तुएँ बेचने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। जिसे वे यथासाध्य ईमानदारी से पूरा करते हैं। गाँव में चरखा सेंटर खुलवाने में भी वे सक्रिय योगदान करते हैं।

संथालों और ग्रामवासियों में हुई मारकाट में बालदेव और कालीचरण गवाह बनाए जाते हैं। तहसीलदार विश्वनाथ कहते हैं कि बालदेव की गवाही पर ही सारी बात है। किन्तु बादलेव का निश्चय है कि वे सरकारी कटघरे में खड़े नहीं होंगे–

गवाही के लिए हम कटघरा में नहीं चढ़ा सकते। महतमाजी कहिन हैं – झगड़ूं न जाहू कचहरिया, बेईमानों के ठाठ जहाँ।"

बालदेव का भोलापन भी उल्लेखनीय है। उनकी दृष्टि में किसी व्यक्ति को कामरेड–

"टीक–मोंछ काटकर, मुर्गी का अंडा खिलाकर कौमरेड बनाया जाता है। कम्फ जेहल में कितने लोगों को कॉमरेड होते देखा है। राजनीतिक दृष्टि से किंचित गिरावट उस समय लक्षित होती है जब बालदेव बावनदास को गांधीजी द्वारा लिखी चिट्ठियों का राजनीतिक लाभ उठाना चाहते हैं।

नारियों के प्रति मातृ–भाव की भावना :–

बालदेव के चरित्र की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि उनकी नारियों के प्रति दृष्टि में मातृत्व–भाव की प्रधानता है। पितृहीन बालदेव माता के द्वारा असीम वात्सल्यपूर्वक पालन किया जाना इसका मूल कारण माना जा सकता है। बाद में बालदेव का कांग्रेस–पार्टी का सदस्य बनने के उपरान्त मायेजी के रूप में मातृभाव की झलक मिलती है, जिसका कारण है बालदेव के बीमार होने पर मायेजी द्वारा उनकी अपने बच्चे की भांति देख–रेख करना। यही कारण है कि मेरीगंज में लछमी का बालदेव के प्रति आकर्षण मातृभाव का नहीं है, फिर भी बादलेव को लछमी में भी माता की ही झलक दिखाई देती है–

आँसू की गरम बूँदें बालदेव की बाँह पर ढुलक कर गिरीं। माँ, रूपमती मायेजी और लछमी दासिन! मायेजी जैसा ही लछमी भी भाखन देना जानती है। लछमी भाखन दे रही है।"

वह जब प्रथम बार लछमी के सम्पर्क में आता है तो उसको लछमी के शरीर से एक विशेष प्रकार की सुगन्धि आती है –

लछमी के शरीर से एक खास तरह की सुगन्ध निकलती है। पंचायत में लछमी बालदेव के पास ही बैठी थी। बालदेव को रामनगर मेला के दुर्गा मंदिर की तरह गंध लगती है–मनोहर सुगन्ध। पवित्र गंध ! ... औरतों के देह से तो हल्दी लहसुन प्याज और घास की गंध निकलती है।"

लछमी रामदास की ज्यादतियों से तंग आकर बालदेव की ओर झुकती ही जाती है। वह बालदेव से कहती है–

हाँ ! मैं कहां जाऊँगी ? मेरा क्या होगा ? महंथ की दासी बनकर ही मैं मठ पर रह सकती हूँ।" लछमी की आँखें भर आती हैं।

"नहीं लछमी, तुम ..... रामदास की दासी नहीं। मैं.... तुम आप।"

बालदेवजी लछमी पगली की तरह बालदेवजी से लिपट जाती है। रच्छा करो बालदेव। तुम कह दो एक बार–तुम्हें रामदास की दासी नहीं बनने दूंगा ! तुम बोलो चन्ननपट्टी नहीं जाऊँगी। मुझे छोड़कर मत जाओं बादलेव दुहाई।"

बालदेव जी लक्ष्मी को संभलते हुए कहते हैं कोई देख लेगा।"

लछमी चाहती है कि बादलेव उसको पत्नी के रूप में अपनाकर उसे रामदास के चंगुल से छुड़ाएँ, किन्तु बालदेव को तो लछमी में साक्षात् मायेजी और भारतमाता के दर्शन होते हैं –

लछमी आंखें मूँदकर ध्यान की आसनी पर बैठी है। सफेद मलमल की साड़ी पर बिखरे हुए लम्बे–लम्बे काले बाल! और गोरा मुखमंडल। ध्यान आसन पर बैठकर इस प्रकार उपदेश देने वाली यह लछमी कोई और है ! बालदेव के हाथ स्वयं ही जुड़ जाते हैं।

बालदेव को लगता है, खुद भारतमाता बोल रही है। यह सोच है। ठीक यही रूप है जिनके पैर खून से लथपथ हैं। जिनके बाल बिखरे हुए हैं। बावनदास कहता था भारथमाता जार–बेजार रो रही है। नहीं माँ रो नहीं। अब पंथ बता रही है। उचित पंथ पर अनुचित करम करने वालों को चेता रही हैं।

भारतमाता की जै ! महतमाजी की जै ! भारथमाता ! भारथमाता !"

महंथ रामदास बहुत देर से कनैल गाछ की आड़ में खड़े होकर देख–सुन रहे थे। ध्यान आसन पर बैठी हुई लछमी उपदेश दे रही है और बालदेवजी हाथ जोड़े एकटक से लछमी को देख रहे हैं। अचानक बालदेव जी लछमी के चरण पकड़कर हल्ला करने लगे –भारतमाता की जै !

भंडारी ! भंडारी ! महंथ रामदास पिछवाड़े की ओर भगते हुए चिल्लाते हैं, भंडारी ! बालदेव पगला गया। दौड़ो।"

बालदेव का पागलपन का दौरा समझकर पूरा गाँव इकट्ठा हो जाता है। बालदेव बाहें ऐंठकर हाथ छुड़ाकर खड़े हो जाते हैं –

आप लोग क्या समझते हैं मैं पागल हो गया हूँ ? कभी नहीं, हरगिज नहीं, कौन कहता है हम गाँजा पीते हैं। दारू–भाँग–गाँजा की दुकान में पिकेटिन किया है, और हम गाँजा पीयेंगे। छिःछीः। हम महतमाजी के पंथ को कभी नहीं छोड़ सकते। साच्छी है महतमाजी। लछमी को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं –

ओ ! लछमी ! .... लछमी दासिन ! साहेब बंदगी। ठीक है कोई बात नहीं। हम पर कभी–कभी महतमाजी का भी होता है।"

बालदेव के इस पागलपन के दौरे का कारण यह है कि वे ये सोचकर कि मलेरिया की गोलियाँ सात दिन का झंझट कौन उठाएगा, एक दिन में ही सातों गोलियाँ खा लेते हैं।

लछमी की प्रेरणा से बालदेव वैरागी धरम स्वीकार कर लेते हैं।

"जिस दिन उन्होंने परसाद उठाया, उसी दिन से माथा ठंडा हो गया। लछमी तीन–चार दिन तक सतसंग करती रही। आखिर बालदेवजी हार गए। बालदेवजी अब गृहस्थ नहीं रहे, साधू हो गए। मोछभदरा (क्षौर कर्म) करवा कर बालदेवजी का मुँह ठीक सोलह पटनियाँ आलू की तरह हो गया है। अब वे जयहिन्द के साथ–साथ साहेब बंदगी भी जोड़कर बोलते हैं।

रामदास और उसकी दासिन (रखैल) रामपियरिया द्वारा जब लछमी का घोर अपमान किया जाता है तो उस रात के सतसंग में लछमी जो द्विअर्थक भजन गाती है –

एके गृह, एक संग में, हो बिरहिय संग केत।

कब प्रीतम हँसि बोलिहैं जोह रही मैं पंथ।"

और उसके कपोलों पर आँसू ढुलकने लगते है तो बालदेव उसे आलिंगन बढ़कर लेते हैं –

लछमी ! लछमी ! रोओ मत लछमी ! बादलेव की बाँहों में भी इतना बल है ? लछमी को बाँहो में कसे हुए हैं।"

धीरे–धीरे बालदेव के हृदय में लछमी पर अधिकार की भावना बढ़ जाती है। वे दो–एक दिन के लिए रामकिसुन आश्रम जाते हैं, तो वहाँ के शर्माजी उससे यह व्यंग्य कर देते हैं –

अच्छा तो बालदेव जाओ ! हम बेवकूफ हैं जो तुमको रोकेंगे ! तुमको यहाँ रोक लें और उधर तुम्हारी कोठारिन किसी से सतसंग करने लगे तो हुआ ! हा हा हा ! माफ करना, अच्छा तो जैहिन्द।"

तो बालदेव के हृदय में यह बात कुछ घर कर लेती है कि कहीं लछमी किसी से वास्तव में ही सतसंग न करने लगे। और वास्तव में ही जब उन्हें खलासीजी से यह ज्ञात होता है कि लछमी के समीप एक नवतुरिया साधू बैठकर बीजक पढ़ रहा है तो वे सोचने लगते हैं –

''लेकिन लछमी तो अब मठ की कोठारिन नहीं ! एक भले घर की इसतिरी है। .... जब मैं घर में नहीं था तो वह क्यों गया ? आखिर लोग क्या सोचते होंगे ? नहीं यह बात अच्छी नहीं। लछमी को समझा देना होगा।''

उधर उनकी मौसी भी बालदेव और लछमी के आसरम के सामने आकर रोज गालियां सुना जाती है –

अरे भकुआ रे ! एही दिन के लिए पाल पोस के लिए इतना बड़ा किया था रे। .... मुड़िक टौना रे ! लछमिनियाँ ने तो तुमको मोखा की माटी खिलाकर बस कर लिया है। भेंड़ा बनाकर रख लिया है। रे बेलज्ज मोटकी–घुमसी की सूरत पर कैसे भूल गया रे।" लछमी को उसे कभी चावल, कभी गेहूँ और दाल देकर विस करना पड़ता है।

लछमी के समीप लौटकर बालदेव उससे उखड़ी–उखड़ी बातें करते हैं और उस पर कटाक्ष करते हुए कह देते हैं–

सतसंग ही करना है तो उनकी आसनी यहीं लगा दो। दिन–रात खूब सतसंग कर देना।" बालदेव जी ओंठ टेढ़ा करके एक अजीब मुद्रा बनाकर हाथ चमकाकर कहते हैं – सतसंग।

यह सुनकर लछमी के नथुने उठने पर और यह कहने पर कि क्या मुझे रंडी समझ लिय है, वे कह देते हैं –

हम तुम्हारे पालतू कुत्ता नहीं। हम अभी चन्ननपट्टी चले जाएँगे, अभी आँखें उठाकर खड़े हो जाते हैं। किन्तु लछमी क्रोध को पाप का मूल बताते हुए जब यह कहती है कि जाते हुए मुझे कलंक लगाकर मत जाइए और वह रोने लगती है, तो वे उसको समझाते हुए कहते हैं – तुम पर भला सन्देह करेंगे। रोओ मत !

"रोओ मत। लेकिन तुमको अब खुद समझना चाहिए कि तुमको अब खुद समझदार होना चहिए कि तुम अब मठ की कोठारिन नहीं, मेरी इसतिरी हो। लोग क्या कहेंगे"। और वे लछमी को क्षमा कर देते हैं।

संक्षेप में का जा सकता है कि बालदेव गांधीवादी सिद्धान्तों में सच्ची आस्था रखने वाले, अहिंसा के पुजारी तथा देश–सेवा का व्रत लिए हुए सरल ह्रदय प्राणी हैं।

4.3.4 लछमी

लछमी आलोच्य उपन्यास के नारी पात्रों में प्रमुख स्थान रखती है। उसका उपन्यास में जितनी अधिक घटनाओं और पात्रों से सम्बन्ध है उतना किसी अन्य नारी पात्र का नहीं है। परिस्थितियों की विवशतावश वह दासी और रखैल का जीवन व्यतीत करने को विवश होती है और अपनी अबोधावस्था में अपना कौमार्य खंडित करा बैठने का दुर्भाग्य भोगती है, अन्यथा भोग–विलास की ओर उसकी अभिरुचि नहीं लक्षित होती।

अनाथ बालिका :–

लछमी का बचपन उसके दुर्भाग्य की करूण गाथा है। उसकी माता का तभी निधन हो जाता है जब कि वह पूर्णतः अबोध थी–

"सतगुरु के सिवा कोई भी उसका नहीं। माँ की याद नहीं आती। पसराहा के मठ के पास अपनी झोंपड़ी की याद आती है सुबह होते ही बाबूजी कंधे पर चढ़ाकर मठ पर ले जाते थे। .... बाबूजी की महंत साहब बहुत मानते थे। कोई काम नहीं। दिन भी महंत साहेब की धूनी के पास बैठे रहते। गाँजा करो। चूला चढ़ाओं, मठ पर ही हमारा खाना–पीना होता था।" एक दिन ऐसा आता है जब महन्त और रामधन की हैजे से मृत्यु हो जाती है और लछमी अनाथ हो जाती है। अनाथ लछमी किसके संरक्षण में रहे इस तथ्य को

लेकर मेरीगंज के मठाधीश सेवादास और बसुमतिया के महंत के मध्य मुकदमें बाजी होती है। सेवादास की दलील थी कि लछमी का बाप जिस मठ का सेवक था वह मठ मेरीगंज के मठ के अधीन है जब की दूसरा महंत लछमी के पिता को अपना गुरुभाई बताकर उस पर अपना अधिकार जताता था। मुकदमें में सेवादास की जीत हुई, जिससे उसके वकील ने कहा था–

महंत साहब इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा। महंत साहब ने वकील को विश्वास दिलाया था–वकील साहब लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी।'' .... लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाय मठ पर लाते ही किशोरी लछमी को उन्होंने अपनी दासी बना लिया था।

अबोध किशोरावस्था में ही भ्रष्ट :–

यह लछमी का दुर्भाग्य ही है कि वह अबोधावस्था में ही नर–पशु सेवादार की काम–तृष्णा की शिकार हो जाती है। सेवादास के यहाँ ग्वाले का कार्य करने वाले किसनू के शब्दों में –

"अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छित कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखैलिन रखता है वह बाबा जी नहीं। ऊपर बाबा जी भीतर रंगवाजी क्या कहते हो। रखेलिन नहीं दासिन है। किसी और को सिखाना।

सेवादास की तरह उसका शिष्य रामदास भी उसकी असहायावस्था का अनुचित लाभ उठाता है और उसे गर्भ रह जाता है।

"वैसा ही चांडाल है यह रामदावा। वह साला अन्धा होगा देख लेना।" महंत एक बार चार दिन के लिए पुरैनिया गया था। हमने सोचा कि चार रात तो लछमी चैन से सो सकेगी। ले बलैया। बाघ के मुँह से छूटी तो बिलाव के मुँह में गई। उसके बाद लछमी ऐसी बीमार पड़ी कि मरते–मरते बची पाप भला छिपे ? रामदास को मिरगी आने लगी और महंत सेवदास सूरदास हो गए। एकदम चौपट !"

युवावस्था में चरित्र की दृढ़ और तेजस्वी :–

यह तो सत्य है कि लछमी का हृदय डाक्टर प्रशान्त को देखकर पसीज उठता है और वह बालदेव की सरलता के कारण तो उनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होती जाती है, तो भी उसमें पर्याप्त चारित्रिक दृढ़ता और तेजस्विता है। प्रथम बात तो यह है की वह होश सँभालने पर उन सेवादास से भी बीजक छुआकर यह शपथ लिवा देती है कि वे भविष्य में उसको सहवास के लिए विवश नहीं करेंगे – जो उसकी अबोधावस्था का अनुचित लाभ उठाते हुए उसे अब तक सताते आए हैं। ऐसी शपथ ले लेने पर भी जब रामदास एक रात को उसे अपने समीप बुलाते हैं तो वह कुनमुनाती हुई उठती है –

"उस दिन बीजक छूकर कसम खाये थे और आज फिर पुकारने लगे। सतगुरु हो, तुम्हारी बुलाहट कब होगी ? बुला लो सतगुरु अपने पास दासी को।" वह सेवादास को समझाकर शान्त करने का भी प्रयास करती है और जब वह उसके निषेध की चिन्ता नहीं करते, तो कुछ इस प्रकार से प्रतिरोध करती है कि सेवादास के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

लरसिंघदास के हाव–भाव देखकर ही लछमी पहचान जाती है कि इस व्यक्ति का आचरण ठीक नहीं है –

"लछमी ने लरसिंघदास की आँखों में न जाने क्या देखा है कि उसकी छाया से भी बचकर चलती है, रात में किवाड़ मजबूती से बन्द करके सोती है। किवाड़ की छिटकिनी लगाने के बाद एक ओखल किवाड़ से सटा देती है।"

उसके कमरे में धँसने की चेष्टा में असफल हुआ लरसिंघदास खिसियाकर रामदास को अंधे गुरु का अंधा चेला कहकर झपटता है, तो प्रातःकाल सतसंग के अवसर घर लछमी उस पर बिगड़ उठती है –

"क्यों आप वैसी भाखा बोले थे ? महंत होने के पहले ही अंधे हो गए ? मैं गुरु–निन्दा नहीं सुन सकती, नहीं सह सकती। रामदास को आप क्या समझते हैं ? वह इस मठ का अधिकारी महंत है। आपके जैसे एक कोट्टी बिलटा (आवारा) साधुओं को वह रोज परसाद देगा। .... बात करना भी नहीं जानते।"

लरसिंघदास जब उस पर उलटा आक्षेप लगाते हुए यह कहता है कि तुमने अचारज गुरु को गाली दी हैं, क्योंकि वे मेरे गुरु–भाई हैं और तुम मुझको बिलटा कहती हो, तो लछमी उस पर बरस पड़ती है –

"रामदास ! लछमी गरज उठती है, गरदनियाँ देकर निकाल दो इसको। यह साधू नहीं राक्षस है। इसके सिर पर माया सवार है। इससे पूछो कि आज सबेरे जब मै स्नान कर रही थी तो बाँस की टट्टी में छेद करके यह क्या देखता था ? सैतान।"

इसी प्रकार लछमी उस रामदास को भी अवसर आने पर कड़ी फटकार लगाती है जो मठ का महंत होने के नाते उसपर उसी प्रकार अपना अधिकार समझता है, जैसे सेवादास समझा करता था। लछमी आरम्भ से तो उसे शांतिपूर्वक यह समझाती है कि मैं तुम्हारी गुरुभाई हूँ, किन्तु जब रामदास यह कहने लगाता है कि तुम मेरी दासिन हो, तुम्हें मेरी रखैलिन बनकर रहना पड़ेगा, तो लछमी प्रचंड रूप धारण कर लेती है –

चुप कुत्ता ! लछमी हाथ छुड़ाकर रामदास के मुँह पर जोर से थप्पड़ लगाती है। दोनों पाँवों को जरा मोड़कर, पूरी ताकत लगाकर रामदास की छाती पर मारती है, रामदास उलटकर गिर पड़ता है।"

लछमी की तेजस्विता के दर्शन बालदेव के प्रसंग में भी होते हैं। यद्यपि वह बालदेव के प्रति पूर्ण भाव से समर्पित है, तो भी जब बालदेव नबतुरिया साधु के साथ सत्संग को लेकर उस पर व्यंग्य प्रहार करते हैं तो लछमी तिल–मिलाकर कह उठती है– "क्या तुमने मुझे रंडी समझ लिया है ?" इसी प्रकार बाबनदास की चिट्ठियों को बालदेव से छीनने के प्रयास में वह अपनी साड़ी में आग लग जाने की भी चिन्ता नहीं करती।

क्षमाशील :–

लछमी के चरित्र में क्षमाशीलता का गुण भी पर्याप्त मात्रा में है। कुछ तो परिस्थितियों की विवशता के कारण और कुछ साधुओं जैसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह रामदास और बालदेव के अपराधों को अनदेखा ही नहीं कर देती है, अपितु एक प्रकार से स्वयं ही उनसे क्षमा–याचना कर लेती है। लछमी के हाथों रात को बुरी तरह मार खाकर और अपमानित होकर रामदास यद्यपि मर जाने की कामना व्यक्त करता है, प्रायश्चित के लिए काशी जाना चाहता है, किन्तु लछमी उस प्रसंग को भुलाकर उसकी पूर्ववत् ही सेवा करने लगती है। इसी प्रकार यद्यपि बालदेव द्वारा वांछित किए जाने पर वह यह कहती है ? –

"बोलिए। क्या समझते हैं रंडी समझ लिया है क्या। ठीक ही कहा है, जानवर की मूँडी को पोसने से गले की फाँसी छुड़ाता है, मगर आदमी की भी।"

किन्तु जब बालदेव यह कहते हैं –

हम तुम्हारे पालतू कुत्ता नहीं। हम अभी चन्ननपट्टी चले जाएँगे अभी।" तो उनको रोकते हुए लछमी सिसकते हुए कहती है –

"गोस्सा मत होइए गोसाईं साहेब ! करोध पाप को मूल। जाते–जाते देह में अकलंग (कलंक) लगाकर मत जाइए। मेरी तकदीर ही खराब है।" और जब बालदेव कह देते हैं कि तुम अब मठ की कोठारिन नहीं हो मेरी स्त्री हो, तुमको अब स्वयं समझना चाहिए कि लोग क्या कहेंगे तो वह उनके चरणों में गिरकर क्षमा–चाचना कर लेती है –

"लछमी बालदेव जी के पाँव पर गिर पड़ती है, छमा प्रभु ! दासी का अपराध। इसी प्रकार वह बावनदास की चिट्ठियों ंको लेकर हुई बालदेव के साथ छीना–झपटी में जल जाती है, किन्तु फिर भी प्रातःकाल उठकर उसी प्रकार बालदेव के चरणों से अपनी आँखें छुआती है, जैसे पहले छुआया करती थी।

कुशल वक्ता :–

लछमी चतुर भी है और अवसरानुकूल बातें करके विपक्षी को निरुत्तर कर देने का भी सामर्थ्य रखती है। वह उचित ही जानती है कि भंडारे का प्रबन्ध यदि बालदेव को छोड़कर किसी अन्य को सौंपा

गया तो भंडारा चौपट हो जाएगा। अस्पताल के निर्माण और मठ के भंडारे को लेकर हाने वाली सभी में लछमी अपने पक्ष को बड़ी चतुराई से प्रस्तुत करती है –

"ज्योतखी जी ठीक कहते हैं, गाँव के ग्रह अच्छे नहीं। जहाँ छोटी–छोटी बातों को लेकर इस तरह झगड़े होते हैं, जहाँ आपस में मेल–मिलाप नहीं वहाँ जो कुछ न हो वह थोड़ा है। गाँव के मुखिया लोग ही इसके लिए सबसे बड़े दोखी हैं।

लछमी के इस कुशल भाषण का वांछित प्रभाव पड़ता है और राजपूत तथा कायस्थ जिनमें पुश्तैनी मनमुटाव चला आ रहा था, उनके प्रतिनिधि सिंघ साहब और तहसीलदार विश्वनाथ एक हो जाते हैं।

बालदेव को पंथ में दीक्षित होने के लिए कहने पर जब वे यह तर्क देते हैं कि कोठारिन जी, असल चीज है मन। कंठी तो बाहरी चीज है।"

तो लछमी उन्हें यह कहकर निरुत्तर कर देती है –

कंठी बाहरी चीज नहीं है बालदेव जी। भेख है यह। आप विचार कर देखिए। जैसे आपका यह खध्धड़ कपड़ा मलमल और मारकीन कपड़ा पहनने वाले मन से भले ही महातमाजी के पथ को माने लेकिन आप उन्हें सुराजी तो नहीं कहिएगा।"

एक ओर उसकी यह चतुरता है तो दूसरी ओर यह उसका घोर सीधापन भी है कि वह स्वयं को सेवादास के पतन का कारण समझती है –"यह तो महंत साहेब का दोष नहीं। उसका भाग ही खराब है। यदि वह नहीं होती तो महंत साहेब सतगुरु के रास्ते से नहीं डिगते। यह ध्रुव सत्त है। दोख तो लछमी का है। एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है।"

बालदेव के प्रति आसक्ति :–

लछमी का बालदेव के प्रति आकर्षण शनै–शनै आसक्ति में परिणत हो जाता है। बालदेव भी उसकी ओर आकृष्ट है और उन्हें उसमें भारत माता की झलक मिलती है। दूसरी ओर लछमी उनके सरल स्वभाव पर मुग्ध है। लछमी के बालदेव की ओर आकृष्ट हाने का एक कारण यह भी माना जा सकता है कि सेवादास की दृष्टि में बालदेव बड़े ही शुद्ध आचरण वाले पुरुष हैं।

"रुपैया को बजाकर देखा जाता है और आदमी को एक ही बोली से पहचाना जाता है। महंथ साहेब कहते थे–शुद्ध विचार का आदमी है। संस्कार बहुत अच्छा है।" वह बालदेव की इस सिधाई पर प्रमुदित हो उठती है कि वह उसको ही अपना गुरु बनाना चाहते है और उन्हें अपना बीजक सौंप देती है।

वासुदेव और कालीचरण द्वारा नागा बाबा को मार भगाने की घटना के पश्चात् बालदेव मठ पर आना बन्द कर देते हैं, क्योंकि यह हिंसाकांड उनकी दृष्टि में लछमी द्वारा करवाया गया था। किन्तु –

"लछमी बालदेव को भूली नहीं है। कहती है साधु स्वभाव के पुरुष हैं, किसी का चित्त नहीं दुखाना चाहते। बहुत सीधे हैं बालदेव जी। सच्चे साधू हैं। उनसे छिमा माँगना होगा।"

हाँ चरखा सेंटर खोलने में सहायता के लिए एक दिन बालदेव मठ पर आ पहुँचते हैं। रामदास चाहता है कि बालदेव को मठ से शीघ्र ही चलता किया जाए अतः वह उसके कहने पर बालदेव को दस रुपये का नोट देते हुए कहती है –

"आजकल तो हाथ एकदम खाली हैं आप तो आजकल इधर का रास्ता ही भूल गए हैं। हमसे जो अपराध हुआ है छिमा कीजिए।"

महंत रामदास द्वारा लछमी के साथ बलात्कार करने का अचानक प्रयास करने तथा बाद में रामपियरिया को दासी बनाने के प्रस्ताव से लछमी बालदेव की सहायता की अकांक्षी बन जाती है–

"हाँ ! मैं कहाँ जाऊँगी ? मेरा क्या होगा ? महंत की दासी बनकर ही मैं मठ पर रह सकती हूँ। लछमी की आँखें भर आती हैं।

बालदेव द्वारा यह आश्वासन देने पर कि नहीं लछमी तुम रामदास की दासी नहीं मैं .....।" वह भावावेश में बालदेव को आलिंगनबद्ध कर लेती है।

बालदेवजी ! लछमी पागल की तरह बालदेव जी से लिपट जाती है, रच्छा करो बालदेव ! तुम कह दो एक बार– तुम्हें रामदास की दासी नहीं बनने दूँगा। तुम बोलों चन्ननपट्टी नहीं जाऊँगा। मुझे छोड़कर मत जाओ बालदेव। दुहाई।"

रामपियरिया द्वारा अपमानित किए जाने पर लछमी बालदेव के साथ एक नये बाँस–फूंस के बने बँगले में रहने लगती है और अपनी सेवा द्वारा बालदेव की काया–पलट कर देती है – "बालदेव अब कितने साफ–सुथरे रहते हैं। बगुला के पंखों की तरह खादी की लुंगी और मिर्जई दम–दम करती है। देह भी थोड़ा साफ हो गया है। लछमी आपने हाथों से सेवा करती है।"

सहृदय :–

लछमी के चरित्र में सहृदयता का गुण भी अपेक्षित मात्रा में विद्यमान है। वह बावनदास को देखकर सोचती है– इस चिरकुट खद्दड़ की दोलाई से जाड़ा कैसे काटते हैं, बावनदस जी ?" अतः वह उनसे विनय के स्वर में कहती है –

दास जी ! इस चादर से जाड़ा कैसे काटते हैं ? ठहरिए एक पुराना कम्बल है। ले लीजिए। लछमी बिनती के सुर में कहती है।"

वह बालदेव की ओर भी इसी कारण अधिक आकृष्ट होती है कि लछमी उनकी अधिकतर फटेहाल तथा दीन–दुनिया से बेखबर पाती है।

साधु–स्वभाव से ओत–प्रोत :–

लछमी के स्वभाव में साधुओं जैसे गुणों का विकास होता जाता है और वह शनैः–शनैः किसी सच्चे साधु जैसी धर्मनिष्ठ और दयामयी हो जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में –

"लछमी उठी। उठकर महंत साहब के आसन के पास आई। हाथ जोड़कर साहेब बंदगी किया और आँखें मलते हुए कुएँ की ओर चली गई।

लछमी के रग–रग में अब साधु–स्वभाव, आचार–विचार और नियम–धरम रम गया है।"

लछमी में कुछ दुर्बलताएँ भी हैं। वह इस तथ्य को सहन नहीं कर पाती कि महंत रामदास रमपियरिया को अपनी दासी बनाए और इस बात पर उसकी रामदास और रमपियरिया दोनों से ही चख–चख होती हैं। इसी प्रकार वह बालदेव के प्रति अपनी आसक्ति को अधिक समय तक नहीं छिपा और रोक पाती, अपितु ऐसे पद गाती है जिनका अभिव्यंग्यार्थ यह है कि वह बालदेव के साथ निवास करते हुए भी विरहिणी जैसा जीवन व्यतीत कर रही है, जैसे –

"ज्वाला बिरह वियोग की रही कलेजे छाय

प्रेमी मन माने नहीं, दूरसन से अकुलाय।

एके ग्रह एक सँग में, हो विरहिण सँग कंत।

जब प्रीतम हँसि बोलि हैं जो रही मैं पंथ।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लछमी रूपी कमल महंत सेवादास और रामदास–रूपी कीचड़ में फँस कर भी उसमें लीन होने के स्थान पर, उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। स्वतंत्रता के जुलूम में उसकी भारत–माता के रूप में सवारी निकालना उसके निर्मल चरित्र के अनुरूप ही है।

4.3.5 कमला

कमला 'मैला आँचल' के नारी पात्रों में उल्लेखनीय स्थान रखती है। उसका चारित्रिक विकास मात्र लछमी से ही कुछ कम हुआ है अन्यथा वह उपन्यास के नारी पात्रों में विशिष्ट स्थान रखती है।

वह मेरीगंज से सबसे अधिक धनाढ्य व्यक्ति तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की एक मात्र संतान और डाक्टर प्रशान्त की प्रेमिका है। उसका दुर्भाग्य यह है कि उसका जहाँ कहीं भी विवाह करने का प्रयत्न किया जाता है उसमें कुछ न कुछ ऐसा व्यवधान आ पड़ता है कि वह शादी टूट जाती है और प्रकारान्तर से कमला कुलक्षिणी कन्या के रूप में प्रसिद्ध हो जाती है। विवाह योग्य अवस्था होने पर भी विवाह न हो पाने के कारण उसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ने लगते हैं, और इस बीमारी से उपचार के प्रसंग में ही वह डाक्टर प्रशान्त के सम्पर्क में आती है और अंततः उसकी प्रेमिका तथा बाद में उसकी पत्नी बन जाती है।

कमला का उपन्यास में पदार्पण इस प्रसंग से होता है कि डाक्टर के हाथ धोने के लिए साबुन की आवश्यकता पड़ती है तो लोग कहते हैं कि गमकौआ (सुगंधित) साबुन तो मात्र कमली से मिल सकता है, क्योंकि मेरीगंज में एक मात्र कमला ही गमकौआ साबुन प्रयोग करती है।

"तहसीलदार साहब की बेटी कमला जब गमकौआ साबुन से नहाने लगती है तो सारा गाँव गमगम करने लगता है।"

उसको डाक्टर प्रशान्त को बेहोशी की अवस्था में दिखाते हुए तहसीलदार साहब कहते हैं कि ''यह प्रायः एक घंटे तक बेहोश रहा करती है। ज्योतिषी जी से जन्तर बनवा कर दिया, झाड़ फूँक कराकर भी देखा किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ है। डाक्टर साहब, यही मेरा बेटा, यही मेरी बेटी– सब कुछ यही है।"

डाक्टर प्रशान्त को उसके विवाह टूटने की बातों के साथ ही केस–हिस्ट्री ज्ञात हो जाती है–

"तीन जगह बात चली, मगर – पहली जगह से तो पान देने की बात भी पक्की हो गई थी। ठीक पान–तिलक के दिन लड़के की माँ मर गई। दूसरी जगह बातचीत ठीक हुई तो उनके घर आग लगा गई। तीसरे लड़के को मैया हो गयी, इंतकाल हो गया। अब कोई लड़का वाला तैयार ही नहीं होता है। हजार, दो हजार, पाँच हजार, रुपया भी कबूलते हैं मगर ..... आखिर में एक पछबरिया कैथ को घरजमैया रखने के लिए लाये, बस उसी दिन से कमली को मिरगी आने लगी। लोग तो कहते हैं कि कमला मैया (नदी का नाम) है। कमला का नाम इसी से मनौती माँगने पर हुआ था। नहीं चाहती हैं कि कमला की सादी हो। कमला मैया भी कुमारी ही थी न।"

धीरे–धीरे डाक्टर और कमला एक दूसरे में अभिरूचि लेने लगते हैं। डाक्टर उसे सुई लगाने की बात कहता है तो वह दवा पीने को तैयार हो जाती है। इसी समय डाक्टर प्रशान्त के रेडियो पर प्रसारित होने वाले इस लोक गीत को सुनकर –

"माइगे, हम ना बियाहेब अपन गौरा के,

जौं बुढ़वा होइत जमामगे भाई।"

कमला खिलखिला कर हँस पड़ती है। डाक्टर प्रशान्त को उसके रोग का निदान मिल जाता है –

"केस अजीब है। केस–हिस्ट्री और भी दिलचस्प हिस्टीरिया, फोबिया, काम–विकृति और हठ–प्रवृत्ति ....। मैंने अपने पोर्टेबल रेडियो से उसके दिमाग को झकझोर कर दूसरी ओर करने की चेष्टा की है।"

डाक्टर प्रशान्त के दो एक बार आने पर ही कमला उसको अपना हृदय समर्पित कर बैठती है जैसा कि उसके निम्नांकित उद्‌गारों से स्पष्ट है –

"डाक्टर की मुस्कराहट बड़ी जानलेवा है, जब आवेगा तो मुस्कराते हुए आवेगा। डर लगता है ? हाँ हाँ डर लगता है तो तुमको क्या ? तुमको तो मजा मिलता है ना मुस्कराए जाइये ! गले में आला लटकाए फिरते हैं बाबू साहेब। छाती और पीठ के लगाकर लोगों के दिल की बीमारी का पता लगता है। झूठ। इतने दिन हो गये, मरे दिल की बात, मेरी बीमारी के कहाँ जान सके !"

कमला स्वयं तो प्रशान्त के प्रति आसक्त हो ही जाती है, उसे यह अनुभूति भी होने लगती है कि प्रशान्त मेरे अतिरिक्त अन्य किसी युवती से मीठी बातें नहीं कर सकता।

"सिपैहिया टोली की कुसुमी कहती थी, डाक्टर मुझसे भी पूछता था–मीठी दवा चाहिए क्या ? मैं नहीं विश्वास करती। डाक्टर ऐसा नहीं है। कुसुमी झूठ बोलती है। मीठी दवा और किसी को मिल ही नहीं सकती है। डाक्टर खबरदार ! कुसुमी बड़ी चालबाज लड़की है। बहुतों को बदनाम किया है उसने। हरगौरी उसका मौसेरा भाई है लेकिन–जाने दो क्या करोगे सुनकर ?"

कमला के आग्रह के कारण ही डाक्टर प्रशान्त तहसीलदार साहब के यहाँ रोज रात को चाय पीने आने लगता है और जब–तब भोजन भी करता है। कमला उसकी प्रयोगशाला को देखने के बहाने उससे खुले आम मिलने जाने लगती है और गाँव के नर–नारियों में चर्चा का विषय बन जाती है। पिता की अनुपस्थिति में वह मिरगी का दौड़ा पड़ने का स्वाँग रचती है और जब होश में आती है तो देखती है –

"कमला ने आँखें खोल दीं। उसका सिर डाक्टर की गोद में है, माँ हाथ में चम्मच लिए खड़ी है।"

डाक्टर प्रशान्त उसकी 'नल–दमयन्ती' शीर्षक पुस्तक को खोलने पर देखता है कि कमला ने अपने नाम के आगे से कुमारी शब्द काटकर उसके बाद बैनर्जी शब्द जोड़ दिया है। नल–दमयंती की तस्वीरों के नीचे प्रशान्त और कमला लिखा हुआ है।

होली के अवसर पर प्रशान्त कमली के हाथ पर गुलाल लगाने के लिए चुटकी में गुलाल लेता है तो कमला उसे टोकते हुए कहती है –

"आप होली खेल रहे हैं या इंजैक्शन दे रहे हैं। चुटकी में अबीर लेकर ऐसे खड़े हैं मानों किसी की मांग में सिंदूर देना है।" प्रोत्साहन पाकर प्रशान्त अबीर की पूरी झोली ही कमला के सिर पर उँडेल देता है। प्रशान्त और कमला एक दूसरे के अधिकाधिक निकट आते जाते हैं।

कमला की माँ को उसका प्रशान्त से इस सीमा तक हेल–मेल अच्छा नहीं लगता किन्तु वह अपनी पुत्री से कुछ कह नहीं पाती। कमला की आँखों में विचित्र प्रकार की झलक देखकर चिंता होती है किन्तु वह यह सोचकर अपने मन को समझा लेती है कि "मेरी बेटी तो माँ कमला है – वह जो चाहे करे।"

कमला को पारवती की माँ समझाती भी है कि वह डाक्टर के साथ इस प्रकार के सम्बन्ध नहीं रखे क्योंकि उसका भयंकर परिणाम निकलेगा, किन्तु कमला डाक्टर के इस आश्वासन को ही पर्याप्त समझती है कि "जो भी हो, बुरा नहीं होगा।" उसकी यह धारणा बन जाती है कि डाक्टर प्रशान्त जिन है जो मोहक रूप धारण करके उसे भरमाता रहता है।

डाक्टर प्रशान्त को सजा हो जाने पर जब कमला की माता को उसके गर्भवती होने का रहस्य ज्ञात होता है तो पति–पत्नी अजीब उलझन में फँस जाते हैं। कमला अपनी ओर से भी माँ के सामने यह प्रस्ताव रखती है कि मुझे गुदाम–घर में बन्द कर दीजिए। माँ अपराध करने के लिए आखिर कोई सजा तो मिलनी ही चाहिए। इसको घर में ही जेहल दे दो।" जब तहसीलदार साहब अपनी पत्नी पर बहुत बिगड़ते हैं तो वह पिता से अनुनय करती है कि मेरे अपराध की सजा माता को न देकर मुझको दीजिए। यह उसका सौभाग्य ही है कि जेल से छूटकर डाक्टर प्रशान्त उसको अपना लेता है। और उसका यह दृढ़ विश्वास प्रशान्त मेरे साथ विश्वासघात नहीं कर सकता, सच सिद्ध हो जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कमला एक धनाढ़य पिता की पुत्री होते हुए भी इस दृष्टि से अभागी है कि उसके लिए कोई उपयुक्त वर नहीं मिलता। वह डाक्टर प्रशान्त की भावकुता में फँस कर जो आत्म–समर्पण कर देती वह उसकी दृढ़ आस्था के कारण अंततः सफल ही सिद्ध होता है।

4.4 कठिन शब्द

1. धनाढ़य
2. आत्म–समर्पण
3. सौभाग्य
4. अनुनय

5. प्रस्ताव
6. भयंकर
7. हिस्टीरिया
8. प्रयोगशाला
9. क्षुद्र मनोवृति

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बालदेव के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

2. 'परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा पारिपोषित' किस पात्र के लिए कहा गया है, चरित्र–चित्रण कीजिए।

____

____

____

____

3. 'लछमी का बचपन उसके दुर्भाग्य की करूण गाथा है' इस वक्तव्य के आधार पर लछमी का चरित्र–चित्रण कीजिए।

____

____

4.6 पठनीय पुस्तकें

1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंद दुलारे वाजपेयी
6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा
7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा
8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल
9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर
10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा
11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान
12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना
13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

– – – – –

कथाकार चित्रा मुद्गल

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 कथाकार चित्रा मुद्गल

5.3.1 चित्रा मुद्गल का व्यक्तित्व

5.3.2 चित्रा मुद्गल का लेखकीय जीवन

5.3.3 चित्रा मुद्गल का साहित्य सृजन

5.4 उपलब्धियां

5.5 सम्मान तथा पुरस्कार

5.6 सारांश

5.7 कठिन शब्द

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

- कथाकार चित्रा मुद्गल के व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- चित्रा मुद्गल का व्यक्तित्व बहुआयामी है, इससे अवगत होंगे।

- चित्रा मुद्‌गल सफल लेखिका के साथ–साथ एक सामाज सेविका भी हैं, इससे परिचित होंगे।

5.2 प्रस्तावना

जब भी किसी रचनाकार के व्यक्तित्व के विश्लेषण एवं मूल्यांकन की चर्चा की जाती है तब तत्कालीन युग की परिस्थितियों का वर्णन पहले किया जाता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अलग होता है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व से भिन्न होता है। एक ही परिवेश परिवार में समान स्थितियों में रहकर भी दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व का गठन भिन्न होता है। उनमें अपवादात्मक समानता हो सकती है। अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा और बेजोड़ होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक शक्तियां प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कारणीभूत होती है। व्यक्ति और सामाजिक शक्तियों में होने वाली क्रिया प्रतिक्रिया का प्रतिफलन होता है–व्यक्ति का व्यक्तित्व। इसलिए किसी भी रचनाकार के कृतित्व का अनुशीलन करने के लिए उसके व्यक्तित्व को जान लेना अनिवार्य हो जाता है। रचनाकार का संक्षिप्त जीवन परिचय जान लेना इसी क्रम की एक बड़ी कड़ी है।

5.3 कथाकार चित्रा मुद्‌गल

5.3.1 चित्रा मुद्‌गल का व्यक्तित्व

चित्रा जी का जन्म 10 दिसंबर 1944 में मद्रास में हुआ। उनके पिता श्री प्रताप सिंह जी उन दिनों आई.एन.एस. अश्विनी, मद्रास में नेवी में कमांड़र के पद पर कार्यरत थे। चित्रा जी उन्नाव जिले के निकट अवस्थित निहाली खेड़ा गांव से संबंधित हैं। ठाकुर निहाल सिंह तालुकेदार थे। उन्हीं के नाम पर उस गांव का नाम निहालीखेड़ा पड़ा था। उन्हीं के खानदान से चित्रा जी भी संबंधित हैं। अर्थात् चित्रा जी क्षत्रिय परिवार से संबंधित है। चित्रा जी के व्यक्तित्व निर्माण में उनके पूरे परिवार और उसकी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है।

चित्रा जी के दादा जी ठाकुर बजरंग सिंह अंग्रेज़ों के जमाने में विक्टोरिया क्रॉस विजेता डॉक्टर थे। वे अपने आस–पास के इलाके में एक अच्छे डॉक्टर के रूप में प्रसिद्ध थे। उस जमाने में आवागमन के साधन न होने पर वह हाथी पर बैठकर जाया करते थे। ठाकुर बजरंग सिंह को अंग्रेज़ों ने 'राय' की पदवी प्रदान की थी।

चित्रा जी बताती हैं कि उन दिनों की धुंधली स्मृतियों में यह दर्ज है कि घर में सामंती विचारधारा के बावजूद भी स्वतंत्रता सेनानियों को आर्थिक मदद दी जाती थी, भूमिगत सेनानियों को आश्रय दिया जाता था लेकिन ऊपरी तौर पर अंग्रेजों को सहयोग दिया जाता था जैसे लगान वसूली के लिए आने वाले अंग्रेज़ कर्मचारियों की खूब आवभगत की जाती। चित्रा जी के दादा जी जिन्हें वे 'बड़े बप्पा' कहकर बुलाती थीं,

अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे। बचपन की एक घटना चित्रा जी के मन पर गहरे अंकित है जब रामसेवक बारी के बेटे भीखू ने गेहूं की बोरी चोरी की थी और पकड़ा गया था। हंटर की मार से भीखू की देह उखड़ गई थी। चित्रा जी के बालमन में तभी सवाल उठे थे कि एक बोरी गेहूं के पीछे इतनी पिटाई होने पर वह आदमी डकैतों में शामिल न होगा तो क्या करेगा ? नीम के पेड़ से बंधे भीखू की छवि उनके मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है कि 'दशरथ का वनवास' कहानी में वह प्रसंग कुछ अलग ढंग से उभर कर आता है चित्रा जी की दादी जी रीवां रियासत की थीं। वह बहुत बौद्धिक किस्म की महिला थी। वे बड़ी धार्मिक और आध्यात्मिक रुचि की थीं। रामायण, भजन गाना, कल्याण, (धार्मिक पत्रिका) पढ़ना आदि किया करती थीं। घर में उन्हीं के कारण धार्मिक वातावरण था। उस सामंती परिवार में चरखा कातने का क्रांतिकारी काम उन्होंने किया। पास के गाँव भरतीपुर से शिक्षिका जी आकर उन्हें सूत कातना सिखाती थीं। दादा जी को उनका चर्खा कातना कतई पसंद न था। लेकिन उन्होंने दादा जी से पूछे बगैर ही चरखा चलाना सीखा था यानि कि आजादी की भावना घर के बाहर ही नहीं घर के भीतर भी आ रही थी।

ठाकुर बजरंग सिंह के तीन पुत्र थे। बड़े बेटे ठाकुर लाल बहादुर सिंह, जो देश स्वतंत्र होने से पूर्व बर्मा में कार्यरत थे और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मुंबई में फिल्मोद्योग से जुड़ गये। मंझले बेटे ठाकुर प्रताप सिंह जो नेवी में कमांडर थे और बाद में सफल व्यवसायी रहे। सबसे छोटे बेटे ठाकुर अंबिका प्रसाद सिंह जो मुंबई के पुलिस कमिश्नर की हैसियत से रिटायर हुए थे।

ठाकुर प्रताप सिंह जी चित्रा जी के पिता जी थे। ठाकुर प्रताप सिंह जी स्तानक थे। सामंती घराने के पुत्रों में पाये जाने वाले सभी गुण–अवगुण उनमें थे। चित्रा जी कहती हैं–"वे अच्छे घुड़सवार थे, अचूक निशानेबाज। उनकी निशानेबाजी में कौशल की मैं घोर प्रशंसक रही हूँ। अपने जीवन में उन्होंने चार चीतों का शिकार किया।" ठाकुर प्रताप सिंह जी अपने बच्चों को भी शिकार, घुड़सवारी सिखाना चाहते थे। लेकिन चित्रा जी का संवेदनशील मन शिकार करना न सीख पाया। शिकार करना सीखते समय–"उसकी किशोर उंगलियां कांप रही थीं–क्यों यह आदमी उससे एक चिड़िया की हत्या करवा रहा है ?" यह प्रश्न उन्हें बार–बार व्याकुल करता।

चित्रा जी के पिता जी कलासक्त मन के व्यक्ति थे। गीत संगीत में उन्हें रुचि थी। "संगीत में वे बड़े गुलाम अली खां के प्रशंसक थे। गीत सुरैया के सुनना पसंद करते थे। उनके मित्र मंडली में सुरैया भी थी और स्वर्गीय तस्कर हाजी मस्तान भी। शिकार करना और उसे अपने हाथों पकाना, खिलाना–दोनों ही उनके शौक थे। लेकिन स्वभाव से वे भी अपने पिता के समान ही कठोर थे। सामंती विचार उनमें भी कूट–कूट कर भरे थे। यद्यपि शिक्षा के कारण वे आधुनिक विचारों को मानते थे। लेकिन अपने परिवार में वे स्वयं अपने विचारों को ही प्रश्रय देते थे। यूं दीन गरीब लोगों को आर्थिक मदद भी देते थे। चित्रा जी को अपने पिता के जीवन का एक

अनजाना पहलू उनकी मृत्युपरान्त ज्ञात हुआ। ''पिता जी की मृत्युपरान्त मुझे उनका एक रजिस्टर प्राप्त हुआ। जिसमें हिंदी में एक नाटक लिखा हुआ था। अंग्रेजी में रोमांटिक कविताएं..... उनके कठोर, दुस्साहसी, आकर्षक छबीले व्यक्तित्व का यह संवेदनशील रचनात्मक पक्ष मेरे लिए सर्वथा अनजाना था।''

चित्रा जी की माता जी, जिन्हें वे 'अम्मां' कहती हैं, प्रतापगढ़ के बयालीस गाँव के तालुकेदार की बेटी थीं। उनका गाँव आलीशकरपुर था। उनका नाम देवराज कुंवर था। उनकी शिक्षा केवल अक्षरज्ञान तक ही सीमित थी। इसलिए उनके पति ठाकुर प्रताप सिंह उनके प्रति सदैव कठोर बने रहे और चित्रा जी के जन्म के पश्चात् लगभग चार वर्ष तक वे उन्हें गाँव छोड़कर आ गये थे। चित्रा जी की माताजी अत्यन्त सुस्वभावी, पाककला निपुण, सहनशील महिला थी। अम्मा के प्रति पिता का कठोर व्यवहार चित्रा जी को अक्सर विद्रोह के लिए उकसाता। घुड़सवारी सीखते समय चित्रा जी को अक्सर विद्रोह के लिए उकसाता। घुड़सवारी सीखते समय चित्रा जी के घुटनों पर गहरी चोट लग गयी थी। तब पिता ने क्रोध में कहा था कि अनपढ़ जाहिल माँ के समान वह भी आगे नहीं बढ़ सकेगी। तब पहली बार उन्हें पप्पा पर गुस्सा आया था कि ''अम्मा को क्या कभी उन्होंने कुछ बनाने की सोची ? ग्यारह साल की बच्ची जो देहरी के भीतर से पालकी में विदा होकर फिर एक देहरी में कैद हो गयी, उससे क्या उपेक्षा करते हैं वह ?.... नहीं सोचा कि कुछ देने का कर्तव्य भी बनता है, और उस लड़की की भी कुछ मामूली अपेक्षाएं हो सकती हैं अलावा खानसामा गिरी के ? मां की इन परिस्थितियों ने चित्रा जी को प्रश्नों के दायरे में घेरना शुरु कर दिया। सम्भवतः तभी से स्त्री की अस्मिता को खोजने के बीज उनमें पड़े होंगे। अब तक अपनी मां को वे अत्यंत सहज रूप से लेती रहीं, लेकिन धीरे–धीरे उन्होंने न केवल मां के बल्कि संपूर्ण नारी जाति के प्रश्नों को गंभीरता से देखना, समझना, सुलझाना शुरु कर दिया। चित्रा जी के पिता नेवी में थे अतः उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव और शहर में थोड़े व्यवधानों को झेलती सी हुई। प्रथम मुंबई के उपनगर विले पारले में अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल में पढ़ाई हुई। फिर लगभग चार वर्ष तक वे गाँव भरतीपुर की पाठशाला में पढ़ती रही और पुनः वे मुंबई आ गयी। उनके अध्ययन में इस तरह के व्यवधान आने का एक और कारण भी है जिसका चित्रा जी संकेत देती हैं। वह है– माता–पिता में बेवनाव। श्री प्रतापसिंह जी अपनी अनपढ़ पत्नी को तब अपने स्टेट्स के लायक नहीं समझते थे।

चित्रा जी जिस जमींदार परिवार में जन्मीं थीं वहां लड़कियों की शिक्षा–दीक्षा पर बड़ी पाबंदियां थीं। उस परिवार में चिट्ठी पत्री बाँच लेने, रामायण कल्याण आदि पढ़ लेने तक ही अक्षरज्ञान दिया जाता था। लेकिन श्री प्रतापसिंह जी अपने बेटों के साथ बेटियों को भी उच्च शिक्षा देना चाहते थे। वे चाहते थे कि उनके बच्चे हर क्षेत्र में पारंगत हों। तैराकी, घुड़सवारी, शिकार, खेल–कूद सभी क्षेत्रों में वे उन्हें निपुण बनाना चाहते थे।

बंबई आने पर उन्हें सेंट्रल स्कूल में प्रवेश नहीं मिल पाया था अतः हिंदी हाईस्कूल घाटकोपर में आगे की शिक्षा प्राप्त की। स्कूली जीवन में उन्होंने खेलकूद और चित्रकला में अनेक पारितोषिक प्राप्त किये। वे

अपने चित्रकला शिक्षक श्री जोशी जी को बड़े आदर के साथ याद करती हैं। जिन्होंने उनके रुझान को दिशा देने का कार्य किया। 'पराग' की 'रंगभरे' प्रतियोगिता और 'शंकर्स वीकली' के कई पुरस्कार जीते उसने। महाराष्ट्र की चित्रकला परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कीं। जोशी सर ने उसे खूब प्रोत्साहित किया और किसी दिन उसने मन ही मन तय कर लिया कि बड़ी होकर चित्रकार बनेगी, ठीक बेन्द्रे और बी. प्रभा की तरह। चित्रों की खूब प्रदर्शनियां लगायेंगी....

अपने स्कूल जीवन से ही उन्होंने कविता लिखना आरंभ कर दिया था। अपने पिता के निरंकुश स्वभाव पर उन्होंने कविता लिखी थी जो उन्होंने विद्यालय की हस्तलिखित पत्रिका के लिए लिखी थी। उनके शिक्षक उस कविता को पढ़कर चौंक उठे थे।

तात्पर्य यह है कि विद्यालयीन जीवन से ही उन्होंने गलत बातों का विरोध करना शुरु कर दिया। तभी से वे वाद–विवाद प्रतियोगिताओं, भाषण प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगीं। उन्होंने प्रसिद्ध नृत्यांगना सुधा डेरास्वामी से 'भरतनाट्यम' भी सीखा। उनके नृत्य सीखने पर भी दादा जी ने विरोध किया था। क्योंकि नाचना–गाना ठाकुरों के यहां निम्न दर्जे का समझा जाता था। घर के उत्सवों में नाच गाने के लिए बाहर से नर्तकियां बुलवाई जाती थीं। अच्छे घरों की लड़कियाँ नाचती न थीं। पिता जी भी इनके शौक को पसंद नहीं करते थे लेकिन वे दृढ़ थीं। केवल डाकयार्ड के एक कार्यक्रम में उन्होंने अपना नृत्य प्रस्तुत किया था। उस कार्यक्रम में उनके पिता जी के साथ कमोडोर श्रीनंदा और रीयर एडमिरल श्री कटारियाप्पी भी थे। कार्यक्रम समाप्त होने पर वे घर लौटीं तो घबरा रही थीं कि अब पिता जी डाँटेंगे लेकिन उस नृत्य की सभी ने इतनी प्रशंसा की कि उनका विरोध ही समाप्त हो गया। घर आकर उन्होंने चित्रा जी को शाबासी दी। यह अपने आप में चमत्कार ही लगा उन्हें। क्योंकि चित्रा जी ने अपने पिता को केवल अपनी ही कहने और करने वाले रूप में अधिक देखा था। धीरे–धीरे उन्होंने पिता की पाबंदियों में छूट लेनी शुरू कर दी।

चित्रा जी ने अपना महाविद्यालयीन जीवन सोमैया कॉलेज घाटकोपर में शुरु किया। सोमैया कॉलेज ने उनके जीवन को एक नई दिशा दी। राम त्रिपाठी जी, प्रो. राधेश्याम शर्मा जी, प्रो. पंडाजी, अनंतरामजी जैसे प्राध्यापक मिले। उनके लेखन के आरंभिक दौर में इन प्राध्यापकों का मार्गदर्शन बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ। उनकी वृहत्व प्रतिभा को पहचान कर उनके प्राध्यापकों ने उन्हें बहुत प्रोत्साहित किया। अपने महाविद्यालय के साथ ही अन्तर महाविद्यालयों की प्रायः सभी कहानी, कविता, प्रतियोगिता, भाषण, वाद–विवाद प्रतियोगिता में वे हिस्सा लेती थीं। वे बताती हैं कि–पंडाजी की सदैव यही कामना होती कि मैं प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने कॉलेज का नाम रोशन करूँ। बहुत भरोसा था उन्हें मेरी प्रतिभा पर। उनके भरोसे का मैं पूरी लगन और आत्मविश्वास के साथ पूरा करने में जुट जाती। प्रो. अनंतरामजी उनकी रचनाओं को प्रकाशित करवाने का यत्न करते। जैसे ही उन्हें किसी प्रतियोगिता में पुरस्कार प्राप्त होता था किसी

अखबार या पत्रिका में उनके पुरस्कृत होने की सूचना या चित्र छपता तुरंत ही वह सूचना महाविद्यालय के सूचना पट्ट पर आ जाती। उन्होंने 'सेण्ट जेवियर्स' कॉलेज द्वारा स्थापित 'भारतेन्दु ट्रॉफी' अन्तर महाविद्यालयीन वाद–विवाद में जीती तब ''उस प्रतियोगिता के निर्णायक मंडल में सेण्ट जेवियर्स' में ही पढ़ा रहे 'मुर्दाघर' जैसे ख्यात उपन्यास के लेखक प्रो. जगदंबा प्रसाद दीक्षित निर्णायक के रूप में उपस्थित थे।'' यह बात वे गर्व से बताती हैं।

महाविद्यालय में पढ़ते हुए ही वे 'जागरण' स्वयंसेवी संस्था के साथ जुड़ गयी थीं। वे 'जागरण' की घाटकोपर विंग में थीं, जो हनुमान टेकड़ी गोदरेज कंपनी के पीछे पहाड़ियों पर बसी झोपड़पट्टी में काम करती थी। इस दौरान उन्होंने महानगर के नासूर कहलाने वाली झोंपड़पट्टी को बहुत नज़दीक से देखा। अनुभव का एक नया अध्याय उनके जीवन से जुड़ गया। गरीब, दलित, शोषित, व्यक्तियों के रिसते जख़्म उन्हें भीतर तक उद्वेलित कर गये। यही सब बाद में उनके लेखन का विषय भी बना। वैसे उन दिनों कहानी से अधिक वे कविताएं रचती थीं।

सौमेया कॉलेज से इंटर करने के पश्चात् उन्होंने जे. जे. स्कूल ऑफ आर्टस से फाइन आर्टस में डिप्लोमा किया। बचपन से ही वे रंगों की दुनियां में खोयी रहती थीं। लेकिन इन्द्रधनुषी रंगों ने चित्रा जी का दूर तक साथ नहीं दिया। यूं वे अपने स्तर पर वॉटर कलर में चित्राकृति और स्केच आदि बनाया करती थीं। एक लंबे अर्से के बाद उन्होंने 'एस.एन.डी.टी. महिला महाविद्यालय से स्नातक और स्नातकोत्तर की पदवियां ग्रहण कीं।'

चित्रा जी का विवाह श्री अवध नारायण मुद्‌गल जी के साथ 1965 में हुआ। यह प्रेम विवाह था जो कुछ मित्रों की उपस्थिति में एक आर्य समाज मंदिर में अत्यन्त सादगी से हुआ था। चित्रा जी के परिवार ने इस विवाह का खूब विरोध किया। पिता श्री प्रताप सिंह जी ने साफ लफ्ज़ों में सुनाया था कि सूर्यवंशी ठाकुर निहालसिंह के खानदान में किसी भी लड़की को यह छूट नहीं है। उन्हें आपत्ति थी कि मुद्‌गल विजातीय है और उनके ड्राइवर की हैसियत का चार सौ रुपये कमाने वाला है। चित्रा जी की अम्मां ने चित्रा जी से कहा था, ''तुम नहीं जानती बैसवाडा के इन सूर्यवंशियों के खानदान की..... लड़की का पाँव तनिक भी अनुशासन से बाहर हुआ नहीं कि उसे अङ्गाला (एक और आंगन) के कुएं की जगत में बलात् ढ़केलकर प्रचारित कर दिया जाता है कि पानी खींचते हुए अचानक कुएं की जगत पर से बिटिया का पाँव फिसल गया।''

लेकिन चित्रा जी अपने परिवार के सामंती आतंक से मुक्त होने का निर्णय ले चुकी थी। विवाह के बाद उनके पिता जी ने उन्हें अवधजी से अलग करने की बहुत कोशिश की। यहां तक कि बंदूक पिस्तौल तक बात पहुँच गयी। लेकिन जीत चित्रा जी–अवध जी की हुई।

5.3.2 चित्रा जी का लेखकीय जीवन

चित्रा जी ने स्कूली जीवन से ही लिखना आरंभ कर दिया था। पहले वे वाद–विवाद और भाषण प्रतियोगिताओं के लिए लिखा करती थीं। विद्यालय में ही कविता–कहानी प्रतियोगिताओं के लिए उन्होंने लिखना शुरु किया। उनकी पहली कविता उन्होंने 'पिता' पर लिखी थी, जिसमें उन्होंने पिता के कठोर व्यवहार का वर्णन जल्लाद के समान किया था। यह कविता उन्होंने स्कूल की पत्रिका के लिए लिखी थी। लेकिन जब उस कविता को सर ने देखा तो उन्हें समझाया कि हम विद्यार्थियों के लिए निकाल रहे हैं। यदि पिता के प्रति ऐसी अनादर युक्त कविता प्रकाशित होगी तो विद्यार्थी क्या आदर्श लेंगे ? बेहतर हो तुम यह लिखो कि तुम जीवन में क्या करना चाहती हो। वगैरह तब 'हिंदी हाईस्कूल', घाटकोपर की पत्रिका में उन्होंने कविता लिखी–

जीवन के शूल भरे पथ पर चलते–चलते
आ जाये ना प्राणों की अंतिम शाम कहीं
मंजिल है मेरी दूर अभी!

जब वे गंभीरता से लेखन की ओर बढीं तब भी आरंभ कविता से ही किया। 'लहर' पत्रिका में सन् 1966 के अगस्त माह के अंक में 'कैसे जियेंगे वे' तथा 1969 में 'जब तुम' आदि कविताएं महत्वपूर्ण ढंग से छपीं। 1966 में ही 'ज्ञानोदय' के अंक में 'एक अगरबत्ती की गंध' कविता प्रकाशित हुई। नवभारत में भी उनकी कविताएं छपती थीं। उन दिनों कविताओं के विषय–मुहब्बत, दुःख, टूटन, जुदाई इत्यादि इत्यादि ही थे। यद्यपि उन्हें तब तक मुहब्बत–वुहब्बत हुई नहीं थी।

चित्रा जी की पहली 'सफ़ेद सेनारा' थी। 'नवभारत टाइम्स' द्वारा आयोजित कथा प्रतियोगिता में यह कहानी पुरस्कृत एवं प्रकाशित हुई थी। यद्यपि उन्होंने अपने भीतर की बेचैनी को अभिव्यक्त करने के लिए इन्द्रधनुषी रंगों और कूंचियों को चुना था तथापि उन्होंने महसूस किया कि केवल रंग ही उनके अभिव्यक्ति के सार्थक साधन नहीं हैं। 'उसे काली स्याही की जरुरत है। उस स्याही की कालिख को इतना तराशना होगा, उसे इतनी धार देनी होगी कि एक ऐसा मुकाम आए कि वह अपने अंधेरों से लड़ने में स्वयं समर्थ हो।'' और उन्होंने कविता को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना लेकिन फिर भी वे असंतुष्ट ही रहीं। उन्हें ''कहीं गहरे अनुभव होने लगा था कि अनवरत् प्रश्नाकुलता और क्षुब्ध बेचैनी की गहरी सघन अभिव्यक्ति के लिए कविता अनुकूल माध्यम नहीं है.... तभी तो 'राम की शक्ति पूजा' लिखने वाले महाप्राण निराला को 'बिल्लेसुर बकरिहा' लिखना पड़ा। नरेश मेहता, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, महादेवी वर्मा, बच्चन आदि ने भी समय–समय पर गद्य को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना।''

तत्पश्चात उन्होंने कथात्मक साहित्य को अपनी अभिव्यक्ति के लिए उचित पाकर लिखना शुरु किया। उनका अनुभव विश्व कहानी और उपन्यास के माध्यम से साकार रुप लेने लगा।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण धीरे–धीरे समय की धूप, धूल और पानी सहते निर्मित होता है। घर से लेकर समाज तक सभी उसे विकसित करते हैं। चित्रा के व्यक्तित्व निर्माण के स्रोत भी अलग–अलग हैं जिनसे गठन हुआ है। चित्रा जी का सामंती परिवार, परिवेश में उन्होंने कई शोषित, पीड़ित, दयनीय व्यक्ति देखे जो सारी व्यथाओं को सहमे हुए से मौन रह कर सहते जाते थे। बचपन के कुछ भयानक दृश्य उनके मानस पर चित्रित हैं–''एक बोरी गेहूँ चुराने के पीछे नीम के पेड से बंधा हुआ भीखू....! सुबह कलेवा के अलावा दोपहर के भोजन की माँग करने पर हंटर खाता हुआ जन पियारे।'' बालिका चित्रा का मन तभी प्रश्नों से अकुलाने लगा था कि नर्दवा (नाली) साफ करने वाली डोमिन को आदरपूर्वक 'डोमिन काकी' पुकारना चाहिए। लेकिन प्यास लगने पर घर से पानी माँग कर पीने पर झन्नाटेदार चाँटा खाना पड़ा था क्योंकि वे शूद्र हैं। प्रश्न यह भी उठता है कि घर के सभी पुरुष यहां तक कि छोटे लड़के भी सामाजिक उत्सव के समय मुंडन छेदन, ब्याह के अवसर पर आयोजित 'पतुरिया' का नृत्य देख सकते हैं लेकिन महिलायें और बच्चियां नहीं देख सकतीं।

घर के मुख्य दरवाज़े से स्त्रियों और लड़कियों का आना जाना मना था। डोली और अरथी के अतिरिक्त महिलाएँ मुख्य द्वार से नहीं निकल सकती। बालिका चित्रा के मुख्य दरवाजे से पाठशाला जाना चाहा था लेकिन बड़े बप्पा की दहाड़ के सहम गयी–प्रश्न फिर कुलबुलाने लगे।

बंबई की विशाल घर (बंगले) में पूरी आधुनिकता के साथ रहते हुए भी सामंती विचार उसी तरह पीछा कर रहे थे। माँ दिन भर घर के कामों में व्यस्त रहती। पति की हर आज्ञा को झेलती, उनके नेवी के मित्रों की फरमाइश पर भोजन पकाती और अनपढ़–जाहिल के विशेषणों से पति द्वारा सम्मानित होती। प्रश्न शूल से उठने लगते–मायके और ससुराल की 'खानदानी परंपरा' में बँधी तेरह वर्ष की आयु में ब्याह कर केवल दहलीज बदल कर आई माँ से पिता कैसी अपेक्षाएँ रखते हैं? और स्वयं उन्होंने माँ को क्या नया दिया? घर के बाहर रहते ठाकुर साहब किसी गरीब की बेटी बहने के लिए आर्थिक मदद कर सकते हैं? किसी की हारी बीमारी में सहायता कर सकते हैं? लेकिन घर में वे वैसे ही कठोर और अनुशासनबद्ध, उनकी अपनी और अपनी ही कहते चले जाने की हुमक।

सवाल तब भी उठ खड़े हुए थे जब चित्रा जी ने ब्राह्मण युवक से प्रेम–विवाह करना चाहा। ब्राह्मण देवता स्वरूप है अतः पूजनीय भी है लेकिन उनसे विवाह संबंध संभव नहीं क्योंकि विजातीय है सम्पन्न नहीं। लेकिन अब निर्णय हो चुका था। दृढ़ सामंती परंपरा के आतंक से मुक्त होने का निर्णय। और वह परंपरा तोड़ने का कार्य तो स्वयं पिता जी ने शुरु किया था– परंपरा के विरुद्ध निहालसिंह के खानदान की बेटियों को उच्च

शिक्षा देकर और जब वे अखबारों में लिखने लगी तो विरोध का स्वर उठा था। लेकिन नरम रुख अपनाया था लिखो मगर परिवार की तरफ उँगली मत उठाना। उस पर नहीं लिखना। लेकिन वे नहीं जानते कि लिखने की पहली शर्त ही होती है निर्भीकता। दबाव मुक्त हो, निर्द्वन्द्व लिखना होता है।

परिवार की इस सामंतीवादी विचारधारा की अग्नि में चित्रा जी सोने के समान तप कर निकलीं। उनकी कहानियों में पुरुष की निरंकुश सत्ता, दोहरी मानसिकता, उसका दंभ, खानदानी परंपरा के नाम पर स्त्री का शोषण और स्त्री की प्रतिक्रिया साकार होने लगी। जो काम इन्द्रधनुषी रंग नहीं कर पाये वही काम काली स्याही करने लगी और जीवन के हज़ारों हजार रंग कागज़ पर उतरने लगे सोमैया कालेज के साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण में लेखन की कोशिशें संवारी गयी और कथाकार चित्रा जी का निर्माण होने लगा। बचपन में चित्रा जी चित्रकारी में रुचि लेती थी। ''वह सोचती थी, कैनवस के किसी सिरे पर वह कूंची की कुदाल और फावड़े से अपनी इमारत की नींव खोदना शुरु करेंगी। जिसकी गहराई में उसकी अपनी इमारत की चिनाई शुरु होंगी, जहां अपने–अपने कैनवस में अपनी दुनिया का संघर्ष जीता हुआ प्रत्येक व्यक्ति अपनी इमारत की नींव खोद रहा होगा।

चित्रकारी सीखने के लिए उन्होंने माँ से चुपचाप पैसे लेकर ट्यूशन लगायी थी। पाठशाला से घर आने में देरी होने लगी। पिता ने जाँच पड़ताल की और ट्यूशन बंद कर दी। चित्रों की प्रदर्शनी का स्वप्न उनके कठोर वाक्य से टूट गया– 'यही सब करेगी? लेकिन इंटर के बाद चित्रा जी ने जे.के. आटर्स में फाइन आर्ट का डिप्लोमा किया। लेकिन चित्रों की प्रदर्शनी का स्वप्न उनके कठोर वाक्य से टूट गया–'यही सब करोगी...?' लेकिन इंटर के बाद चित्रा जी ने जे. जे. आर्टस में फाइन आर्ट का डिप्लोमा किया। लेकिन चित्रों की प्रदर्शनी का स्वप्न फिर भी पूरा नहीं हो पाया उनके जीवन में यथार्थ के कई–कई रंग आ गये थे– अवध जी से मुलाकात, फिर प्रेम और विवाह भी रंगों की दुनियां संघर्ष के दिनों में पीछे छूट गयी। आर्थिक रंगों में कागज–कलम का साथ बुरा नहीं था? यह भी महसूस हुआ कि जिस तरह से वे अभिव्यक्त करना चाहती हैं उसके लिए कागज और कलम ही आवश्यक है और कविताओं के स्थान पर कथात्मक साहित्य से ही अधिक उचित है।''

जब चित्रा जी ने हिन्दी हाईस्कूल, घाटकोपर में पढ़ती थी तभी उन्होंने समाज सेवी संस्था 'जागरण' में जाना शुरु कर दिया था। सोमैया कालेज में आने के बाद तो वे सक्रिय रूप से कार्य करने लगीं। 'जागरण' की घाटकों पर विंग का कार्यक्षेत्र था– भाटुप, हनुमान टेकड़ी और गोदरेज कंपनी के पीछे की ओर पहाड़ियों पर बसी झुग्गी झोंपड़ियां। चालों का जीवन वे देख ही रही थी। क्योंकि अवध जी से विवाह के बाद आर्थिक तंगी के कारण उन्हें मुंबई की चाल का दस बाई दस का कमरा ही मिल सकता था। वहाँ भी वे मुसीबतों में फंसे सामान्य लोगों के बीज रहती थी लेकिन 'जागरण' के साथ जो दुनियां उन्होंने देखी थी उसमें उसने पिता के सारी–सुख सुविधाओं से युक्त घर के छूट जाने का दुःख भुला दिया और टूट चुके सारे रिश्तों को नये रिश्तों के रूप में पा लिया।

'जागरण' महिलाओं की वह सामाजिक संस्था थी जो शोषितों–पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए कार्यरत थी। घर–घर झाड़ू बर्तन करने वाली बाईयां, मज़दूर, भिक्षुक छोटे–छोटे धंधे करने वाले, वेश्या व्यवसाय में संलग्न, चोरी पॉकेटमारी जैसे अलग–अलग धंधों में लिप्त लोगों में जागरण लाने का कार्य 'जागरण' करती थी। उनके बच्चों की शिक्षा–दीक्षा, स्वास्थ्य और घरेलू झगड़ों को भी निपटाने का दायित्व उनका था। ऊपरी तौर पर अपराधी दिखने वाले झुग्गीवासी उतने ही निश्छल थे कि ममता पाते ही सुधरने की कसमें खाने लगते और मुसीबत पड़ने पर किसी के लिए भी अपनी जान जोखिम में डालने से नहीं चूकते।

दत्ता सामंत, पाटील और मशणाल गोरे, जो मुंबई में 'पानी वाली बाई' के नाम से जानी जाती है, के साथ मिलकर उन्होंने इन अति साधारण लोगों के बीच कार्य किया। और वहीं उन्हें मिले एसे अनगिनत पात्र प्रसंग, व्यथा की कथाएँ जो उनकी कहानियों में कहीं मोट्या बनकर विद्रोह पर उतर आते तो कभी छंटनी को बेईमानी बनने के गुर सिखाते, कहीं 'भूख' की 'लक्ष्मी' की बेबसी तो कभी 'केंचुल' की कमलाबाई की व्यथा कह जाती। उनकी कहानियों में झोपड़पट्टी की यातनामय जिंदगी मुखर हुई है तो इसकी वजह उनका स्वतः का देखा हुआ नारकीय जीवन है। चित्रा जी कहती है 'मेरा हाड–मांस का जन्म निहालसिंह के खानदान में जरूर हुआ लेकिन मानसिक जन्म, भूख, बदहाली, तंगी, रोगों में जी रहे इन्हीं लोगों के बीच हुआ।''

पिताजी श्री प्रतापसिंह चाहते थे कि चित्रा जी समाज सेवा के माध्यम से लोगों में अपनी मजबूत छवि बना लें, अपने लिए राजनीतिक पृष्ठभूमि का निर्माण कर लें ताकि नगर पालिका के लिए उन्हें चुनाव में खड़ा किया जा सके। लेकिन राजनीति के इस्तेमाल की विरोधी चित्रा जी पिता जी की इच्छा को मान नहीं दे पायीं।

चित्रा जी पर अलग–अलग व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा। प्रायः लोग और विशेषकर समीक्षक 'प्रभात' को रचना में 'अनुकरण' के रूप में लेते है जबकि सच्चाई यह नहीं है। चित्रा जी जब स्कूली छात्रा थी तब 'ब्लिटस' अखबार पढ़ा करती थी। श्री अब्बास साहब उसमें शोषित और मजदूरों के पक्ष में एक कॉलम 'आजाद कॉलम' शीर्षक से लिखा करते थे, जो उन्हें प्रेरणा देते थे। उन दिनों अधिकांश प्रतियोगिताओं में पुरस्कार स्वरूप अच्छे लेखकों की पुस्तकें प्रदान की जाती थीं। 'म. गाँधी प्रतिष्ठान' की निबन्ध प्रतियोगिता में उन्हें पाँच सौ रुपयों का पुरस्कार मिला था। उस समय यह राशि बहुत बड़ी थी, शिक्षकों ने उन्हें अच्छे लेखकों की पुस्तक सूचि दी थी। उस समय उन्होंने कई भारतीय श्रेष्ठ रचनाकारों कामू, काफ्का, गोर्की, फ्योदोर दोस्तोवस्की को उन्होंने पढ़ा। चित्रा जी कहती है– ''ग्रेटमास्टर्स की कालजयी रचनाओं की भूमिका मेरी रचनाशीलता के संदर्भ में उन गुरुओं के सदृश्य है जो अपने ज्ञान से कक्षा दर कक्षा विद्यार्थी को जीवन पर्यन्त विद्यार्थी बने रहने की अंर्तशक्ति से पूरते हैं। हेमिंग्वे ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया।''

महात्मा गाँधी की आत्मकथा पढ़कर वे उनके विचारों से बहुत प्रभावित हुई। वे उन्हें आदमी के रूप में चमत्कार मानती है। गाँधी जी बहुत ही सहज और सरल भाषा में जीवन का गुरु मंत्र देते हैं कि किसी

के बारे में सोचने से पहले तुम स्वयं अपने विषय में सोचो। अपने चेहरों की तहों को पहचान लोगे, तो पा लोगे, तो औरों को पहचानने समझने में दिक्कत नहीं होगी। चित्रा जी की समाजन्मुखी सोच को डॉ० लोहिया ने अत्यन्त प्रभावित किया। डॉ० लोहिया जी की समाजवादी चिन्तनधारा जो ज़मीन से जुड़ी है वे उन्हें वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान की। डॉ० लोहिया जी भी महात्मा गाँधी जी से काफी हद तक प्रभावित थे। वे डॉ० लोहिया जी के संबंध में कहती है कि देश की समस्याओं की, आम लोगों के दुख–दर्द की उन्हें गहरी जानकारी थी। उनके समाधान भारतीय स्थितियों के अनुकूल थे। अन्य समाजवादियों जैसे मधु लिमये जी, मृणाल गोरे जी से मेरा संपर्क रहा। मशणाल जी को बंबई में पानी वाली बाई के नाम से विख्यात हैं कि साथ मैंने कुछ सामाजिक कार्य भी किये।

चित्रा जी जितनी सफल लेखिका हैं उतनी ही सफल पत्नी, माँ और गृहिणी भी है। अपने संघर्ष के दिनों में उन्होंने स्वतन्त्र रूप से पत्रकारिता की, बीच–बीच में छोटी–मोटी नौकरियाँ भी की लेकिन अपने दायित्वों को निभाते हुए उन्होंने अपने लेखन क्रम भी जारी रखा। अवध जी के साथ विवाह के पश्चात् उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तब उन्होंने पति के साथ मिलकर अनेक अनुवाद के कार्य किये। विज्ञापन एजेंसी 'लिन्तास' में स्वतन्त्र कॉपी लेखन का कार्य किया।

चूंकि अवध जी स्वयं पत्रकार, साहित्यकार एवं संपादक रहे हैं इसलिए पत्नी की प्रतिभा को विकसित करने की सुविधा उन्होंने दी। उनकी रचनाओं के प्रायः वे पहले पाठक होते। उस पर वे अपनी प्रतिक्रिया भी देते। चित्रा जी कहती है कि यदि वे लिख रही होती तो वे कभी भोजन आदि की माँग भी नहीं करते बल्कि खुद ही कुछ बना लेते और उन्हें भी खाने के लिए बुला लेते।

5.3.3 चित्रा मुद्‌गल का साहित्य सृजन

अष्टम दशक की बहुचर्चित रचनात्मक लेखिकाओं में चित्रा जी का उल्लेखनीय स्थान है। आरंभिक कहानी लेखन के दौरान संपादक पति श्री अवधनारायण मुदगल के कारण भी उनकी चर्चा हुई लेकिन उनकी रचनाओं में उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। महिला लेखन की चिप्पी को नकारती वे अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा से अपनी रचनाओं को पैनेपन से प्रस्तुत करती है। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखन किया है। कविता से आरंभ कर कहानी उपन्यास, निबन्ध लेख इंटरव्यू आदि पर लिखा है।

चित्रा जी के लेखन का आरंभ किशोरावस्था में हुआ। स्कूल कॉलेज की कविता कहानी प्रतियोगिताओं में लिखते–लिखते उनका लेखन परिपक्व होता रहा। इस बीच वे पत्रकारिता से भी जुड़ गयी थी। उनका अनुभव विश्व जैसे–जैसे विस्तारित होता गया, उनके लेखन में भी परिपक्वता, गहराई आती गयी। उन्होंने एक ओर यहां समाप्त हो रही मानवीय संवेदना को रेखांकित किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने आधुनिक जीवन की

त्रासदियों को भी व्यक्त किया है। चित्रा जी के अब तक 14 कहानी संग्रह एवं पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने चार कहानी संग्रह का अनुवाद भी किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाल साहित्य रचा है तथा भारतीय व विदेशी कहानियों का अनुवाद भी किया है। प्रखर चेतना की संवाहिका चित्रा जी के पास अनुभवों का विपुल भंडार है। उन्होंने समाज के विभिन्न समुदायों विशेषकर दलितों और शोषितों के बीच बैठकर काम किया है। यही कारण है कि उनकी मान्यता है कि सामाजिक परिवर्तन और विकास की दिशा में आंदोलनों की निर्णायक भूमिका होती है।

समकालीन यथार्थ की बहु पर्तीय लक्षित जटिल विद्रूपताओं के सर्वथा अलक्षित अंतर्सत्यों का संधान वह जिस सूक्ष्म भाषिक संवेदना के साथ अपनी कथा रचनाओं में परत–दर–परत अनेक अर्थ छवियों में अन्वेषित करती हैं, वह चकित कर देने वाला है। उनके कथा संवेग पात्रों के द्वंद्व जनित मनोविज्ञान के अब तक लगभग अव्यक्त रहे आए अंर्ततहों के अतःराग को चरम विन्यास के जिस बिंदु पर पहुंचकर उद्घाटित करते हैं, वह रचना के आद्योपांत बाँधे रखने वाले शिष्ट–वैशिष्ट्य को ही नहीं रेखांकित करता है, बल्कि पाठक की चेतना पर दस्तक देने के गहन सर्जनात्मक लक्ष्य को भी इंगित करता है।

चित्रा मुद्गल के लिए लेखन आत्मरति मात्र नहीं वरन सामाजिक दायित्व और समाज की पारंपरिक स्थितियों पर प्रहार करने का माध्यम है। अपने लेखन का उद्देश्य वे पाठकों को जागरुक करना मानती हैं। क्योंकि उनका मानना है कि जब तक उनकी रचनाएँ पाठकों की चेतना को नहीं झकझोरती तब तक उनका मकसद उनकी भूमिका पूर्ण नहीं होगी। लेखिका साहित्य को एक साधना एक तप मानती हैं। विवाह के पश्चात् बंबई महानगरी उनकी कर्मस्थली बनी। वहाँ के परिवेश और पारिवारिक स्थितियां उनके लेखन का औज़ार बनी। लेखिका यह स्वयं स्वीकार करती है कि ''बंबई के झोपड़पट्टी का जीवन उन्होंने पत्रकार की हैसियत से नहीं स्वयं जी कर भोगकर देखा है और उसको अपनी कहानियों और उपन्यासों में उतार दिया है। एक रचनाकार के रूप में चित्रा जी की मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक चिंताओं को स्वयं अपने शब्दों में कहती है कि एक विकासशील स्वतंत्र राष्ट्र में कानून और व्यवस्था का निरंतर पंगु होते चले जाना चिंतनीय तथ्य है। नागरिक जीवन पूर्णतः जटिल तथा असुरक्षित हो गया है। ...बाजारवाद अब केवल बाजारों में क्रय–विक्रय तक सीमित नहीं रहा, व्यक्तिवादिता और भोगवादिता के चलते लोगों की प्रकृति और प्रवृत्ति बन चुका है। भूमंडलीकरण के चलते हम वैश्विक तो हो रहे, लेकिन अपनी जड़ों से उखड़ने की भयावहता नई पीढ़ी के सामने मुँह बाँधे खड़ी है। चित्रा मुद्गल जी की ट्रेड यूनियन के प्रति विशेष रूप से अभिरुचि रही है। चित्रा मुद्गल जी ने नारी की दयनीय स्थिति पर विचार किया है। अपने समय की विडंबनाओं और कड़ुवे यथार्थ को अपनी रचनाओं के द्वारा जनता तक पहुँचाकर उन्हें अब उन समस्याओं के प्रति जागरुक बनाने की सफल कोशिश की है।

उनके कथा साहित्य में विविधता के रंगों के दर्शन होते हैं। अपने लेखन को महिलापन से बचाते हुए अपने कथा साहित्य में वर्गीय सीमाओं का अतिक्रमण कर निम्न वर्ग के पक्षधर रचनाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। फलस्वरूप उनका साहित्य महानगरीय तथा ग्रामीण अहसासों का सजीव साहित्य बन गया है। निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग की आशा आकांक्षाओं को वहन करने वाले पात्रों की सृष्टि उनकी साहित्यिक विशेषता है। उनका साहित्य न स्त्री केन्द्री है, न पुरुष केन्द्री अपितु मानव केन्द्री है। उनका समस्त कथा साहित्य मानवीय संवेदनाओं, सम्बन्धों, जन चेतना जागृति, महिला सबलीकरण एवं साक्षरता, सामाजिक न्याय अभिजात्य एवं सामंतवादी वर्ग के दमन, शोषण, भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। कथा साहित्य में विषयों, पात्रों समस्याओं की जो विविधता है तथा जो संवेदना व सहानुभूति मिलती है वह प्रशंसनीय है।

चित्रा मुद्‌गल का सृजन साहित्य

उपन्यास साहित्य

1. एक ज़मीन अपनी – 1990, द क्रूसेड ओशन (2002) (एक ज़मीन अपनी का अंग्रेज़ी अनुवाद)
2. आवां – 1999
3. गिलिगडु – 2002
4. पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा – 2016

कहानी साहित्य

1. ज़हर ठहरा हुआ – (1980)
2. लाक्षागृह – (1982)
3. जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं – (1982)
4. अपनी वापसी– (1983)
5. इस हमाम में (1987)
6. ग्यारह लंबी कहानियां – (1987)
7. मामला आगे बढ़ेगा अभी
8. जीनावर (1996)
9. केंचुल – 2001
10. भूख – 2001

11. आदि अनादि (2008)

12. पेंटिंग अकेली है (2014)

बाल उपन्यास

1. माधवी कन्नगी (1993)
2. मनी मैखले (2002)
3. जीवन चिंतामणि (2002)

बाल कथा संकलन

1. जंगल का राज – (1980)
2. देश–विदेश की लोक कथाएँ – (1986)
3. नीति कथाएँ – (1987)
4. सूझ–बूझ

नाटक साहित्य

1. एक प्रश्न
2. पंच परमेश्वर और अन्य नाटक – 2005
3. बूढ़ी काकी और अन्य नाटक – 2005

कविता

चित्रा जी समय–समय पर कई कविताएँ लिख चुकी हैं। उनके लेखन कार्य का आरंभ कविताओं से हुआ है।

लेख

विचार संग्रह – 1988

बयार उनकी मुट्ठी में – 2002

तहखानों के बंद आइनों के अक्स – 1988

5.4 उपलब्धियां

1. चित्रा मुद्गल ने विद्यार्थी जीवन से ही आंदोलनो में हिस्सा लेना शुरु कर दिया था। सामाजिक न्याय की उन्होंने पहली लड़ाई उन 'बाइयों' के अधिकारों के लिए लड़ी, जो मुंबई की झोंपड़पट्टियों में रहकर बड़े घरों में बर्तन माँजने और झाडू पोंछा का काम किया करती थी। उन्होंने हज़ारों महिलाओं को झोंपड़पट्टियों की नारकीय यंत्रणाओं से छुटकारा दिलवाने वाले सामाजिक आंदोलनों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग किया। इतना ही नहीं वे गरीब, पीड़ित तथा शोषित महिलाओं के हितों की रक्षा करने वाली संस्था 'जागरण' की सन् 1965 से 1972 तक सचिव रहीं और उन्होंने उनके उत्थान के लिए निरंतर कार्य किया। 'जागरण' के साथ–साथ वे प्रतिष्ठित और प्रतिबद्ध मज़दूर यूनियन, 'कामगार अघाड़ी' की भी सक्रिय कार्यकर्ता रहीं।

2. सन् 1979 से 1983 तक महिलाओं को स्वावलंबन का पाठ पढ़ाने वाली संस्था 'स्याधार' की भी वे सक्रिय कार्यकर्ता रही।

3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की वूमेन स्टडीज़ यूनिट की कुछ महत्वपूर्ण पुस्तक योजनाओं में जैसे 'दहेज दावानल', बेगम हजरत महल, 'स्त्री समता' आदि में 1986 में 1990 तक बतौर निर्देशक कार्य किया।

4. सन 1978 और 1999 में फिल्म सेंसर बोर्ड की मानद सदस्य रही।

5. सन 1980 में 'आशीर्वाद फिलम्स आवार्ड' में बतौर जूरी आमंत्रित हुईं।

6. 11 सितंबर 1990 में वे 'महात्मा गाँधी प्रतिष्ठान' मॉरीशस द्वारा आयोजित 'रचनाकार से भेंट' कार्यक्रम में सम्मिलित होने मॉरीशस गई।

7. सन् 1995 में आकाशवाणी की सर्वभाषा राष्ट्रीय नाट्य स्पर्धा की जूरी सदस्य।

8. वर्तमान में 'समन्वय', स्त्री शक्ति तथा 'उत्तर प्रदेशीय महिला मंच', 'सूर्या संस्थान', 'समता महिला मंच एवं अभिव्यक्ति' से संबद्ध अनेक अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों से भी संबद्ध।'

9. 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की प्रतिष्ठित फिल्म पत्रिका 'माधुरी' की लगातार तीन वर्षों तक आमुक कथा–लेखिका।

10. 'साप्ताहिक' हिन्दुस्तान, 'सूर्या', 'महाराष्ट्र टाइम्स' (अनूदित) श्री (गुजराती) बाल पत्रिका पराग में 'चिमू' नाम से स्तंभ लेखन। वे 'लिटरेटवर्ल्ड डाट काम एवं भास्कर की भी स्तंभ लेखिका रही हैं।

11. छठे (लंदन), सातवें एवं आठवें न्यूयार्क में संपन्न हुए विश्व हिंदी सम्मेलन की 'सम्मान समिति' एवं श्शैक्षिक समितिय की सदस्य, सक्रिय सदस्य रही हैं।

12. वर्ष 2002 में 49 वे 'राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार' की पूरी सदस्य और इंडियन पैनोरमा 2002 की भी सदस्य होने का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ।

13. वर्ष 2002 से 2003 तक आई.सी.पी.आर. की मौलाना आज़ाद निबंध प्रतियोगिता (सार्क) की पूरी सदस्य रहीं।

14. सन 2003–2008 तक प्रसार भारती ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया की बोर्ड मेंबर।

15. सन् 2000–2002 तक भारत के संस्कृति विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वरिष्ठ फैलोशिप उन्हें प्राप्त हुई।

16. सन् 2005 से 2008 तक की अवधि के लिए नेशनल बुक ऑफ ट्रस्ट की हिंदी सलाहकार समिति की मानद सदस्य।

17. सन् 2005 से 2008 तक के लिए वे अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्ज़ा विभाग की संयुक्त हिंदी सलाहकार समिति की मानद सदस्य रहीं।

18. सन् 2006 से 2009 तक की अवधि के लिए डाक विभाग में हिंदी सलाहकार समिति की सदस्य मनोनीत।

5.5 सम्मान तथा पुरस्कार

1. राष्ट्रीय एकता एवं सदभावना के लिए सन् 1986 का 'प्रजा सम्मान'।
2. वर्ष 1986–87 के लिए कहानी संकलन 'इस हमाम में' को हिंदी अकादमी का 'साहित्यिक कृति' पुरस्कार।
3. वर्ष 1986–87 में ही बाल कथा संकलन 'जंगल का राज' के लिए हिंदी अकादमी का बाल साहित्य पुरस्कार।
4. ग्यारह लंबी कहानियों के संकलन के लिए वर्ष 1987 में बिहार राजभाषा का 'राजा राधिका रमण सिंह 'पुरस्कार'।
5. उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' के लिए ग्रामीण संगठन, मुंबई द्वारा सन् 1994 में 'फणीश्वरनाथ रेणु' साहित्य पुरस्कार।
6. वर्ष 1995 में हिंदी अकादमी की ओर से 'साहित्यकार सम्मान'।

7. बहुचर्चित उपन्यास 'आवा' के लिए सहस्राब्दी का पहला 'इंदु शर्मा' कथा सम्मान (यू.के.)।
8. 'आवा' उपन्यास के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से वर्ष 2000 का 'साहित्यिक कृति सम्मान'।
9. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की ओर से वर्ष 2000 का 'साहित्य भूषण सम्मान'।
10. उपन्यास 'आवां' के लिए मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से वर्ष 2002 का अखिल भारतीय 'वीर सिंह जूदेव' सम्मान।
11. उपन्यास 'आवा' के लिए ही वर्ष 2003 में के.के. बिड़ला का प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान'।
12. उपन्यास आवां के लिए हिमाचल का प्रतिष्ठित 'शिखर सम्मान' (2007 के लिए)
13. उपन्यास 'गिलिगडु' को मध्य प्रदेश का 2005–06 का 'चक्रधर सम्मान'।
14. उपन्यास 'गिलिगडु' को 2005–06 का 'श्रीमती रत्नी देवी गोयनका' सम्मान।

5.6 सारांश

अतः कथाकार चित्रा मुद्गल का कथा–साहित्य का कैनवास वैविध्यपूर्ण है। अपने कर्मक्षेत्र की व्यापकता यानी कि समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों के बीच में व्याप्त कर्ममंडल की वजह से वे व्यापक अनुभव की धनी बन गई है। समकालीन जीवन के कई अनदेखे एवं अनछुए पहलू अनावृत हो उठे हैं। समकालीन जीवन के दबावों एवं तनावपूर्ण स्थितियों को पूरी संजीदगी के साथ उनकी कहानियां पेश करती हैं। एक साधारण कलाकार की दृष्टि समाज के जिन पहलुओं को साधारण समझा उसे विशिष्टता प्रदान करके उन्होंने अपने असाधारणत्व को प्रमाणित किया। यह भी नहीं बल्कि प्रत्येक पात्र की सृष्टि में मनोविज्ञान का जो सहारा उन्होंने लिया है, वह उनके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को द्योतित करता है।

5.7 कठिन शब्द

1. वैविध्य 2. प्रतिबद्ध 3. स्वावलम्बन 4. आत्मरति 5. परिपक्वता 6. दायित्व 7. द्वंद्व 8. विस्तारित 9. शोषित 10. आवभगत

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कथाकार चित्रा मुद्गल के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें।

2. साहित्य सृजन में चित्रा मुद्गल के योगदान पर लेख लिखें।

3. समाज सेविका के रूप में चित्रा मुद्गल की भूमिका स्पष्ट करें।

नाला सोपारा में किन्नर विमर्श

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 किन्नर विमर्श

6.3.1 विमर्श

6.3.2 किन्नर विमर्श

6.3.3 किन्नरों का इतिहास

6.3.4 किन्नर शब्द की उत्पति

6.3.5 किन्नरों का समाज में स्थान

6.4 उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' में किन्नर विमर्श

6.5 उपन्यास का उद्‌देश्य

6.6 सारांश

6.7 कठिन शब्द

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.9 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

- किन्नर जीवन की व्यथा एवं पीड़ा को समझेंगे।
- उस समुदाय के बारे में जानेंगे जो हमेशा हाशिए की ओर धकेल दिया गया।
- प्रस्तुत आलेख में थर्ड जेंडर समुदाय की समस्याओं के प्रति अवगत होंगे।

6.2 प्रस्तावना

चित्रा मुद्गल का उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' तृतीय प्रकृति अथवा थर्ड जेंडर समुदाय की संवेदना को प्रस्तुत करता हुआ नए कलेवर की पत्राचार शैली में रचित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास लेखन के सम्बन्ध में लेखिका लिखती हैं, "लम्बे समय से मेरे मन में पीड़ा थी, एक छटपाहट थी, कि आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है।" यह उपन्यास समाज के इसी अलग–थलग किए जाने वाले समुदाय की पीड़ा एवं व्यथा का चित्रण करता है। यह उपन्यास समाज की तीसरी सत्ता को उपेक्षा और तिरस्कार के अँधेरे से बाहर लाकर उसकी सहज मानवीय पहचान के लिये किये जाने वाले संघर्ष में निहित है और यही दरअसल वह मुकाम है जहां चित्रा मुद्गल को साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में स्वीकार किया गया है।

6.3 किन्नर विमर्श

6.3.1 विमर्श

विमर्श से तात्पर्य है चर्चा–परिचर्चा, संवाद, तर्क–वितर्क आदि। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जब व्यक्ति किसी समूह में किसी विषय पर चिन्तन अथवा चर्चा–परिचर्चा आदि करता है तो उसे विमर्श कहा जाता है या जब कोई व्यक्ति किसी विषय को लेकर अकेले में गहन, चिंतन, मनन करके किसी समूह में जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तियों से तर्क–वितर्क करता है तो उसे विमर्श कहते हैं।

संस्कृत हिन्दी तथा अंग्रेज़ी शब्दकोशों में बहुत से विद्वानों द्वारा विमर्श शब्द को परिभाषित किया है।

डॉ. भोलानाथ के अनुसार विमर्श का अर्थ है ''परामर्श, मशविरा, विचार विमर्श, सोच विचार।'' वृहद हिन्दी शब्दकोश में विमर्श का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है। ''विमर्श यानी समालोचना, परामर्श, परीक्षा, किसी बात पर अच्छी तरह से सोच–विचार करना।''

संस्कृत हिन्दी शब्दकोश में विमर्श को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– "विचार–विनिमय, सोच–विचार परीक्षण चर्चा।" वृहद संस्कृत हिंदी कोश के अनुसार विमर्श–वि+मृर्श+घ के योग के द्वारा बना है। जिसका अर्थ, विचार, विचार विनिमय है।

डॉ० हरदेव बाहरी द्वारा संपादित (English-Hindi Dictionary) इंग्लिश–हिंदी डिक्शनरी में consult (कन्सलट) शब्द को विमर्श का पर्याय मानते हुए उसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है "किसी आदमी या किताब से संपर्क करना। परामर्शदाता के रूप में कार्य करना विचार विनिमय करना।" अंग्रेज़ी में विमर्श को Deliberation consultation कहते हैं। जिसका अर्थ विचार–विवेचन या परामर्श होता है।

अतः दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी विषय के संदर्भ में गंभीरता से चिंतन, चिंतन मनन, सलाह, तर्क–वितर्क और सोच–विचार करना ही विमर्श करना है अथवा विमर्श है।

6.3.2 किन्नर विमर्श

आज का समय विमर्शों का समय है। बहुकेन्द्रीयता का समय है। स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, वृद्ध और आदिवासी समुदाय परिधि को छोड़कर केन्द्र में आ चुके हैं और अपने मूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। किन्नर समुदाय भी हाशियापरक ज़िंदगी को छोड़कर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। यह ऐसा समुदाय है जो समाज के बीचों–बीच उपस्थित है लेकिन उसका कोई अस्तित्व नहीं। रामायण और महाभारत काल से ही समाज में इस समुदाय की उपस्थिति दर्ज है पर 'सभ्य समाज' में तिरस्कार और अपमान का दंश झेलने के लिए विवश है। किन्नर उपहास का पात्र बनते हैं। लेकिन उनका मज़ाक उड़ाने वाले उनकी पीड़ा को नहीं समझते। सारी दुनिया में किन्नर अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करते दिखाई दे रहे हैं। इस दिशा में ब्रिटेन में भी एक ऐतिहासिक घटना घटी। ब्रिटेन के आवासीय स्कूलों के बच्चों ने अपनी पहचान सुनिश्चित करने के लिए मांग की कि उन्हें पुरुष पहचान पर आधारित संबोधन ही अथवा स्त्री पहचान पर 'शी' कहकर न पुकारा जाए अपितु जी कहकर पुकारा जाए।

भारत में 'किन्नरों' की स्थिति यूरोपीय देशों की तुलना में शोचनीय है। यहाँ नाचने, गाने फूहड़ अभिनय करने वाले और बलात पैसे वसूलने वाले के रूप में इनकी छवि स्थापित हो चुकी है। इस ओर समाज का ध्यान नहीं जाता है कि 'थर्ड जेंडर' भी समाज का अभिन्न अंग है। इन्हें भी वह सारे अधिकार चाहिए जो एक स्त्री या पुरुष को मिलते हैं। अधिकारों के क्रम में सबसे पहला बिन्दु है माता–पिता का प्रेम और परिवार में सामाजिक स्वीकृति। यह कितना कठिन होता होगा कि जब आप अपने माता–पिता के बारे में जानते हों, फिर भी आप उनके साथ संबंध न रख सकें और उनके पास जा कर न रह सकें, वह भी मात्र इसलिए कि आप मनुष्य के रूप में प्रकृति की एक अनूठी संरचना हैं। यह अनूठापन ही अभिशाप बन बैठा है और आप विवश खड़े रह जाते हैं।

भारत में मान्यता है कि 'हिजड़ों की दुआएं लगती हैं। जब वे शादी या बच्चे के जन्म पर घरों में नाचते हैं तो 'गुड लक' आता है और 'फर्टीलिटी' भी बढ़ती है 'किन्नर आमतौर पर बेरोज़गार' ही होते हैं इसलिए अपनी ज़रुरतों को पूरा करने के लिए उन्हें भीख माँगने और प्रास्टीट्यूशन का सहारा लेना पड़ता है।

6.3.3 किन्नरों का इतिहास

प्राचीनकाल से ही मनुष्य की प्रकृति पर विद्वानों ने विचार किया है। इसी क्रम में संस्कृति के विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में लिंग के ज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है। प्राचीन भाषाविद् पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' के 'खिल भाग' में लिंगानुशासन प्राप्त होता है जिसमें स्त्री एवं किन्नर अथवा नपुंसक के भेद को स्पष्ट किया गया है–

स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुष स्मृतः।
उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुसंकम।।

अर्थात् स्तन, केश वाली स्त्री तथा रोएं वाला 'पुरुष' कहा जाता है। जिसमें इन दोनों के भेद का अभाव हो, वह नपुसंक अर्थात् हिजड़ा कहलाता है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में समस्त सृष्टि की उत्पत्ति एवं उसके विकास की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है जिसमें स्त्री–पुरुष उत्पत्ति के साथ–साथ इस प्रकृति के मानव अथवा नपुंसक सन्तान की उत्पत्ति के संबंध में भी विभिन्न मिथक एवं अवधारणाएँ मिलती हैं।

किन्नरों की उत्पत्ति के संबंध में एक मिथक यह भी है कि ब्रह्माजी की छाया से किन्नरों की उत्पत्ति हुई है। इसके अतिरिक्त अरिष्टा और कश्यप ऋषि से भी किन्नरों की उत्पत्ति मानी जाती है।

रामायणकाल में किन्नरों की प्रत्यक्ष उपस्थिति के प्रमाण वाल्मीकिकृत रामायण एवं तुलसीदासकृत रामचरित में मिलते हैं। वाल्मीकिकृत रामायण के उत्तरकांड में वर्णित राजा प्रजापति कर्दम के पुत्र इल की कथा के माध्यम से किन्नरों की उत्पत्ति के मिथकीय प्रमाण मिलते हैं। इल तथा उनके सैनिक शिव के वरदान के कारण स्त्री के रूप परिवर्तित हो गए। बाद में शिव ने पुरुषत्व देने से इंकार कर दिया, किन्तु पार्वती ने अनुनय–विनय के पश्चात् एक माह स्त्री एवं एक माह पुरुष के रूप में संपूर्ण जीवन व्यतीत करने का वरदान दिया। बाद में चन्द्रमा के पुत्र बुद्ध ने उन्हें देवयोनि विशेष होने का वर दिया तथा साथ ही श्वेत पर्वत पर निवास करने हेतु आमंत्रित किया।

बौद्ध साहित्य में किन्नर शब्द का प्रयोग 'सुत्त–पिटक' के अंतर्गत विमानवत्थु में भी हुआ है जिसमें लिखा है कि 'चन्द्रभागानदीतीरे अहोसी किन्नरी तदा' जिससे स्पष्ट होता है कि पर्वतीय भाग में चिनाब के तट पर उस समय किन्नर रहा करते थे। वात्स्यायनकृत कामसूत्र में किन्नरों को तृतीय प्रकृति कहा गया है। जिसके नवम् अध्याय में किंपुरुष एवं किंपुरुषी इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत में वृहनल्ला (अर्जुन) का उल्लेख

मिलता है जिसने अपने अज्ञातवास में एक साल का समय बिताते समय किन्नर का रूप धारण करके जीवन बिताया था। साथ ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्री 'कौटिल्य' ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रंथ में भी 'किन्नर' का उल्लेख किया है साथ ही ऐतिहासिक वर्णनों के आधार पर हिन्दु और मुस्लिम इन दोनों शासकों के द्वारा किन्नर वर्ग को खासतौर पर अन्तःपुर और वहां की रानियों की रखवाली के लिए किन्नरों की नियुक्ति की थी।

6.3.4 किन्नर शब्द की उत्पत्ति

हिन्दी साहित्य में किन्नर यह शब्द 'कि' और 'न' ऐसे दो शब्दों के सहयोग से निर्माण हुआ है। इसका तात्पर्य 'हिमाचल प्रदेश के किन्नर' जनजाति से नहीं है। लेकिन इस वर्ग का ऐसे वर्ग से संबंध है जो पूर्ण रूप से न स्त्री है और न ही पुरुष है। ऐसे वर्ग के लोगों को जनसामान्य की भाषा में हिजड़ा कहते हैं। जब 'हिजड़ा' यह शब्द हमारे ख्याल में आता है ताकि हमारे आंखों के सामने एक खास तौर पर इस तरह हमारे मन में भाव भंगिमा, आचार, विचार, व्यवहार, रहन–सहन, चाल–ढाल, वेशभूषा, निखरा हुआ चेहरा, अलग प्रकार से किया हुआ साज श्रृंगार आदि मनुष्य की प्रतिभा सामने आ जाती है। ऐसे ही हिजड़ों को सामान्य भाषा में 'किन्नर' कहा जाता है। ऐसे किन्नर को बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा ऐसे चार वर्गों में विभक्त किया जाता है।

6.3.5 किन्नरों का समाज में स्थान

समाज में स्त्री–पुरुष इन दोनों लिंगों के साथ–साथ और एक लिंग देखने को मिलता है। समाज ऐसे लिंग वाले को मामू, छक्का, किन्नर, थर्ड जेंडर आदि नामों से पहचाना जाता है। ऐसे समाज पर आज कुछ न कुछ लेखनी उठाये जाने लगी है। यह लेखनी कोई–न कोई समाज पढ़ता है। फिर भी इस किन्नरों के जीवन में होने वाला संघर्ष कम नहीं हुआ। यह किन्नर आज अभी हमें सड़कों, बस–स्टॉप, ट्रेन आदि स्थानों पर भीख मांगते हुए दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं यह 'किन्नर' अपनी टोली बनाकर नाच गाने के रूप में घर–घर जाकर, बाज़ार में होने वाले हर चीज़ को माँगकर अपना पेट भरते हैं। यह 'किन्नर जाति' के लोग अपनी अलिंगी जिस्म को लेकर जीवन के अंतिम तक तिरस्कृत अपमानित घृणित दर–दर की ठोकरें खाकर संघर्षमय जीवन यापन करते हैं।

किन्नर वर्ग के जीवन की व्यथा 'मैं पायल' उपन्यास में लिखे हुए गीत के द्वारा अभिव्यक्त की है।

> अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
> बता ईश्वर तुझे ये क्या सुझाया
> किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ
> न तो मंजिल हूँ न मैं रास्ता हूँ

किन्नरों द्वारा दिया गया आशीष पारिवारिक और अनुवांशिक समृद्धि लाता है किन्तु समाज का कोई भी व्यक्ति उनके जैसे जीवन की स्वप्न में भी आकांक्षा नहीं करता है।

स्त्री और पुरुष दो के संयोग से सृष्टि का संचालन होता है सभी जानते हैं। प्रकृति कहो या ईश्वर ने ये दो रूप बनाए लेकिन वही इनके मध्य एक छाया का भी निर्माण किया जो सृष्टि के आरंभ से अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। एक इंसान के लिए ज़रूरी है उसकी पहचान का होना। बिना पहचान के वो अधूरा है। लकिन जो शारीरिक रूप से भी अधूरा हो उसके लिए समस्या और भयंकर हो जाती है तब उसे अनेक नामों या संबोधनों से नवाज़ा तो जाता है लेकिन समाज का अंग स्वीकारा नहीं जाता। समाज से बहिष्कृत को किस नज़र से देखा जाता है या उनके साथ व्यवहार किया जाता है ये किसी से छुपा नहीं। हेय दृष्टि से देखना उनकी किस्मत बन जाती है उन्हें हमारे समाज ने कई नाम दिए हैं जैसे हिजड़ा, किन्नर, छक्का, अरावनी आदि। जो प्रजनन नहीं कर सकते और माता–पिता बनने के सुख से वंचित रहते हैं उन्हें समाज में हीनता की नज़रों से देखा जाता है। कुछ शारीरिक अक्षमताओं के कारण ये किन्नर आज घर, परिवार तथा समाज से दरकिनार कर दिए जाते हैं। ये अपना जीवन–यापन नाच गा, बधाई मांग कर तथा देह व्यापार के सहारे करते हैं। किन्नर समाज का हिस्सा होते हुए भी नहीं है। उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है केवल इस कारण कि उनमें कोई शारीरिक विकार है जिस पर उनका अपना कोई वश नहीं है। इस समाज का दुःख, उसकी पीड़ा को समझने वाला कोई नहीं बल्कि वह उपहास एवं मज़ाक का विषय बना हुआ है।

इस समुदाय के लिए रामायण, महाभारत, पौराणिक आख्यानों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वात्सयायन के कामसूत्र एवं उसके बाद मुगल इतिहास में बहुत सी घटनाएँ विद्यमान हैं। निर्मला भुराडिया इस समुदाय की सामाजिक हैसियत एवं राजनैतिक भूमिका के संदर्भ में लिखती हैं– ''राजाओं के राज में हिजड़े बहादुर योद्धाओं के दल में शामिल किए जाते थे। स्त्री एवं पुरुष कुछ भी बन सकने की उनकी क्षमता उन्हें राजकीय जासूसों के पद भी दिलवाती थी। दरबार हो या मंदिर वे अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन करके वाहवाही भी लूट सकते थे। इनाम इकराम भी कमाते थे। बादशाहों के हरम में सुरक्षा कर्मी होते थे। औरतों के साथ सेक्स न कर सकना उनकी कमी नहीं खूबी थी। किसी हिजड़े को यह बघनखा राजा की बेटी को एक शैतान मंत्री के पंजे से बचाने के लिए मिला था, इनाम स्वरूप। हिजड़ों का तिरस्कार तो अंग्रेज़ों के ज़माने से शुरु हुआ।'

किन्नरों की दुनिया एक विशेष दुनिया है जो मनुष्य के रूप में जन्मते ही अभिशप्त जीवन जीने को शापित हैं। माता–पिता के संयोग से गर्भावस्था की अस्वस्थता के कारण किन्नरों के साथ होने वाला सामाजिक भेदभाव उनमें हीन भावना व मानसिक शैथिल्य का आभास करवाता है। जिससे वे उग्र व्यवहार करने लगते हैं। किन्नर समाज की झोली में असीम पीड़ा है, जिससे हमारा समाज कोसों दूर है। पर वास्तविकता यह है कि समाज के हाशिए पर जीवन यापित कर रहा किन्नर वर्ग समाज से अछूता नहीं है। शादी जन्मोत्सव पर

किन्नरों की मौजूदगी को शुभ मानकर दान–दक्षिणा देना मुख्यधारा के समाज का षड्यंत्र है ताकि किन्नर समुदाय पारंपरिक पेशे से बाहर न निकल सके व आरक्षित क्षेत्रों में सहभागिता की दावेदारी न कर सके। 'वसुधैव कुटुक्बकम् का छल–छद्म करने वाले व अव्यावहारिकता के कारण बीमार सभ्य समाज की नींव ही विषमता रूपी विचार पर आश्रित है इसीलिए समाज में किन्नर समुदाय की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। समाज व सरकार द्वारा किन्नरों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। सरकार ने बरसों तक इन्हें नागरिक अधिकार से वंचित रखा। भारत सरकार द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार देश में किन्नरों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। सरकार नवें बरसों तक इन्हें नागरिक अधिकार से वंचित रखा। भारत सरकार द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार देश में किन्नरों की संख्या चार लाख नब्बे हज़ार के लगभग है। आधुनिक समय में किन्नर समाज आर्थिक सामाजिक स्थिति के कारण भीख मांगने तथा वेश्यावृत्ति करने के लिए अभिशप्त है। जिस्म–फरोशी की दलदल में गिर जाने से एड्स पीड़ितों की संख्या बढ़ रही है। बाज़ार, सड़क, ट्रेनों में भारी भरकम आवाज़, तालियां बजाते, अभद्र भाषा का प्रयोग करते किन्नरों से हर व्यक्ति पीछा छुड़ाना चाहता है, कोई भी उनके दुःख दर्द को सुनना, समझना, महसूस करना नहीं चाहता। यह हम भी नहीं जानते कि इनकी शारीरिक संरचना क्या है। इस समुदाय के क्या नियम हैं; इनकी आजीविका के साधन क्या हैं, इनकी बिरादरी का क्या ताना–बाना है, इनके जीवन का दर्द, इनकी मृत्यु के बाद होने वाली रस्मों से झलकता है। राज्य सभा चैनल के लिए बनाए गए वृतचित्र में 'किन्नर लोक का सच' में इस समुदाय की अनु कहती है कि किसी को स्वास्थ्यगत समस्या होने पर, डॉक्टर के पास जाते हैं तो डॉक्टर हमें छूता नहीं है। हमारे देश में बाल रोग, स्त्री रोग, नाक कान गला रोग विशेषज्ञ तैयार नहीं कर पाया। दरअसल यह तबका समाज सरकार और नीति नियंताओं की सोच परिधि में नहीं आता। राजनीति के धरातल पर भी इनका प्रतिशत नगण्य है। संसद में तृतीय लिंग के किसी व्यक्ति ने अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करवाई। 15 अप्रैल, 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने समाज से किन्नरों की दयनीय स्थिति को समझने की अपील की थी। इस अपील से किन्नरों का ज्ञान हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि जब तक समाज इनको नहीं अपनाएगा तब तक कोई भी कानून, कोई भी सरकार इनको मुख्यधारा में लाने में सफल नहीं हो सकती। संसद में पेश हुए विधेयक के जरिए किन्नरों को भेदभाव से बचाने और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए केन्द्रीय कैबिनेट ने 'ट्रांसजेंडर पर्सन' बिल 2016 को मंजूरी दे दी।

किन्नर समुदाय की प्राचीनतम उपस्थिति दक्षिण अफ्रीका व वर्तमान में अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया यूरोप आदि देशों में मिलती है। किन्नर वर्ग की परिस्थिति व अधिकारों के लिए 2006 में इंडोनेशिया में विश्व सम्मेलन के अन्तर्गत लिंगीय पहचान को मान्यता देते हुए सिद्धांतों को स्वीकार किया गया। इसके बाद अनेक देशों में कानून बनाये गए जिनमें ब्रिटेन का समानता अधिनियम 2010, ऑस्ट्रेलिया का लिंग विभेद अधिनियम 1984 व संशोधन अधिनियम 2013, यूरोपियन यूनियन कानून बनाये गए। 26 देशों में लागू हेट क्राइम प्रिवेंशन एक्ट 2009 अमेरिका आदि प्रमुख हैं। इस विधेयक के जरिए सरकार किन्नरों के सामाजिक, आर्थिक और

शैक्षणिक सशक्तिकरण के लिए तंत्र विकसित करेगी। तृतीय लिंगी समाज हमारे शिक्षा दर्शन, शिक्षा विमर्श से एक सिरे से गायब है। अस्पष्ट लैंगिक पहचान वाला यह वर्ग संसार के सभी समाजों में कहीं कम तो कहीं ज्यादा के अनुपात में शोषण और अवहेलना का शिकार बनता आया है। विडंबना तो यह कि हाशिये पर पड़े हिजड़ा समुदाय के लिए न तो आंदोलन होते हैं न साहित्य में विमर्श। राजनीति समाज के साथ–साथ साहित्य का भी यह दायित्व बनता है कि वह हाशिये पर जीवन यापित करने वाले किन्नर विमर्श गढ़े, समाज के उपेक्षित व्यवहार ने इन्हें अपंग बना दिया है।

वैश्विक परिदृश्य में देखें तो 'थर्ड जेंडर' समुदाय ने अपने मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने हेतु लंबी लड़ाई लड़ी है। अमेरिका, इंग्लैंड, ज़र्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, अर्जेन्तिना, पाकिस्तान, नेपाल आदि देशों में यह वर्ग तीसरे लिंग के रूप में पहचान प्राप्त कर चुका है। दरअसल इन देशों में इस समुदाय को सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक संवेदनात्मक संबल मिला। भारत में इस सन्दर्भ में अभी काफी अभाव है। आखिर साहित्यिक परिदृश्य में थर्ड जेंडर विमर्श की आवश्यकता क्यों पड़ी? संभवतः इसी अभाव में थर्ड जेंडर विमर्श को जन्म दिया। थर्ड जेंडर समुदाय के प्रति तमाम तरह के पूर्वाग्रह देखने को मिलते हैं। कहना होगा कि ये पूर्वाग्रह निरंतर कानूनी उपेक्षा के चलते ही अपना विकराल रूप ले चुके थे। अपनी अस्मिता के लिए जूझ रहे समुदायों के लिए कानूनी सुरक्षा बेहद महत्वपूर्ण है। कानूनी सुरक्षा मिलने के बाद पीड़ित समुदाय का मनोविज्ञान पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के कथन में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से पूर्व और बाद की मनोस्थिति को देखा जा सकता है। ''मैं जब फैसले से पूर्व कोर्ट में दाखिल हो रही थी, तब मुझे बहुत सारी नज़रें घूर रही थीं, पर जब मैं इस फैसले के साथ बाहर आई तो मुझे उन घूरती हुई नज़रों की रत्ती भर चिन्ता नहीं थी, क्योंकि अब मेरे हाथ में तमाम अधिकार हैं जिनका हमें बहुत लंबे समय से इन्तज़ार था।'' जाहिर है कि कानून के दखल से ये पूर्वाग्रह दूर किए जा सकते हैं। थर्ड जेंडर समुदाय को कानूनी संबल देकर सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। सुप्रीम कोर्ट की ऐतिहासिक पहल पर त्रिपाठी कहती है ''किन्नरों को अब तक सिर्फ नाचने–गाने वाला समझा जाता था। समाज ने कभी उन्हें बराबरी का दर्जा नहीं दिया। लेकिन दस साल की कानूनी लड़ाई के बाद हमें जीत मिली है और सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों को एक नयी पहचान दी।'' भले ही सन् 2014 में थर्ड जेंडर समुदाय को लेकर ऐतिहासिक फैसला आया हो लेकिन इसकी शुरुआत पहले ही हो चुकी थी। विजेन्द्र प्रताप सिंह इस पर टिप्पणी करते हैं कि ''हिजड़ों की अस्मिता की लड़ाई में सबसे सकारात्मक मोड़ तब आया जब नवंबर, 2009 से चुनाव आयोग ने इन्हें 'अन्य' की श्रेणी में शामिल कर मतदाता पहचान पत्र दे रहा है और इसी के फलस्वरूप 28341 तृतीय लिंगी व्यक्ति मतदाता के रूप में पंजीकृत है।'' किन्नर समुदाय से जुड़े मनुष्य की उपेक्षा का आलम यह है कि एक सामान्य मनुष्य में भी यदि कुछ कमी हो तो उसे हिजड़ा कहकर संबोधित किया जाता है। डॉ० शरद सिंह के अनुसार 'आज भी मुख्यधारा के समाज में किसी व्यक्ति के साहस या उसकी वीरता, पौरुष अथवा मर्दानगी पर सवाल लगाना होता है तो उसे हिजड़ा

कहकर दुत्कारा जाता है, यानी मुख्य यौनधारा के बहुसंख्यक पुल्लिंगी और स्त्रीलिंगी लोगों के लिए हिजड़ा शब्द एक भद्दी गाली की तरह है।" किन्नरों को न तो हम अपने पास आने देते हैं और न हम इनके पास जाने की ही कोशिश करते हैं। यही कारण है इनके संसार और हमारी दुनिया के बीच एक अबोलापन बना रहता है। शादी–ब्याह बच्चे के जन्म पर इनका हमारे घरों में आना एक रस्म अदायगी भर ही होता है।

क्या आपने किन्नरों को किसी मॉल, बड़ी सजी धजी दुकानों स्टोर में शॉपिंग करते देखा है, क्या आपने इन्हें मल्टी प्लेक्स सिनेमाघरों में फिल्मों का लुत्फ उठाते पाया है यदि आपके पास कोई किन्नर बैठकर फिल्म देख रहा हो तो आपकी पहली प्रतिक्रिया क्या होगी? उन्हें हमने अपने आम जीवन, सार्वजनिक स्थानों, सांस्कृतिक उत्सवों आदि में छिनगाकर रखा है। सोच–विचार कर ही हमने एक दूरी बनाई है। वे भी खुलकर हमारे बीच नहीं आ पाते। हमारे सार्वजनिक उत्सवों, पर्वों त्योहारों में यदि आते भी हैं तो वे एक याचक की भूमिका में आते हैं। सहभागी की हैसियत से नहीं। शिक्षा और पाठ्यपुस्तकीय दुनिया कायदे से अपने समाज को समझने, प्रगति में सहभागी होने, अपने परिवेश के साथ तादात्म्य स्थापित करने और बेहतर जीवन की कला हासिल करने में मनुष्य की मदद करती है। शिक्षा तो 'सा विद्या या विमुक्तये' होती है। समाज के विकास और मानवीय प्रगति के इतिहास को समझने में शिक्षा की अहम भूमिका रही है। हमारे समाज के इतिहास को समझने में शिक्षा की अहम भूमिका रही है। दरपेश है कि हम अपने समाज के विभिन्न हिस्से तृतीय लिंगी समाज के प्रति अपनी रुचि जिज्ञासा भय जैसे भावदशाओं से बाहर निकलकर उनकी दुनिया से परिचित हों और प्रयास करें कि उन्हें किस प्रकार से समाज की मुख्यधारा से जोड़ पायें। अफसोस की बात है कि इस काम में हमारी शिक्षा, शिक्षा नीतियां, आयोग आदि मौन साध लेते हैं। परन्तु लोकतंत्र के चारों स्तंभों में अब तृतीय लिंगी समाज के प्रति संवेदनशीलता, जागरुकता पैदा करने की कोशिश की जा रही है। स्कूली पाठ्यपुस्तकों की बात की जाए तो हिन्दी, समाज विज्ञान, विज्ञान आदि में तृतीय लिंगी समाज की चर्चा से बचा गया है। न तो हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों, रिमझिम, बहार बसंत आदि तृतीय लिंगी समाज को समझने, जानकारी हासिल करने के लिए कोई पाठ राह दिखाती हैं और न ही इस समाज के प्रति जागरुकता पैदा करने में ही बच्चों, शिक्षकों की मदद करती हैं। अतः हमारी स्कूली दुनिया भी प्रकारांतर से तृतीय लिंगी समाज को अहमियत ही नहीं देती है। कोठारी आयोग 1964–66, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, पुनरीक्षा समिति 1990, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 1978, 200, 2005 आदि की तृतीय लिंगी समाज की चिन्ता से बेखबर नज़र आते हैं। यह वर्ग न तो शिक्षा हासिल करने पर अपना दावा पेश कर सकता है और न ही स्कूली तंत्र अपने बच्चों व स्वयं को जोड़ सकता है। वह तो देशीय समितियों की स्थिति है। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य 2000 और 2016 सतत् विकास लक्ष्य 2030 में भी यह वर्ग कहीं स्थान नहीं पाता। इन लक्ष्यों में इस वर्ग के विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि के बारे में एक पंक्ति के वायदे की भी घोषणा नहीं मिलती। यह इस ओर इशारा करता है कि न केवल भारत, बल्कि वैश्विक स्तर पर नीति निर्माता, विकास की गति को लय को तय करने वाले भी इस वर्ग को मनुष्य की श्रेणी में नहीं गिनते है। यदि इन्हें मनुष्य

माना जाता तो शिक्षा, स्वास्थ्य विकास सुरक्षा आदि की चिन्ता और इन्तजाम की ओर सरकार और नागर समाज पहलकदमी करते दिखाई देते।

किन्नर समुदाय कई हिस्सों में विभक्त है। विजेंद्र प्रताप सिंह इसके वर्गीकरण पर लिखते हैं 'भारत में हिजड़ों के सात घराने मान जाते हैं, मुंबई, पुणे और हादराबाद जैसे अधिक संख्या वाले शहरों में इनके केन्द्र स्थापित हैं। हिजड़ों की चार शाखाएँ हैं– बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। ''बुचरा पैदाइशी हिजड़े हैं, नीलिमा स्वयं बने, मनसा स्वच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े हैं।'' (विजेंद्र प्रताप सिंह, जनकृति, अगस्त, 2016) हिजड़े के रूप में झूठ या स्वांग रचने वालो को अबुआ कहा जाता है। जिन्हें जबरन हिजड़े के रूप में बनाया जाता है, उन्हें छिबरा कहा जाता है।

भारत में मध्यकाल में उन्हें उत्तम सेवक माना गया लेकिन समय के परिवर्तन के साथ किन्नर समुदाय मानो सामाजिक षड्यंत्र का शिकार हो गए। उन्हें हाशिए पर पहुँचा दिया गया। उनकी आशीषें या दुआएँ तो महत्वपूर्ण रहीं; लेकिन उनका अस्तित्व संकुचित घेरे में बांध दिया गया। ताली बजा–बजा कर नाचने वाले और दुआएं देने वाले विचित्र मनुष्यों के रूप में उन्हें देखा जाने लगा। समाज के इस रवैये से सकुचाकर वे भी अपने आप में सिमटने लगे। योरोप और अमेरिका का कोई भी तृतीय लिंग तालियां बजाते हुए घर–घर नहीं भटकता है। वह फैशन इंडस्ट्री में अपनी महत्वपूर्ण जगह बना चुका है।

भारत में तृतीय लिंगियों यानि थर्ड जेंडर का संघर्ष अभी आरंभ ही हुआ। यह समुदाय केवल मुख्यधारा से बाहर ही नहीं किया गया बल्कि समाज में इनके प्रति डर और अफवाहों को भी लोगों में भरा गया ताकि लोग इनके प्रति नकारात्मक रवैया अपनाए और यह समाज मुख्यधारा में आने का प्रयास न कर सके। साथ ही अलगाव की ज़िंदगी जीने को मज़बूर बना रहे। किन्नर समुदाय के संदर्भ में एक अलग संस्कृति दृष्टिगोचर होती है। इस समाज के संस्कार, रीति–रिवाज़ व त्यौहार, भाषा, खानपान, वेशभूषा आदि मुख्यधारा से पृथक हैं। अन्य अस्मितामूलक विमर्शों यथा दलित, स्त्री, आदिवासी आदि के संदर्भ में भी समाज की मानसिकता शुरुआत में लगभग विकृत ही थी। अस्मिता को लेकर यहाँ सवाल सामाजिक हैसियत का है। इन्सान के रूप में खुद को साबित करने का भी। सामाजिक तिरस्कार और मूलभूत मानवीय अधिकारों से वंचना थर्ड जेंडर समुदाय के शोषण का एक बड़ा कारण है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी इस संदर्भ में उल्लेख करती है, ''हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती, उनके पास प्रतिभा नहीं होती, बल नहीं होता, वे राजनीति में नहीं जा सकते, फौज में नहीं जा सकते? इस बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया? आपने कलाकारों, प्रतिभावानों को मज़बूर कर दिया पचास–पचास रुपए में देह बेचने को ताली बजाने को।

किन्नरों और उनकी समस्याओं पर अब पर्याप्त मात्रा में साहित्य लिखा जा रहा है। हिन्दी में उपन्यास, कहानी, कविता, आलोचना, नाटक आदि विधाओं के अंतर्गत थर्ड जेंडर का चित्रण मिलता।

उपन्यास की दृष्टि से देखें तो 'यमदीप' (नीरजा माधव), तीसरी ताली (प्रदीप सौरभ), किन्नर कथा (महेन्द्र भीष्म), गुलाम मंडी (निर्मला) जैसे उपन्यास खासे चर्चित हुए हैं।

थर्ड जेंडर के जीवन और उसकी समस्याओं को आधार बनाकर भारतीय सिनेमा में अनेक फिल्में बनीं हैं।

कुल मिलाकर किन्नरों के जीवन और उससे जुड़ी समस्याओं पर विमर्श की शुरुआत हो चुकी है। भविष्य में जब इस समाज द्वारा मानवीय अधिकारों की लड़ाई व्यापक स्तर पर लड़ी जाएगी तो समाज भी उसी के अनुसार उन्हें स्वीकार करेगा। सबसे अहम सवाल किन्नर समुदाय के प्रति समाज की नकारात्मक सोच को बदलने का है। आवश्यकता इस बात की है कि हम सामाजिक धरातल पर हिजड़ा समाज के साथ–साथ पुरुष एवं स्त्री समाज के बीच यह जागृति फैलाएं कि आलोच्य समाज भी मानवों के समाज का हिस्सा है जिसे किसी भी अन्य मानव प्रजाति से संबंधित समुदाय के लोगों की तरह सम्मान से जीने का अधिकार है।

महात्मा गाँधी जी ने अछूतों के लिए एक सम्मान सूचक शब्द 'हरिजन' का उपयोग किया था, इसी सम्मान की चाशनी में लपेटकर इन्हें 'किन्नर' कहा जाने लगा है। इधर संवैधानिक एवं सामाजिक संस्थानों द्वारा इनके अधिकारों का सवाल भी उठा है जिससे वे पूरी तरह वंचित रखे जाकर समाज में वंचना एवं धिक्कार के पात्र बने रहे हैं। पिछले दिनों एक ओर यदि न्यायालय प्रक्रिया के तहत, ऐसी खबरें आई हैं, कि इसी वर्ग के एक सदस्य की नियुक्ति पश्चिम बंगाल में लड़कियों के एक कॉलेज में प्रिंसिपल के रूप में हुई हैं तो दूसरी ओर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी और गौरी सावंत जैसे नाम उभर कर सामने आए हैं जो अपने गोपन और रहस्यमय मंडित अनुभवों को आत्मकथा एवं संस्मरणों के रूप में व्यक्त करने या गैर सरकारी संस्थाओं का संचालन करके इस दिशा में उल्लेखनीय काम किया है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा मैं 'लक्ष्मी' को इस दृष्टि से व्यापक स्वीकृति मिली है। उसे पढ़कर शिखर तक पहुंचने की उसकी गाथा से बहुत कुछ जाना जा सकता है। राजनीति में दलित नेतृत्व की तरह ये नेतृत्व भी अपने वर्ग और समाज की अधिक चिंता करते नहीं देखा जाता। समाज में इस वर्ग की जो स्थिति है उसमें पहला आतंक और दुरदुराहट की भावना ही मुख्य है।

पारिवारिक उत्सवों एवं पर्वों पर इनकी मन मांगी राशि के लिए जिद, हंगामा और अजब से आतंक से इन्हें जोड़कर देखा जाता है। तब–तब इनके उपद्रव और मनमानी के विरुद्ध पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ता है। शास्त्रों में उनकी उपस्थिति भले ही शुभ सगुन के रूप में उल्लिखित हो, समाज में उनके प्रति सामान्य मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का घोर अभाव है। यह किन्नर समुदाय जो किसी न किसी रूप में अपने ही शरीर का एक अंग कटने के बाद काफी कुछ विकलांगता की स्थिति में झेलते–भुगतते हैं। जो शिकायत सामान्यतः समाज से की जाती है, अमानवीय दृष्टि, उपेक्षा और संवेदनहीनता की, उसकी शुरुआत भी कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में, घर से होती है। समाज में व्यक्तियों या परिवार के किसी सदस्य के द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित होने पर, अपने

पौरुष की कायरता के प्रति अथवा जीवन निर्वाह के कार्यों में निरंतर असफलता प्राप्त होने पर उत्पन्न होने वाला आक्रोश तथा वैमनस्य इंसान के अन्तःकरण की कुंठा कहा जाता है। घृणा तथा कुंठा में अंतर है। घृणा अपनी भावनाओं पर प्रहार होने के कारण अन्य इंसानों के प्रति उत्पन्न होती है परन्तु कुंठा अपने प्रति उत्पन्न होने वाला विकार है जो व्यक्ति के मानसिक तंत्र की अनिवार्य क्रिया इच्छा शक्ति की निर्बलता तथा आत्मविश्वास की क्षीणता के कारण उत्पन्न होती है। उसी प्रकार किन्नर उसी कुंठा का शिकार हैं। इस समाज को यद्यपि संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं... हाशिए का एक समाज, समाज में अपनी पहचान को लेकर लड़ रहा है। वस्तुतः हमारा आस्थावादी समाज जड़ मानसिकता का शिकार है, वह थर्ड जेंडर को समाज में उचित सम्मान नहीं देता। समाज का यह वर्ग (किन्नर) अपनी जन्मजात विकृतियों या दुर्घटनावश उत्पन्न शारीरिक विकृतियों के कारण स्वयं को समाज में स्थापित करना चाहता है पर हम उन्हें प्रताड़ित कर समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। वस्तुतः यह हमारी संकुचित सोच का ही परिणाम है। हम उन्हें व उनके परिवार को समाज में तिरस्कृत करते हैं। स्त्री एवं पुरुष जो आपसी सहयोग से सृजन कर मानव प्रजाति को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं, को ही समाज मान्यता देता है। जबकि किन्नर समाज में अपदस्थ किए जाते हैं। समाज में प्रतिष्ठा न पाने के कारण पहचान को लेकर समाज में अत्यधिक प्रताड़ित होने के कारण तथा इच्छा शक्ति की निर्बलता व आत्मविश्वास की क्षीणता के कारण अपने प्रति उत्पन्न होने वाली हीनता का विकास ही कुंठा है। इस वर्ग विशेष को त्रिशंकु की स्थिति में खड़ा कर दिया है। संकुचित मानसिकता के चलते समाज और पारिवारिक देहरियों से निष्कासित यह वर्ग समाज के आमोद–प्रमोद का हिस्सा मात्र बना दिया जाता है। महिला और पुरुष के हारमोन्स के उतार चढ़ाव और यौनिक अक्षमता क्या अन्य शारीरिक विकलांगता की ही तरह नहीं है, फिर आखिर क्यों इस वर्ग के पैदा होने, साथ रहने भर से परिवार की प्रतिष्ठा दांव पर लग जाती है। क्या केवल संज्ञा बदल देने से पीड़ा की तासीर गरम या ठंडी हो जाती है। इस तीसरे वर्ग को क्यों आखिर एक अलग सभ्यता और संस्कृति की आचार संहिता में जीना पड़ता है। क्या शिक्षा पद या ओहदा उसके प्रति समाज की हिकारत और चुभती नज़र को कम कर सकता है? थर्ड जेंडर जिसे अन्य संज्ञाओं से तिरस्कृत अर्थ ध्वनियों में पुकारा जाता है, क्या उनका सांझा प्रयासों से मुख्यधारा में प्रवेश पाना संभव है। कितनी पीड़ा, व्याकुलता और ठहाके इनकी पीठ पर चुभते रहते हैं। क्या वे एक आम जीवन गुज़ार सकते हैं।

दशकों पूर्व से दलित विमर्श, स्त्री–विमर्श और आदिवासी विमर्श से आच्छादित हिंदी साहित्य का फलक आज तीसरी सत्ता पर कलम उठाने के लिए बाध्य हो गया। बाध्यता इस बात की कही जा सकती है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, यह सामाजिकता से इतर हो ही नहीं सकता। उसकी सदैव से सामाजिक सम्बद्धताएं और सरोकार रहे हैं। समय–समय पर होने वाले आंदोलनों को साहित्य ने मजबूत ज़मीन प्रदान की है। प्रेमचंद ने साहित्य को यूं ही नहीं जलती हुई मशाल कहा है। मशाल शब्द जितना ही रोशनी से संबंधित है उससे कहीं ज्यादा आग के अर्थ में द्योतक है। वहीं आग और रोशनी आज किन्नर विमर्श

के रूप में सामने है। यह साहित्य की ही संबद्धता है जो इधर कुछेक वर्षों में इस विषय पर गंभीर चर्चाएं हुयी हैं और गोष्ठियों का आयोजन भी करवाया है। यह एक ऐसा विषय है या दबी ज़ुबान में इस पर व्यंग्यात्मक लहजे में चर्चा करते हुए देखे जा सकते हैं।

6.4 उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' में किन्नर विमर्श

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' थर्ड जेंडर समुदाय की समस्याओं को अत्यन्त मानवीय दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। उपन्यास के लेखन को स्पष्ट करती हुई लेखिका कहती हैं, "इस उपन्यास में मैंने आज़ाद भारत में किन्नरों की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। आज़ादी के पहले और बाद हमने अपनी तमाम रूढ़ियों जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, दलितों और अस्पृश्यों से भेदभाव आदि को तोड़ा है लेकिन किन्नरों की जिंदगी में कोई भी परिवर्तन नहीं आया। अब हाल ही में हमारे राजनेताओं ने उन्हें अलग श्रेणी देने की कवायद शुरू की है जबकि समाज में उनकी स्थिति आज भी अछूतों से बदतर है। समाज ने उनकी पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें किसी तीज–त्योहार में शामिल नहीं किया जाता है। इसके चलते आज भी हालत यह है कि अगर मेट्रो में एक किन्नर चढ़ जाए तो सब उसे अजीब निगाहों से देखते हैं। सड़क पर भीख माँगते हुए मिल जाए तो हिकारत की नजर से देखकर जल्दी से पैसा–वैसा देकर चलता करते हैं। जब मैं मुंबई के नाला सोपारा में रहती थी तब मेरा सामना एक ऐसे युवक से हुआ जिसे किन्नर होने की वजह से जबरिया घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी युवक के विद्रोह की कहानी है।"

लिंग दोष की समस्या – चित्रा मुद्गल 'नाला सोपारा' में गहरी मानवीय अपील के साथ उपस्थित हैं। समाज में जैसे बलात्कृता स्त्री अपने किसी अपराध के बिना दोहरा दण्ड भुगतती है, अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार और समाज की उपेक्षा का दण्ड, लगभग वही स्थिति समाज में लिंग से ग्रस्त बच्चों की होती है। उपन्यास में लेखिका इस समस्या को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में मानवीय सहानुभूति के साथ देखे जाने की अपील करती है। उपन्यास का पात्र विनोद पुरुष लक्षण और प्रवृति वाला हिजड़ा होता है। उसमें कोई स्त्रैण प्रवृत्ति नहीं है, इसलिए वह साथी किन्नरों द्वारा लाख जबर्दस्ती करने और प्रताड़ित होने के बावजूद उनके अनुकूल नहीं हो पाता और श्रम करके जीने के लिए अनवरत संघर्ष करता है। वह अपनी बात को लिखता है, "सबने मुझसे मुँह मोड़ लिया। सपनों ने मुझसे मुँह नहीं फेरा। आज भी वे मेरे पास बेरोक–टोक चले आते हैं।" विनोद का सपना होता है कि वह भी सामान्य मनुष्य की भाँति गरिमापूर्ण जीवन जिये। वह बार–बार प्रश्न उठाता है कि जननांग विकलांगता को इतना बड़ा दोष क्यों मान लिया गया है? सिर्फ इसी कारण उसे घर–परिवार, रिश्ते–नाते सबसे कट कर नरक की ज़िंदगी क्यों भोगनी पड़ रही है? वह कहता है, "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान

लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसे ही हैं जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं।"

लिंग–पूजक समाज लिंग विहीनों को कैसे बर्दाशत करेगा? इस बड़े प्रश्न को लेखिका ने समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए भी प्रवृत किया है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज से बहिष्कृत क्यों होना पड़े कि वह लिंगदोषी है? सिर्फ इसी कारण उसकी उम्मीदों, सपनों, आकांक्षाओं, भावनाओं का गला क्यों घोंट दिया जाता है? वस्तुतः उसके मूल में समाज का यौन–केंद्रित होना है उपन्यास इस बात को प्रबलता से रेखांकित करता है कि हमारा समाज जब तक यौन केंद्रित बना रहेगा, तब तक यह समस्या बनी रहेगी। यौन केंद्रित समाज से मुक्ति ही इस उपन्यास का स्वप्न हैं और इसका केंद्रीय कथ्य भी ।

"बावला, तुझे यह समझाया था और छोकरों से तू अलग है। यह मान लेने में ही तेरी भलाई है, न किसी से बराबरी कर, न अपनी इस कमी की उनसे कोई चर्चा। समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते। पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा। वक्त के साथ नजरिया बदलेगा।" माँ द्वारा बिन्नी को दिए गए इस संदेश से जहाँ समाज की रूढ़िवादिता का आभास मिलता है वहीं लैंगिक अक्षमता से त्रस्त पुत्र को माँ की सांत्वना जीवन के प्रति आशान्वित करती है क्योंकि ये तो सत्य है ही, वक्त बदलता है पर कितनी तेज या धीरे, उसकी गति पर निर्भर करता है।

विस्थापन की दशा – उपन्यास का नायक बिन्नी एक मेधावी छात्र है। माँ–बाप के द्वारा बिन्नी को अनेक विशेषज्ञ डाक्टरों को दिखाया गया परन्तु कहीं भी लाभ नहीं हुआ अपितु शारीरिक विकृति के साथ ही बिन्नी बड़ा होता चला गया। हिजड़ों की नायिका चंपाबाई पूरी जानकारी के साथ घर पर हंगामा मचाती है और बिन्नी पर अपने समुदाय का हक जताती है। माँ उस दिन तो जैसे–तैसे उसे टाल देती है, लेकिन वह कुछ दिन बाद फिर आते और उस बच्चे की जाँच करके अपने साथ ले जाने की धमकी भी दे जाती है। स्वाभाविक ही परिवार के लिए बड़ा सदमा था। वह कितना ही असामान्य और शारीरिक न्यूनता का शिकार हो, तेरह–चौदह साल तक उसी परिवार का अंग बनकर पाला पोसा है।

भविष्य की चिंता में, विचार विमर्श के बीच, यह विचार भी एक बार सामने आता है कि उसकी जगह छोटे भाई को दिखाकर जैसे भी हो इस संकट से उबरने की कोशिश की जाए। लेकिन सामाजिक संजाल ऐसा नहीं होता है तो इतने समय बाद चंपाबाई कैसे उस परिवार तक पहुँचती है। अपनी धमकी को सही साबित करते हुए चंपाबाई जल्दी ही लौटती है और बस्ती–मुहल्ले में हंगामे से बचने के लिए बिन्नी

अंततः उसे सौंप दिया जाता है। माँ–बाप को संबोधित अपने पत्रों की श्रृंखला वाले किसी पत्र में, जिसके सहारे ही उपन्यास का कथानक बुना गया है। माँ की इस विवशता को वह कसाई के हाथ सौंपी गई बछिया की तरह बताकर छिटकन और अलगाव की आन्तिरक पीड़ा को ही व्यक्त करता है।

चंपाबाई को सौंपे जाते समय विनोद–बिन्नी की उम्र चौदह साल की थी। एक तरह से उसका दोहरा विस्थापन था जितना ही सामाजिक, सांस्कृतिक उतना ही भावनात्मक और परिवेशगत। यहाँ कैसे भी धार्मिक आचार शास्त्र की जगह बिरादरी के अपने आचार शास्त्र पर अधिक बल होता है। उसके रोज़ नहाने की आदत को यहाँ उपहास की दृष्टि से देखा जाता है। इसके लिए संगी–साथी उसका मज़ाक उड़ाते हैं। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग को लेकर भी तब–जब प्रताड़ित किया जाता है। जबकि वह पुरुष के रूप में अपनी पहचान कायम रखना चाहता है। 'सारी प्रताड़ना के बावजूद वह उनकी बात स्वीकार नहीं करता और अंत तक अपनी ज़िद पर डटा रहता है। उनके लात, घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी सम्बन्ध को न बख़्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साडियाँ लपेट कर लिपिस्टिक लगा कानों में बूंदे लटकाने को।"

उसका यह विस्थापन उसके साथ ही परिवार के लिए भी मानसिक–भावनात्मक पीड़ा से अधिक क्षोभ और फजीहत का सबब था। आस–पड़ोस के लोग ही नहीं स्कूल और संबन्धियों के लिए बाकायदा एक कहानी गढ़ी जाती है। स्कूल में यह सूचना दी जाती है कि जूनागढ़ में वह सड़क–दुर्घटना का शिकार हो गया। इसी तरह मामा को बताया जाता है कि उत्तराखण्ड में यात्रा के दौरान किसी संकरे मोड़ पर यह दुर्घटना घटी। यह भी कहा गया कि स्कूल की ओर से पिकनिक के दौरान कुछ अन्य साथियों के साथ वह प्रपात क्या नदी में बह गया और उसका शव तक नहीं मिला। आस–पड़ोस से बचने के लिए परिवर वाले यह निश्चय करते हैं कि कालवादेवी वाला पुराना निजी मकान बेचकर कहीं और रहा जाये। एक समृद्ध और सम्मानित बस्ती से नाले जैसे घृणित माहौल में पहुँचना ही विस्थापन है उससे अधिक विस्थापन का दंश बिन्नी भोगता है यहाँ विनोद और बिन्नी दोनों रूपों से अधिक उसे बिमली के रूप में एक नई पहचान पर खास ज़ोर दिया जाता है। इसे न मानने पर जब–तब उसे शारीरिक रूप से प्रताड़ित भी किया जाता है। इस मानसिक आघात से विनोद की माँ और पिता चुप्पी साध लेते हैं। एक गहन और रहस्यमयी चुप्पी मानो उनका सुरक्षा कवच हो।

विस्थापन हर व्यक्ति के लिए दुखदाई होता है। हिजड़ों के तो जीवन का सत्य भी होता परिवार से विस्थापन और जन्म भर उनकी याद में तड़पना। बिन्नी तो एक भी दिन अपने परिवार और माँ को विस्मृत नहीं कर पाता है, "ते तू ही बता, तुझे पत्र लिखते हुए उस आदत से कैसे उबरूँ? लिखते हुए तू सामने आकर बैठ जाती है। मुझे लगने लगता है कि मैं तुझसे वह सब कुछ जान लूँ, जिसे जानने के अधिकारी से मैं अपदस्थ कर दिया गया हूँ और तुझे, उस सबसे करा दूँ जिसे तुझे जनवाए बगैर मैं रह ही नहीं सकता।"

अपने परिवार के साथ गुजारा हर पल, हर तीज, त्यौहार आदि घर से विस्थापित किन्नर को पल–पल परिवार की ओर खींचती है परन्तु वह मजबूर हो मन मसोस कर रह जाता है। उपन्यास में तो लेखिका ने पत्र के माध्यम से भावनाओं का प्रकटीकरण करवा दिया है, परन्तु यह भी सत्य है कि अधिकांश किन्नर तो अनपढ़ होते हैं वे किस प्रकार प्रकट करते होंगे अपनी भावनाओं को। अंदर ही अंदर कितना रोते होंगे जब उन्हें अपने घर में परिवार के द्वारा मनाए गए पहले और आखिरी जन्म दिन की याद आती होगी, "20 जून को मेरा जन्मदिन था, बा। घर में सबका जन्मदिन तू धूमधाम से मनाया करती है। मेरा जन्मदिन मनाया था तूने, बा? केसर की खीर बनाई थी, साथ में खांडवी। तू हंस रही है न! हूँ न अब भी मै नादान! जबकि इतना बड़ा हो गया हूँ। इस नरक में रहकर असली उम्र से दोगुना। ... और अंत में कैसे लिखूं कि पप्पा को कहना मैं उन्हें खूब–खूब याद करता हूँ। उनके पास होता तो पढ़ाई से लौटकर उनकी किराने की दुकान पर बैठ उनका हाथ बंटाता, जिस काम से मोटा भाई को घृणा है।"

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था के कारण अपने ही घर परिवार से बेदखल कर दिए गए इस वर्ग की अपनी अलग वेदना है। "प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से। समाज का पहला घात यहीं से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।" परिवार और समाज द्वारा तो उन्हें त्याग दिया जाता है किन्तु भावात्मक स्तर पर कभी अपने परिवार से अलग नहीं हो पाते हैं।

परिवार की अवहेलना का दंश – प्रस्तुत उपन्यास में पिता व्यथित होकर बिन्नी के साथ असंतुलित व्यवहार अपनाता है। माँ मजबूर है और भाई क्रूर। स्पष्ट है कि भारतीय परिवार भी अपने थर्ड जेण्डर सदस्य के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण रखते हैं; जिसका चित्रण लेखिका विनोद के बड़े भाई सिद्धार्थ के माध्यम से करती है। बालक बिन्नी को हिजड़ों के हाथों सौंपने में उसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। बिन्नी एक किन्नर है और सिद्धार्थ पूर्ण पुरुष। वह बिन्नी को सामाजिक अपयश, बदनामी के कारण घर में रखे जाने के पक्ष में नहीं है और न ही उसे परिवार से जोड़े रखना चाहता है। उनकी मंशा अपने छोटे भाई से पीछा छुड़ाने की है। किसी तरह उसे घर–परिवार से दूर कर दिया जाए। उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है, "बाथरूम से नहाकर निकले मोटा भाई अपने कमरे में घुसते हुए मेरी ओर पलटे थे – चौदह वर्ष बाद अचानक जिन्न से हिजड़े यहाँ प्रकट हो सकते हैं तो होस्टल में नहीं प्रकट हो सकते। कोई गारंटी है इसकी? बात फैल गई तो पूरे खानदान पर दाग लग जाएगा। अपने दीकरे के बिना मैं प्राण दे दूँगी" कहने पर मोटा भाई अपनी माँ पर बिगड़ते हुए कहते हैं, "अपनी कोख से एक ही औलाद पैदा की है बा तूने? हमें कहीं से पड़ा उठाकर लाई है जो तू .....।"

लैंगिक रूप से अपरिपूर्ण बच्चों के प्रति माता–पिता का व्यवहार भी असंतुलित होता है। प्रस्तुत उपन्यास में एक प्रसंग आता है जब पिता का ब्लड प्रेशर नापना होता है। पिता को बड़े पुत्र पर भरोसा होता है परन्तु बिन्नी पर नहीं क्योंकि वह अंदर से उसे अपूर्ण मानते हैं, "मोटा भाई ने मुझे ज़िम्मेदारी सौंपी थी कि पप्पा को सुबह शाम दवा अब तुझे खिलानी होगी तो मैं कितना खुश हुआ था लेकिन पप्पा मुझ पर विश्वास ही नहीं करते थे। मेरे ब्लड़प्रेशर नापकर लिख लेने के बावजूद वे मोटा भाई को अक्सर गुहार लगा बैठते, जरा मेरा ब्लडप्रेशर तो आकर ले लो, सिद्धार्थ। देखो, बिन्नी ने ठीक लिया है कि नहीं। नीचे का कितना है।" यही नहीं बिन्नी को किन्नर समुदाय को सौंपने के बावजूद मोटा भाई सिद्धार्थ अपनी गर्भवती पत्नी की सोनोग्राफी करवाते समय बार–बार डाक्टर से यही सवाल करता है कि कहीं उसके गर्भ में पलने वाली संतान में लिंग दोष तो नहीं है। अगर ऐसा है तो वह बच्चे को नष्ट करवा देगा पर एक लिंग दोषी बच्चे का पिता नहीं बनेगा। उसके डर के मारे विनोद की माँ विनोद का फोन नहीं उठाती थी। सिद्धार्थ माँ को उनके कमरे में टंगे विनोद की तस्वीर को भी हटाने पर मजबूर करता है क्योंकि वह अपने लिंग दोष युक्त भाई की कोई स्मृति इस घर में नहीं रखना चाहता जिसका बुरा प्रभाव उसकी गर्भवती पत्नी पर पड़े। माँ के सामने ही वह बिन्नी को 'काली परछाई' के रूप में सम्बोधित करता है।

यहाँ यह कहना अनिवार्य होगा जहाँ यह समुदाय अपने परिवारजनों की अवहेलना सहन करती है वहीं किन्नर सन्तान अपने माता–पिता से उतना ही स्नेह और लगाव रखती है जितना कि अन्य परन्तु उसका स्नेह और माता–पिता के लिए कर्तव्य निर्वहन की भावना दिल में ही दफन होकर रह जाती है। वह हमेशा अपने माता–पिता से स्वयं को जोड़कर देखता है, "बहुत कुछ नहीं जानती है मासूम। तीन बरस की थी, तब से वह सरदार तुलसीबाई के साथ है, उनकी अंधभक्त। अपने मां–बाप की याद नहीं उसे। नहीं जानती कि वह कहाँ पैदा हुई, कहाँ की है। एक सुबह शीशे के सामने खड़ी होकर कुछ असंबद्ध सी बातें कर रही थी। मैं उसके पीछे आ खड़ा हुआ था अचंभित। शायद उसे आभास हो गया था। कोई उसके पीछे आ खड़ा हुआ था। उसने अपनी ठुड्डी ऊपर उठाई थी। शीशे में अब उसकी उठी हुई ठुड्डी और तना हुआ गला दिख रहा था। अगले ही पल उसने चेहरे को नीचे कर लिया था और ऑखों से अपने चेहरे को घूर रही थी। उसकी आंखें अपने नयन–नक्श टटोल रही थीं। जानती हूँ, मैं अपनी माँ और बाबू जी को। देखा है मैंने उन्हें खुद को आईने में देखते हुए। देखो, देखो न। गौरी हूँ कि नहीं। एकदम अपनी माँ जैसी माँ खूब गोरी रही होगी। आंबा हल्दी की कच्ची गाँठ जैसी – केशरधुली गोराई। हाथ नयन नक्श थोड़ा कम तीखे हैं लेकिन नाक सुतवां है। माथा संकरा। इसलिए मैं बाल ऊपर की ओर काढ़ती हूँ। बाबू जी के चलते माथा संकरा हो गया होने दा।" इतना सब होने के बाद भी बिन्नी की चिंता अपने परिवार के प्रति बनी रहती है। वह अपनी माँ से पत्र में पापा के ब्लड प्रेशर के बारे में पूछता रहता है। वह उनसे यह भी पूछता है कि हमारा नया फ्लैट कौन से माले पर है इसलिए नहीं क्योंकि उसे घर का पता चाहिए बल्कि,

"इसलिए जानना चाहता हूँ कि तुझे और पापा को सीढ़ियाँ तो नहीं चढ़नी पड़ती। कालबा देवी वाले घर की तरह लिफ्ट है न बिल्डिंग में। लिफ्ट न हो तो लिफ्ट वाला घर ले ले। पप्पा को पेसमेकर लगा है न? मोबाइल फोन इस्तेमाल करना भी ऐसे में मना है, लेकर तो नहीं दिया उनको।" जब उसे सूचना प्राप्त होती है कि बड़ा भाई और भाभी परिवार से अलग होकर रहने लगे हैं तो वह पुनः अपनी माँ से प्रार्थना करता है कि उसे प्रतिदिन सुबह शाम मिनट भर के लिए फोन करने की अनुमति दे दें। जिससे कि मैं तुम्हारा और पिता का कुशल क्षेम जान सकूँ जिससे कि मुझे प्रत्येक सुबह पता लग सके कि, "पापा पिछली रात अपने बड़े दीकरा जो उनके परिवार के नयी पीढ़ी की विरासत सौंप जाने में असमर्थ है सही दावा कर सकता है कि उसकी झोली में मात्र उनकी चिंता है और उन चिंताओं के प्रति वह पूरी तरह से ईमानदार है।" माँ की सरवाइकल स्पान्डलाइटिस की भी उसे फिक्र रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार की अवहेलना के बावजूद ऐसे बच्चे के मन में अपने परिवार के प्रति मोह समाप्त नहीं होता, उसका मन कुंठाग्रस्त रहता है कि वह अपने माता–पिता की सेवा न कर सका।

नकारात्मक प्रवृत्ति – यह उपन्यास हिजड़ों को भी मनुष्य मानने और उनके प्रति सहज मानवीय संवेदना रखने का संदेश देता है। लेखिका इस समुदाय की नकारात्मक प्रवृत्ति, मानसिकता और कुप्रथाओं का भी चित्रण करती है। बिन्नी हिजड़ों की दुर्गति के लिए स्वयं हिजड़ों को जिम्मेदार बताने का साहस करता है क्योंकि हिजड़ा बिरादरी मुख्यधारा द्वारा हिजड़ों पर थोपे गये हिजड़ागिरी के लक्षण से स्वयं को मुक्त करने के लिए प्रायः हाथ पैर नहीं मारती। बधाई और भीख के अपमानजनक जुए को उतार फेंकने का प्रयास अगर कोई इक्का–दुक्का हिजड़ा करता भी है तो हिजड़ों के गुरू और सरदार ही उसके दुश्मन बन जाते हैं। वे अपनी गद्दी के हिजड़ों को अपने पैरों पर खड़े ही नहीं होने देते। उपन्यास में हिजड़ा विनोद जब कंप्यूटर क्लास में दाखिला लेता है तो सरदार तुलसीबाई को सहज ही बर्दाश्त नहीं होता कि उनका कोई चेला उनकी बादशाहत से नज़र फेरे लेकिन विनोद के सिर पर स्थानीय विधायक का हाथ होने से सरदार खुल कर आपत्ति व्यक्त नहीं कर सका। हिजड़ों की एकता के नाम पर हिजड़ा बच्चों को उनके माँ–बाप से दूर कर हिजड़ा समाज में रहने को बाध्य करना और उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरन हिजड़ागिरी में उतारना विनोद को नागवार है। वह इस समुदाय द्वारा अपनी संख्या बल में इजाफे के पीछे उनके अंदर गहराई तक समाये हुए असुरक्षाबोध को रेखांकित करते हुए अपनी बा से कहता है कि, "यह भीतर के खोखले और डरे हुए लोगों की जमाते हैं। ये चाहते हैं, जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है, उसी रूप में ही सही, उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो।" सरदार तुलसीबाई के हिजड़ा डेरे पर रहना विनोद को नरकतुल्य लगता है किन्तु वह असहाय था क्योंकि सरदार की ज़ोर जबर्दस्ती के कारण वह डेरा छोड़कर अन्यत्र जा भी नहीं सकता था। एक बार सरदार के ठिकाने से भाग निकलने पर सरदार उसे खोजकर न सिर्फ वापिस ले आया था अपितु बेरहमी

से उसकी पिटाई भी की थी। अपनी संख्या बढ़ाने के लिए एक सामान्य बच्चे का बलात् खतना करके उसकी ज़िंदगी बर्बाद कर देने वाले हिजड़ा गुरूओं और सरदारों को बख़्शा नहीं जा सकता। इस पर विनोद उर्फ बिन्नी मूक दर्शक बने रहने पर अफसोस प्रकट करता है क्योंकि जब खतने की आड़ में सरदार द्वारा की गई ज्यादती से एक लड़का मर गया था तब वह सरदार का विरोध करने के लिए साहस नहीं जुटा पाया था। वह दिल से चाहता है कि अपने घर–परिवार और समाज के हाथों झेले गये अपने बहिष्कार और अपने जीवन में भोगे गये जलालत के नर्क से उसकी हिजड़ा बिरादरी सबक ले। वह अपनी बिरादरी को समझाने का प्रयास भी करता है कि लिंगदोषी बच्चों को उनके माँ–बाप से अलगाना बंद होना चाहिए।

अपराधीकरण – यह समुदाय समाज से मिलने वाली उपेक्षा, सम्मानजनक रोज़गार अवसरों के अभाव और पथभ्रष्ट हिजड़ा गुरूओं के कारण अपराध की काली दुनिया में भी प्रायः डूबे देखे जाते हैं, "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिक किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरूओं की नहीं ऊपर से विकल्पहीनता की कुंठा ने उन्हें आंधी का तिनका बना दिया।" हिजड़ा सरदार तुलसी बाई के अपराधियों से संपर्क हैं। उसके डेरे पर सुपारी की दलाली खाने वाला बल्लभगढ़ का कासिम दादा आता है। सरदार पत्ते से चिलम तक का नशा भी करता है और नशीली चीजों की खरीद–फरोख्त में उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी किया जाता है। कुछ हिजड़े देह व्यापार में भी लिप्त पाये जाते हैं। तुलसी बाई के ठिकाने पर रहने वाली सायरा ऐसी ही किन्नर है। वैसे देखा जाए कि हिजड़े अपने जैसों को समाज में कहीं भी पाने पर अपने साथ मिला लेते हैं और मरते दम तक साथ रखते हैं। प्रत्येक को अपनी रोटी का जुगाड़ स्वयं करना पड़ता है। जो एक बार इनके चंगुल में फंस गया वह अलग नहीं हो सकता है वे भागना चाहे तो भाग भी नहीं सकता और यह समुदाय उसे भागने भी नहीं देते चाहे इसके लिए उस पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार ही क्यों न करना पड़े। प्रस्तुत उपन्यास में भी बिन्नी भागना चाहता है पर ऐसा हो ही नहीं पाता है, "कहीं और भाग सकता नहीं। एक बार भागा था, बा। पड़ोस के बेकरी वाले हामिद मियाँ के आश्वासन पर। सोचा था, दिल्ली से अलीगढ़ दूर है। नहीं ढूँढ पाएंगे लेकिन गलतफहमी में था।

एक दिन सुबह पाया, बेकरी का शटर उठाया ही कि दिल्ली के सरदार तितलीबाई को प्रेत सा सामने खड़ा पाया। देशी कट्टा सीने पर तना था। हामिद मियाँ ने गिड़गिड़ाते हुए हाथ उठा दिए थे। उस रोज ठिकाने पर पहुँचते ही सरदार ने जिस बेरहमी से मुझे मारा था, बा। खोपड़ी में चार टाँके आए थे। निचले जबड़े के दो दाँत हिल गये थे। सफदरगंज के दाँतों के विभाग में उन दाँतों को तार से कसा गया था।" परन्तु विनोद संभ्रांत परिवार से आने के कारण और शिक्षित होने के कारण वह अपराध से दूर रहता है और दूसरे किन्नरों को भी पढ़ लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो इस जीवन के नर्क से मुक्ति का संदेश देता है।

दमित होती भावनात्मक इच्छाएँ – इस समुदाय की अछूती दुनिया से अनजान एक सामान्य पाठक को भी यह उपन्यास विश्वास दिलाता है कि यह भी आम इंसान की तरह ही दिल रखते हैं। वह चाहे संतान को जन्म देने में सक्षम न हों लेकिन उसके मन में भी किसी को प्यार करने, किसी का प्यार चाहने की हिलोरें उठती हैं। अपने पुराने कालबा देवी वाले घर के तीसरे माले पर रहने वाली ज्योत्सना को लेकर किशोर बिन्नी के मन में कुछ हलचल होने लगती थी। यद्यपि घर से निकालकर हिजड़ों को सौंप दिये जाने के बाद वह हिज़ड़ों के बीच युवा होता है किंतु ज्योत्सना तब भी अपनी बा को लिखी गई बिन्नी की चिट्ठियों में आती रहती थी। वैसे अब बिमली बना दिया गया बिन्नी स्वीकारता है कि उस किशोर वय में उसे समझ ही कहाँ थी कि वह ज्योत्सना के काबिल नहीं है। लेकिन अपनी तमाम जननांग अक्षमता के बावजूद विनोद को ज्योत्सना को लेकर सच्चा प्रेम था, उसें कहीं कोई कुंठा न थी। वह माँ को लिखी चिठ्ठी में स्वीकारता है, "मुझे लगता है बा, मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरूर करता। सब कुछ बना देता उसे। कह देता, तू मुझसे फेरे भर ले ले। अपनी इच्छाएँ जीने के लिए तू स्वतन्त्र है। बच्चा हम गोद ले लेंगे। गोद नहीं लेना चाहोगी तो जिससे मर्जी हो बच्चा पैदा कर ले। खुशी–खुशी मैं उसे अपना नाम दूँगा। वे सारे सुख दूँगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है।

शिक्षा की समस्या – चित्रा जी की यह मान्यता सराहनीय है कि वे किसी भी कुरीति की तोड़ शिक्षा के आलोक के माध्यम से मानती है। इसलिए के थर्ड जेण्डर की मुक्ति का मार्ग शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में शामिल होने में मानती है। उपन्यास में अन्य समस्याओं के अतिरिक्त शिक्षा की समस्या का वर्णन भी लेखिका करती है। विनोद किन्नर समुदाय के बीच रहकर सामान्य मनुष्यों के जैसे पहचाने जाने पर बल देता है। लेखिका उपन्यास में सीधे तौर पर स्पष्ट करती है कि किन्नर भी आम इंसान की तरह ही प्यार का, पारिवारिक रिश्तों का हकदार है। बिन्नी के किन्नर होने से उसके मां–बाप ने बिन्नी से स्कूल जाने, अपने हमउम्र के दोस्तों के साथ खेलने, अपने सपने सच करने के अधिकार छीन लिये। किन्तु बिन्नी के अंदर की तड़प दिखती है कि किन्नर बच्चा भी सामान्य बच्चे की तरह स्कूल जाना चाहता है, विकसित होना चाहता है। जब समाज के भय से बिन्नी के स्कूल छूटने की अनहोनी की काली परछाइयों को परे धकेल वह शक्ति भर चीख पड़ा था, "पप्पा, मैं घर में बैठकर नहीं पढूंगा। सबके साथ पढूंगा। अपनी कक्षा में बैठकर। मुझे स्कूल जाना है। मैं अपना ध्यान रखूंगा। अपनी हिफाजत खुद करूँगा। कब तक मैं अपने सहपाठियों से टेलीफोन पर होमवर्क नोट करता रहूँगा, पापा ... मुझे छुट्टी नहीं करनी। मेरी पढ़ाई बर्बाद हो रही है। पिछड़ जाऊँगा मैं अपनी कक्षा में। पिछड़ना नहीं चाहता मैं। मैं बोर्ड में टॉप करना चाहता हू ...।" परन्तु बिन्नी की पढ़ाई छूट जाती है। पढ़ाई–लिखाई से लेकर खेलकूद तक हर चीज़ में अव्वल आने वाला बिन्नी घर और समाज द्वारा अपने सपनों की हत्या चुपचाप देखते रहता है।

कानूनी अधिकार एवं आरक्षण – भारत में सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नर समुदाय को कानूनी मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें कुछ सुविधाएँ देने के निर्देश दिए थे, यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या हम मान लें कि समाज और सत्ता अब तीसरी आवाज को सुनने के लिए तैयार है? संभवतः अभी नहीं क्योंकि यह भारत में प्रचलित अन्य समस्याओं एवं विद्रूपताओं की ओर भी देखने के लिए विवश है, जैसे जातिवाद, दलित समस्या, स्त्री समस्या तथा आदिवासी समस्या इत्यादि। इन सभी पक्षों को कानूनी मान्यता मिले काफी समय हो चुका है परन्तु सत्य यह है कि अभी भी इनका जीवन कष्टमय है। ऐसे में जिस किन्नर समुदाय को इंसान नहीं माना जाता है उसके प्रति समाज कानूनी दबाव के बाद भी कितना सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएगा? यह भी अपने आप में विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध में लेखिका कहती है, "सुप्रीम कोर्ट कुछ सुविधाएँ मुहैया कराने का निर्देश दे सकता है, लेकिन इनके प्रति नजरिया बदलने की बात भी है। क्या आप उनके माथे से कलंक का टीका मिटा सकते हैं? उसकी जड़ें कहाँ हैं, आपको परिवार तक जाना होगा। मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि परिवार के अंदर समाज कैसे आ जाता है कि एक विकलांग बच्चे को खुद से अलग कर दिया गया। हमें घरों को, माँ–बाप को कठघरे में लेने की जरूरत है। उन्हें समझाया जाए कि वे जननांगीय विकलांगता की शिकार औलाद को फेंके नहीं।" सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नरों के लिए आरक्षण दिए जाने की बात कही गई इस पर विनोद कहता है कि "हमें आरक्षण की जरूरत नहीं है। सरकार को चाहिए कि वह किन्नरों के लिए आरक्षण के बजाय माँ–बाप को दंडित करने का प्रावधान करे। अगर भ्रूण के लिंग परीक्षण करने पर सजा का प्रावधान कर सकते हैं तो ऐसे माँ–बाप को क्यों नहीं दंडित किया जाना चाहिए जो अपने किन्नर बच्चों को कहीं छोड़ आते हैं या फिर किन्नरों को कहीं दे देते हैं?" किन्नरों के लिए आरक्षण के बजाय ऐसे बच्चों को फेंकने वालों, दूसरे को सौंप देने वाले माँ–बाप को सजा देने का नियम बनना चाहिए। मनुष्य को मनुष्य की तरह देखना चाहिए। स्पष्ट है कि अगर संविधान इन्हें मौलिक अधिकारों के साथ सामान्य जीवन का अधिकार देगा, तो यह केवल वोट बैंक नहीं रहेंगे बल्कि एक सामान्य मनुष्य की गरिमा के साथ जीवन यापन कर सकेंगे। उपन्यास में लेखिका ने उनकी स्थिति के लिए उन्हें भी दोषी ठहराया है क्योंकि जिस अभिशप्त जीवन को वे स्वयं झेलते हैं, आने वाली पीढ़ी के लिए भी उसी विस्थापन, उपेक्षा, अपमान की पृष्ठभूमि तैयार कर देते हैं। जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें कूड़ें में नहीं फैंकेंगे। ट्रांसजेंडर के खाँचे में नहीं धकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देंगी?

राजनीति का कुत्सित रूप – उपन्यास के अन्त में एक समाचार छपता है कि मीठी नदी में एक किन्नर की फूली हुई लाश बरामद होती है। जिसे आपसी रंजिश का मामला माना जाता है। इस हत्या में 'अंडरवर्ल्ड' की भूमिका की बात कही जा रही है। लाश की पहचान और हत्या के कारण अस्पष्ट दिखाए

गए हैं। पर पाठक के मन में पूरी तरह स्पष्ट हो उठते हैं कि यह लाश विनोद उर्फ बिन्नी की है। इसे मात्र एक साधारण घटना समझ कर छोड़ा नहीं जा सकता। यही वह मुख्य बिन्दु है जहाँ से राजनीति का घृणित स्वरूप उजागर होता है। सामान्य जनता के बीच सामान्य मानव बने रहने की बात करते विधायक जी उर्फ बाऊजी अपने क्षेत्र के एक मंजे हुए खिलाड़ी हैं। जितना वह देंगे, उससे अधिक वसूलना राजनीति का धर्म है। विनोद को स्वीकारने और सुविधाएँ प्रदान करने के पीछे सोची–समझी रणनीति थी, जिसका उपयोग वह अनुकूल समय पर करना चाहते थे। लेकिन विनोद के दुर्भाग्य और विधायक जी के सौभाग्य ने यह अवसर जल्द ही उपलब्ध करा दिया। विनोद को चंडीगढ़ ले जाते समय विधायक जी की मानसिकता का कोई संकेत उपन्यास में उपलब्ध नहीं होता, परन्तु उनके विदेश से लौटे भतीजे के कुकृत्य ने विधायक जी को ऐसा निर्णय लेने के लिए विवश किया। बिना सूचित किए वापस दिल्ली लौटना उनकी विवशता थी और विनोद को घटना स्थल से दूर रखना उनकी समझदारी थी।

तिवारी जी बड़ी संजीदगी, समझदारी से विनोद को व्याख्यान के लिए प्रेरित करते हैं। एक सोची समझी योजना के अनुसार चंडीगढ़ के स्थानीय नेताओं के माध्यम से सभा का आयोजन कराते हैं। "देखो, यह मुद्दा हमारे लिए शोभा भर नहीं है। साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएंगे। जोडेंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से। शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, ऋण, बूढ़ों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। संगठित होना पड़ेगा। जेलें भरनी होंगी, धरने देने होंगे।"

विनोद राजनीति के दांव–पेचों से अनभिज्ञ है, वह भाषण देता है, अपने तर्कों से किन्नर समाज को शिक्षा के प्रकाश की ओर प्रेरित करता है, आत्म सम्मान की बात करता है। एक तरह से समाज में वापसी के मार्ग को प्रशस्त करने की बात करता है और यह भी स्थापित करता है कि स्वयं अपना कर्म किए बगैर, स्वविवेक की जागृति के बिना यह स्थिति संभव नहीं होगी। वह अपने समाज के लिए आरक्षण को उनकी दशा में सुधार के लिए आवश्यक नहीं मानता। यही बात उसकी मौत का कारण बनती है। क्योंकि उसने वोट बैंक के समीकरण को पूर्णतः उलट दिया था। "क्यों विनोद, सीने पर समाज सुधारक का तमगा लटकाने का शौक चर्रा आया। राजा राम मोहन राय बनना चाहते हो। इसीलिए हमने भेजा था तुम्हें चंडीगढ़। मनमानी करने? वह तुम तो छंटे हुए राजनीतिकार निकले। सरकार को सलाह देने लगे। पासा पलटने में माहिर। गलत कर रहा हूँ। सभा में तुमने आरक्षण की बात उठायी थी और तुम पाठ पढ़ाने लगे किन्नरों के स्वाभिमान का। लगे समाज को चेताने। समाज से उनके अधिकार की माँग करने लगे।"

उपन्यास में एक विधायक के सहयोग से विनोद को एक बड़ी दुनिया में हस्तक्षेप का अवसर मिलता है। चण्डीगढ़ में आयोजित किन्नर सम्मेलन की अध्यक्षता और उस सम्मेलन में दिये जाने वाले

बीज–भाषण के लिए बिन्नी अपनी सहमति जताता है लेकिन विधायक के सहयोगी एवं सचिव तिवारी जी द्वारा दिए जाने वाले दिशा निर्देशों से वह सहमत नहीं हो पाता। विधायक वस्तुतः इसे एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। इस समुदाय के लिए आरक्षण का विशेष प्रावधान करके न सिर्फ वह अपना और अपनी पार्टी का श्रेय चाहता है, इसमें भावी चुनाव में वोट–बैंक की संभावनायें भी उसे दिखाई देती हैं।

अतः यह कहना ठीक ही होगा कि राजनीति में जनता मात्र एक वोट–'बैंक है, जिसे अलग–अलग टुकड़ो में विभाजित कर आरक्षण का लालीपॉप देकर स्वार्थ सिद्धि की जाती है। अपने एक साक्षात्कार में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि, "कानून जरूरी है, मगर यह कानून राजनीतिक मंशा से प्रेरित नहीं होना चाहिए। सबसे पहले इन्हें शिक्षा देने की जरूरत है। भरोसा दिलाने की जरूरत है कि वह हमारा हिस्सा हैं। वह जैसे चाहें रहें, वह जिस जेंडर या जिस स्थिति के साथ रहना चाहते हैं, रहें हमें वे जस के तस स्वीकार हैं। एक वोट बैंक की तरह नहीं बल्कि समाज के एक जरूरी हिस्से के रूप में स्वीकार कर इन्हें कानूनी और सामाजिक बराबरी दिलाने की कोशिश करनी चाहिए।

मनुष्य न मानने की समस्या – 'पोस्ट बाक्स नं. 203' नाला सोपारा में लेखिका किन्नरों की सबसे बड़ी समस्या पर विचार करती है जो है उन्हें मनुष्य न मानने की समस्या। विनोद भी यही चाहता है कि, सामान्य मनुष्यों के बीच में सामान्य मनुष्य के रूप में ही पहचाने जाने की ख्वाहिश रखता हूँ।" हमारे समाज की संरचना ऐसी है जो कि केवल दो ही खांचों में बंधा हुआ है – स्त्री एवं पुरुष का खांचा। जिस कारण लैंगिक रूप से विषम अन्य किसी वर्ग के लिए समाज इतना कठोर है कि उसे मनुष्य तक नहीं माना जाता है। प्रश्न है कि ऐसा क्यों है तथा किन्नर समुदाय स्त्री–पुरुष से किस रूप में भिन्न है? दरअसल, ये सारा खेल केवल कुछ गुण सूत्रों का ही है, जिसके कारण कोई स्त्री, पुरुष या किन्नर बनकर दुनिया में जन्म लेता है। किन्नर स्त्री–पुरुष से केवल इस मायने में ही भिन्न होते हैं कि वह समाज के सृजन या प्रजनन में उनकी तरह सक्षम नहीं हैं। अब यहाँ प्रश्न यह भी है कि केवल इस एक वजह के कारण ही किसी को मनुष्य कहलाने का हक नहीं है। उपन्यास में बिन्नी का संघर्ष यही है कि उसे अन्य लोगों की तरह ही मनुष्य समझा जाए और कोई अलग प्रजाति न मानते हुए अपने में से ही एक माना जाए तभी समाज में किन्नरों का दर्जा स्त्री–पुरुष के समान माना जाएगा केवल आरक्षण कर देने से कुछ नहीं होता।

आत्मविश्वास से जीने की चाह – चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में एक और संकेत दिया है कि जरूरी नहीं है हिजड़े वही काम हमेशा करते रहें जो वे न जाने कितने समय से करते चले आ रहे हैं। विपरीत परिस्थितियों में किस प्रकार अपने जीवन को संवारा जा सकता है इसका बहुत अच्छा उदाहरण है इस उपन्यास के नायक बिन्नी का संघर्ष। वह नेग मांगने, भीख मांगने के पक्ष में कतई नहीं है और हिजड़ा

गुरू के अत्याचारों, मार–पिटाई के बाद भी झुकता नहीं है अपनी पढ़ाई जारी रखता है। चौदह वर्ष तक परिवार में रहकर जो पढ़ाई–लिखाई उसने की थी उसका लाभ वह उठाता है। अंग्रेज़ी बोलकर वह अपने साथियों की अस्पताल आदि में मदद करता है। घर में रहते माँ उसे कभी दुनिया का सबसे बड़ा गणितज्ञ बनाने का सपना देखती थी। पढ़ाई के इस संस्कार को आत्मसात् कर वह अपनी साथी पूनम से कहता है, "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई और रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए ..." जो सपना कभी माँ ने उसके लिए देखा था वह चाहता है कि पूनम इतना तो पढ़ ले कि विश्व के कुछ श्रेष्ठतम उपन्यास तो पढ़ ही सके ताकि उनके चरित्रों पर कभी बात की जा सके। जीवन की पाठशाला से ही बिन्नी सीखता है कि स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर होकर ही जीवन जीने का कोई अर्थ है। विधायक के यहाँ नौकरी शुरू करने पर जरूरी सुविधाओं के नाम पर जब उसे एक अच्छा कीमती मोबाइल, लैपटाप और ऐसी रही कुछ अन्य चीज़ें मुहैया कराई जाती हैं, उन्हें वह इसी शर्त पर स्वीकार करता है कि इनकी राशि उसके वेतन में से काटी जाएगी। यह उसे परिवार से मिला संस्कार ही है जो उसे परिवार के प्रति एक गहरे ममत्व से बांधे रहता है जिसमें हर एक चिंता का भाव निहित है। बिन्नी के मन में समाज के प्रति कोई दुराग्रह भी नहीं पलता वह आत्मसम्मान के साथ जीना चाहता है। मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने के लिए वह मेहनत मजदूरी करके जीवनयापन करता है। जीवन में आगे बढ़ने की जिजीविषा उसको पढ़ाई की ओर मोड़ देती है। पढ़ाई का सहारा उसकी कुण्ठाओं को पीछे छोड़ देता है और वह समाज के साथ एक नये प्रकार से समायोजन करता है। वह शारीरिक श्रम करने में किसी भी प्रकार की लज्जा महसूस नहीं करता उसे उमंग सोसाइटी में गाड़ियाँ धोने का काम मिलता है। किन्नरों को लिखना पढ़ना सिखाता है। उन सब के खाते डाकखाने में खुलवाता है सरकारी, गैर सरकारी अस्पतालों में जचकी वार्डों के चक्कर लगा नये जन्मे बच्चों के घर–घाट के अते–पते नोट कर लाता है ताकि वे बधावा उगाहने की रस्म पूरी कर सके। वह कंप्यूटर कोर्स सीखता है। विधायक के यहां नौकरी करता है। उनकी कृपा से एन.आई.टी. बेसिक कंप्यूटर प्रोग्राम में दाखिला मिल जाता है। कंप्यूटर के सामने बैठते ही, "कोई दूसरा ही फुर्तीला नौजवान जन्म ले लेता है। आत्मविश्वास से भरा हुआ।" चार दिन के भीतर ही वह आरम्भिक पाठ्यक्रम की बारीकियां सीख लेता है। कंप्यूटर का कोर्स पूरा होते ही विधायक के दफ्तर में कार्य करना प्रारम्भ करता है वहां, "तनख्वाह मेरी लगभग सात हजार रुपए होगी। काम बढ़ेगा तो तनख्वाह भी बढ़ेगी।" इसके पश्चात् उसे कार्यालय में दो कमरे रहने के लिए दे दिए गये जहाँ अटैच्ड या जुड़ा हुआ लैटरीन–बाथरूम भी है। वह निरन्तर पढ़ाई–लिखाई कंप्यूटर और विधायक जी के साथ उनकी चिट्ठी–पत्री के जवाब देने में लग गया। उपन्यास की पूनम पढ़ना–लिखना सीखना चाहती है। वह अपना नाम लिखना सीखती है। खाता खुलवाने के लिए अंगूठा लगवाना उसे मंजूर नहीं था। वह जिद्द भी करती है कि तब तक वह अपना खाता नहीं खुलवाएगी जब तक वह अपना नाम ठीक से लिखना नहीं सीख जाएगी। लेखिका की मान्यता है कि किसी

भी कुरीति का तोड़ शिक्षा के आलोक में निहित है। इसलिए थर्ड जेण्डर की मुक्ति का मार्ग शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में शामिल होने में मानती है।

बलात्कार की समस्या – लेखिका चित्रा मुद्गल ने उपन्यास में हिजड़ों पर होने वाले यौन अत्याचारों और बलात्कारों को भी सामने लाने का प्रयास किया है। हिजड़ों के साथ होने वाली इस तरह की यौन हिंसा पर प्रायः पुलिस कोई भी कारवाई करती नहीं दिखती। वास्तव में हिजड़ा देह पुलिस के लिए भी मन बहलाव का खिलौना मात्र होती है। नाच–गाने की एवज में अपनी बख्शीश के नाम पर तुलसीबाई के हिजड़ा समूह की एक हिजड़ा चन्द्रा द्वारा घर के बूढ़े मालिक से की गई ठिठोली को उस घर के लोग जबरन मानकर न सिर्फ चन्द्रा आदि हिजड़ों के साथ मारपीट करते हैं बल्कि इन हिजड़ों की बांहों, छातियों होंठों और पीठों पर दरिंदगी भरी खरोंचें और नील के निशान बना देते हैं। लेकिन पुलिस के लिए वही सही थे जो पर्दों वाले घरों में रहते थे। पुलिस एक तरफा कारवाई करते हुए सरदार समेत सात हिजड़ों को लॉक अप में डाल देती है। हिजड़ों के साथ होने वाले बलात्कार और क्रूर यौन हिंसा की घटना में पूनम जोशी के साथ स्थानीय विधायक जी का भतीजा बिल्लू और उसके दोस्त वहशीपन पर उतर कर पाश्विकता का नंगा नाच खेलते हैं लेकिन पूनम जोशी के साथ इतना सब कुछ घटित हो जाने के बाद भी पुलिस को खबर तक नहीं की गई। एक तो विधायक जी जैसे रसूख वाले लोगों के भतीजों पर पुलिस हाथ ही नहीं धरती और फिर हिजड़ों के साथ होने वाले बलात्कार और यौन हिंसा के मामलों में पुलिस रुचि नहीं लेती। शायद हिजड़ों की दैहिक अस्मिता के पुलिस के लिए कोई निहितार्थ होते ही नहीं।

6.5 उपन्यास का उद्देश्य

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बाक्स नं. 203' नाला सोपारा मुम्बई के एक खाते–पीते परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है जो जन्म से ही जननांग की विकृति का शिकार है। पारिवारिक उत्सवों एवं पर्वों पर इनकी उपस्थिति को प्रायः संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। मन मांगी राशि के लिए जिद, हंगामां और अजब आतंक से इन्हें जोड़ कर देखा जाता है। जब तब इनके उपद्रव और मनमानी के विरुद्ध पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ता है। ट्रेनों, बसों और बाज़ारों में इनके झुण्डों को प्रायः देखा जा सकता है जिनका मुख्य धंधा एक तरह की 'वसूली' होता है। इसके लिए उनका तर्क होता है – सामाजिक उपेक्षा और आर्थिक साधनों की अल्पता। शास्त्रों में उनकी उपस्थिति भले ही शुभ सगुन के रूप में उल्लिखित हो, समाज में उनके प्रति सामान्य मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का भी घोर अभाव है। यह उपन्यास इस वर्ग की उपस्थिति को उसकी व्यवहारिकता एवं भावनात्मक समस्याओं को पर्याप्त संवेदनशील ढंग से अंकित करता है। विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के माध्यम से लेखिका समाज के उस चेहरे को उजागर करती है, जो आधुनिक होने के बावजूद अपनी मानसिकता में रूढ़िवादी ही है।

उपन्यास का उद्देश्य थर्ड जेण्डर के अस्तित्व से जुड़े उन मूलभूत प्रश्नों का जायज़ा लेना है जिनसे अक्सर हमारा तथाकथित शिक्षित भद्र समाज आँख मिलाने से कतराता है। यह उपन्यास एक बेटे की तरफ से अपनी माँ को लिखे गए पत्रों का भावुक सिलसिला है। एक बेटा जो थर्ड जेण्डर बिरादरी का सदस्य है, परिवार से जबरन अलग किया गया किन्नर है। उस बेटे के दर्द को उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ पर साकार किया गया है। वह अपने पत्रों में प्रश्नों की झड़ी लगा देता है जो वास्तव में लेखिका के मन को परेशान करने वाले प्रश्न हैं जिन्हें वे अपने जागरुक पाठकों के समक्ष उछालती है। ये प्रश्न समाज की नियमावली निश्चित करने वाले मठाधीशों को बेबाक चुनौती देते हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र इन नियमों को तहस–नहस कर देना चाहता है क्योंकि वह इस समाज में थर्ड जेण्डर की कोटि से निकलकर मनुष्य की आम जिंदगी जीना चाहता है। केवल एक अंग के अभाव में उस व्यक्ति को मानव समाज से बहिष्कृत कर पशु से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर करने की प्रक्रिया के विरुद्ध उपन्यास में एक के बाद एक सवाल उठाए गए हैं। वास्तव में लेखिका का उद्देश्य जीवन के सामाजिक पक्ष से वंचित होने वाले उस बेटे की अभावग्रस्त मानसिकता में छलकते दर्द को प्रकाशित करना है।

यह उपन्यास किन्नरों पर लिखे गए दूसरे उपन्यासों से इस मायने में अलग है कि इसमें दूसरे उपन्यासों की तरह किन्नरों के अल्प ज्ञात जीवन के छिपे पहलुओं का रोचक वृतांत पेश न करके मानवतावादी दृष्टिकोण से हिजड़ें होने की पीड़ा को हमारे समक्ष रखा है और यह उपन्यास इस दृष्टि अलग है क्योंकि इस उपन्यास का उद्देश्य किन्नर समुदाय के अस्तित्व की तलाश है। लेखिका ने उपन्यास का ऐसा कथानक उठाया है जो समस्त समाज को संदेश देता है खासकर किन्नर समुदाय को। विनोद किन्नर होते हुए अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रोकर समाज से दया–अनुकंपा की याचना नहीं करता अपितु अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए संघर्ष करते दिखता है अपितु वह राजनीति द्वारा उपलब्ध कराये अवसर का लाभ उठाकर अपने किन्नर समुदाय को भी ओढ़ी गई नियति से मुक्त होने का प्रबोध ान देने के लिए प्रयास करता है। वह पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ा होने की जिद अपने घरवालों द्वारा किन्नर बिरादरी में फेंक दिये जाने के बाद भी नहीं छोड़ता। उपन्यास का उद्देश्य दूसरों की दया–अनुकंपा की जगह मेहनत की रोटी खाने और स्वाभिमान से जिंदगी जीने पर बल देने का रहा है। विनोद का मानना है कि जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किंतु यह कोई ऐसी विकलांगता नहीं है कि अपनी मेहनत की रोटी इज्ज़त से न कमाई जा सके, “अपने श्रम पर जिओ। मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।”

उपन्यास ‘नाला सोपारा’ हिन्दी उपन्यासों में विशिष्ट शैली को लेकर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। लेखन के इस दौर में इस उपन्यास का आना जब भावनाएँ केवल दिखावा भर रह गई हैं, उस समय समाज की नब्ज को टटोलकर उसकी मानसिकता पर प्रहार करना, निसंदेह सराहनीय कार्य है।

कथानक में शामिल किए पत्र रोचकता को तो बढ़ाते ही हैं, साथ ही थर्ड जेंडर वर्ग को, उसके कष्ट को नए नज़रिए के साथ देखने की समझ भी विकसित करते हैं।

उपन्यास के नायक विनोद की पीड़ा उपन्यास के पन्नो में इतनी गहराई से बयां होती है कि हर मन साक्षी भाव से उस पीड़ा को सोचने को मजबूर हो जाता है कि क्या किन्नर, थर्ड जेंडर या कोई अन्य शब्द, प्रचलित शब्द का स्थान लेकर, उसकी क्रूरता को कम कर सकता है। यहाँ ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं – सामाजिक श्रेणी के बीच में धकेल दिए गए ये बीच के लोग आखिर क्यों मनुष्य होने से ही वंचित कर दिए जाते हैं। आखिर क्यों न उनके जन्म को सम्मान मिलता है, ना ही मृत्यु को? यह उपन्यास इस वर्ग की पीड़ा और अवमानना के दंश को तो उजागर करता ही है साथ ही अपील के माध्यम से आशा का भी संचार करता है। संभवतः यह अपील और उसके माध्यम से समझाइश ही हर व्यक्ति की चेतना में शुमार होकर समष्टि की चेतना बन सकती है। कितना क्रूर और वीभत्स है हमारा समाज कि किसी को महज़ शारीरिक कमी के चलते असामाजिक बना देता है। समाज कुंठित, हिंसक दोषी, क्रूर एकांगी और पिछड़ी मानसिकता को लिए होगा तो उसका दंश सबको भुगतना होगा। संवेदनाओं का क्षण हमारे समय की सबसे बड़ी क्रूरता है और इसी क्रूरता को नाला सोपारा अपने कथ्य में पूरी संवेदना और तार्किकता के साथ प्रस्तुत करता है और यही इस उपन्यास का उद्देश्य भी है। यह उपन्यास एक नई बहस चलाता है, अंदर से कुरेदता है और अपने मनुष्य होने पर प्रश्नचिन्ह लगता है। हमारे आसपास के वे लोग जो सड़कों पर, व्यस्त चौराहों पर, बच्चे होने पर या घर में कोई अन्य उत्सव होने पर नाचने–गाने, आशीष देने चले आते हैं तब क्या हम उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे व्यवहार एक इंसान दूसरे इंसान के साथ करता है? नहीं करते तो इस उपन्यास के बिन्नी की आवाज़ ध्यान से सुनिये 'कन्याभ्रूण हत्या के दोषी माता–पिता अपराधी हैं। उससे कम दंडनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग।"

लेखिका अपने इस उपन्यास के नायक विनोद के माध्यम से पाठकों को यह संदेश देने में सफल रही है कि हिजड़ा होने को असामान्य जननांग विकृति के रूप में देखे जाने की अपेक्षा एक इंसान के ही रूप में देखा जाना चाहिए, "हम जो औरों की नज़रों में गलीज और असामान्य हैं, लेकिन कितने आम और सामान्य हैं, ठीक उनकी ही तरह संवेदनशील और भावुक, असुरक्षा से घिरे।" उपन्यास का अंत किंचित सुखांत है और उम्मीद जगाता है कि विनोद जैसे जागरुक हिजड़ों का घर वापसी का अभियान एक दिन जरूर रंग लाएगा। जैसे विनोद की माँ ने मरने से पूर्व ही सही लेकिन अपनी भूल का, अपने अपराध का परिष्कार करते हुए सार्वजनिक रूप से अपने किन्नर बेटे बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमली से माफ़ी मांगते हुए उसे अपनी संतान होने का अधिकार सुख दिया, वैसे ही एक दिन दूसरे किन्नर बच्चों के माँ–बाप भी अपने बच्चों की घर वापसी का, उन्हें निर्द्वंद्व हो स्वीकारने का साहस अर्जित कर पायेंगे।

वस्तुतः समाज को आवश्यकता है सोच बदलने की, संवेदनशील होने की, सोच बदलेगी तभी अभिभावक अपने लिंगदोषी बच्चों को किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें कूड़े में नहीं फेकेंगे।

6.6 सारांश

निःसंदेह प्रस्तुत उपन्यास में विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के माध्यम से किन्नरों पर होने वाले पारिवारिक दबाव, उनके शोषण को चित्रित किया गया है। किन्नर विनोद की माँ उसके प्रति किये गये दुर्व्यवहार से दुखी होकर उसे घर लौटने का निवेदन, माफीनामा, समाचार–पत्रों में प्रकाशित करवाती है। वास्तव में यह अपील एक माँ की न होकर उन तमाम माताओं एवं परिवारों की है जिन्होंने अपने जननांग दोषी संतानों को घर से निष्कासन दे दिया है। उपन्यास की समीक्षा करते हुए मधुरेश कहते हैं, "चित्रा मुद्गल 'नाला सोपारा' में एक गहरी मानवीय अपील के साथ उपस्थित है। समाज में जैसे बलात्कृता स्त्री अपने किसी अपराध के बिना एक दोहरा दण्ड भुगतती है, अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार और समाज की उपेक्षा का दण्ड भुगतती है, लगभग वही स्थिति समाज में लिंग दोष से ग्रस्त बच्चों की होती है। अपने जिस दण्ड की सजा वे भुगतते हैं उसमें उनकी अथवा उनके माता–पिता की भी कोई भूमिका नहीं होती। अपने उपन्यास द्वारा लेखिका इस समस्या को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में मानवीय सहानभूति के साथ देखे जाने की अपील करती है।"

6.7 कठिन शब्द

1. अभिव्यक्त 2. यातना 3. परिप्रेक्ष्य 4. सहानुभूति 5. प्रतिष्ठा 6. ध्वनि 7. मशाल 8. व्यंग्य 9. बाध्य 10. आंदोलन

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उपन्यास में अभिव्यक्त किन्नर जीवन से जुड़ी समस्याओं पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

2. नाला सोपारा में अभिव्यक्त किन्हीं दो समस्याओं पर चर्चा कीजिए।

____

____

3. नाला सोपारा उपन्यास की रचना किस उद्देश्य से हुई है – स्पष्ट कीजिए।

4. नाला सोपारा उपन्यास में लेखिका क्या संदेश देती है।

5. लेखिका के जीवन परिचय पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।

6.9 पठनीय पुस्तकें

1. पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा – चित्रा मुद्गल
2. चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी चित्रण – डॉ. शालिनी
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ्ता नियाज़
4. थर्ड जेंडर विमर्श – सं. शरद सिंह

– – – – –

पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' के प्रमुख चरित्र

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' का कथ्य

7.4 पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' का शिल्प

7.5 सारांश

7.6 'नाला सोपारा' के चरित्र

  7.6.1 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

  7.6.2 गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण

7.7 सारांश

7.8 कठिन शब्द

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप पोस्ट बाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

श्रेष्ठ रचना का श्रेय उसके चरित्र निर्माण को जाता है। चरित्र के माध्यम से ही साहित्यकार मानव–मन की प्रवृत्तियों को उद्घाटित करता है। चरित्र कथा को विस्तार देते हैं क्योंकि उनके माध्यम से घटित घनटनाएँ एवं उद्घाटित भाव–विचार एक ओर यहाँ उसके चरित्र के गुण व दोष को हमारे सामने लाते हैं वहीं दूसरी ओर कथा को विस्तार देकर मुख्य उद्देश्य की पूर्ति भी करते हैं। इसलिए चरित्र के बिना कथा सम्भव नहीं। कथा में व्यक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ ही रचना को उत्कृष्ट बनाती हैं। पात्रों के जीवन के उतार–चढ़ाव से ही पाठक के मनमस्तिष्क की रोचकता प्रभावित होती है। चित्रा मुद्गल कृत 'नाला सोपारा' उपन्यास भी उत्कृष्ट चरित्र निर्माण के कारण ही श्रेष्ठ रचना बन पाई है। इस कृति को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना इसकी श्रेष्ठता को ही प्रदर्शित करता है।

7.3 पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' का कथ्य

प्रस्तुत उपन्यास के लेखन के प्रेरक बिन्दु के संबंध में वे लिखती हैं, "लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी, कि आखिर क्यों हमारे एक अहम् हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को हमसे दूर किया जा रहा है। आज़ादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटीं लेकिन किन्नरों की ज़िन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। क्यों, आखिर इनका दोष क्या है? यही सवाल था जो मुझे बेचैन करता था। 1974 में मैं मुंबई के नाला सोपारा में रहती थी तब मेरी मुलाकात एक इसी समुदाय के एक व्यक्ति से हुई जिसे किन्नर होने की वजह से घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी व्यक्ति के विद्रोह की कहानी कहता है। मैंने उसे अपने घर पर बहुत दिनों तक साथ रखा।"

चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास का कथ्य मुम्बई के एक खाते–पीते परिवार के जननांग विकृति के शिकार बच्चे विनोद उर्फ बिन्नी की कहानी को हमारे समक्ष लाता है। विनोद के पिता हरीन्द्र की कालबा देवी में किराने की सबसे बड़ी दुकान है और उनके तीन बेटे हैं– सिद्धार्थ, विनोद और मंजुल। तीनों में से बड़ा बेटा सिद्धार्थ और सबसे छोटा मंजुल तो पूरी तरह सामान्य हैं किन्तु विनोद जननांग विकृति का शिकार है इसी कारण माँ वंदना उसके प्रति अधिक मोह रखती है।

विनोद एक अच्छे स्कूल का मेधावी छात्र है जिसके भविष्य को लेकर उसके माता–पिता ने अनेक सपने भी देखे हैं। उन्होंने विनोद को अनेक विशेषज्ञ डॉक्टरों को दिखाया, किन्तु किसी से कोई लाभ नहीं हुआ और वह इसी शारीरिक विकृति के साथ बड़ा होता गया। परिवार वाले उसकी सच्चाई को समाज से छुपाकर रखते हैं किन्तु हिजड़ों का सूचना तंत्र बहुत ही सक्रिय होता है जिस कारण उन्हें विनोद की खबर लग जाती है और वह उसे ले जाने उनके घर आ जाते हैं। घर वाले हिजड़ों को विनोद के स्थान पर उसके छोटे भाई

मंजुल को दिखा देते हैं– "देख लो एकदम नॉर्मल बालक है, यह।" हिजड़े ताली पीटते वापस तो चले जाते हैं किन्तु खबर गलत होने पर फिर आने की दमकी देकर। इसी बीच विनोद का स्कूल जाना बंद कर दिया जाता है। जैसे कि हमेशा देखा जाता है कि हिजड़ा समुदाय अपनी प्रकृति के लोगों को ढूंढ ही लेते हैं इसलिए विनोद भी उनकी पकड़ में आ जाता है। परिवार वाले सामाजिक अपयश के भय से आवास बदल लेते हैं और सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर देते हैं कि एक यात्रा के दौरान दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई और उसके अवशेष तक नहीं मिले। यहाँ तक कि कहानी आम हिजड़ों के जीवन जैसी ही लगती है किन्तु बिन्नी अपनी माँ का पता लगाकर उनके साथ पत्र व्यवहार करता है। माँ भी परिवार से चोरी उसे पत्र लिखती है। यहाँ से उपन्यासकार ने विनोद की ओर से अपनी माँ को लिखी गई चिट्ठियों के माध्यम से हिजड़ा समुदाय के जीवन की अनगिनत त्रासदियों को प्रस्तुत कर गम्भीर संवेदनशीलता का परिचय दिया है।

माँ द्वारा लिखे गए जवाबी पत्र पृष्ठभूमि में ही रहते हैं क्योंकि विनोद द्वारा लिखे पत्रों से ही ज्ञात होता है कि माँ ने अपने पत्र में क्या लिखा था। ऐसा करके लेखिका ने उपन्यास को ठहराव से बचा लिया है और पाठक भी मानसिक रूप से निरंतर गतिमान रहता है। विनोद के पत्रों में अपनी माँ से बहुत सारे प्रश्न हैं किन्तु ये प्रश्न मात्र एक बेटे द्वारा अपनी माँ से किए गए प्रश्न नहीं हैं बल्कि एक निर्दोष व्यक्ति के समाज से किए गए प्रश्न हैं जो समाज को अपनी संकुचित मानसिकता पर विचार–विमर्श करने को विवश करते हैं।

चंपाबाई को सौंपे जाते समय विनोद की उम्र चौदह साल की थी। इस समय उसका दोहरा विस्थापन हुआ था अर्थात् जितना सामाजिक–सांस्कृतिक उतना ही भावनात्मक और परिवेशगत। विनोद जिस परिवेश में गया वहाँ धार्मिक आचार शास्त्र की जगह, बिरादरी के अपने आचार शास्त्र पर अधिक बल दिया जाता है। सामान्य परिवार में रहने के कारण रोज़ नहाने की आदत को यहाँ उपहास की दृष्टि से देखा जाता। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग को लेकर भी जब–तक उसे प्रताड़ित किया जाता रहा। यह वर्ग स्त्रीलिंग का उपयोग करते हैं इसलिए विनोद को भी स्त्रैण प्रवृत्ति को अपनाने के लिए ज़ोर दिया जाता, किन्तु वह पुरुष लक्षण और प्रवृत्ति वाला था। इसलिए वह पुरुष के रूप में ही अपनी पहचान कायम रखना चाहता है। जिसके लिए उसने इस वर्ग द्वारा दी गई सारी प्रताड़ना को भी सहा किन्तु अपनी पहचान को मिटने नहीं दिया, "उनके लात घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साड़ियाँ लपेटकर लिपिस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को"

बदलाव केवल विनोद के जीवन में ही नहीं हुआ, उसके परिवार में भी हुआ। वह भी कालवादेवी वाला अपना निजी मकान बेचकर नाला सोपारा में रहने चले जाते हैं। स्थान परिवर्तन की एक गहरी प्रतीक व्यंजना है– एक समृद्ध और सम्मानित बस्ती से नाले जैसे घृणित माहौल में पहुँचना। यह व्यंजना परिवार से

अधिक विनोद के जीवन पर लागू होती है क्योंकि उसका जीवन ही नरक में परिवर्तित हुआ है। वह भी सामान्य बच्चों की तरह पढ़–लिखकर कुछ बनना चाहता था, लेकिन एक शारीरिक कमी ने उसकी पूरी दुनिया ही उजाड़ दी। जब भी वह दुखी होता तो 'बा' के साथ ज्योत्सना भी उसकी स्मृति में आ जाती। ज्योत्सना उसका प्रेम थी जिसके साथ वह सामान्य जीवन जीना चाहता था किन्तु परिस्थितिवश अब वह उसके लिए मर चुका था लेकिन विनोद के लिए वह अभी भी जिंदा है। इस दुनिया में विनोद को ज्योत्सना की तरह ही पूनम का प्रेम मिला है। पूनम, विनोद के हर निर्णय में सहयोग देती है। मुंबई से दिल्ली आ जाने पर दिल्ली से अलीगढ़ भाग कर जब विनोद इस नरकीय जीवन से मुक्ति का प्रयास करता है तो सरदार तितली बाई उसे पकड़ लेती है। विनोद के इस साहस के लिए उसे पिटा जाता है जिससे उसके सिर पर चार टांके लगते हैं और दो दांत भी हिल जाते हैं। उस समय पूनम ने उसे सहारा दिया और समझाया कि यहाँ उसके जैसी छूट किसी और किन्नर को नहीं मिली। इसलिए चुप रहकर यहाँ रहे। विनोद इस घटना के पश्चात् वहाँ से कभी भागा तो नहीं किन्तु वह नेक व भीख माँगने के पक्ष में कभी नहीं रहा। वह गाड़ियाँ धोकर मेहनत करता है लेकिन परंपरागत पेशे में नहीं आता। वह अपनी माँ को पत्र में लिखता है, ''कोशिश में हूँ बा। उनसे छिपकर कोई बड़ा काम सीख सकूँ ताकि किसी भी रूप में उन पर निर्भर न रहूँ। अधूरी शिक्षा आड़े आ जाती है। गाड़ियाँ मजबूरी में धोता हूँ। कहीं और भाग सकता नहीं।'' विनोद की मेहनत देखकर ही विधायक उसे नौकरी तथा संरक्षण देता है। वहीं रहकर वह कम्प्यूटर क्लास की पढ़ाई को भी पूरा करता है। विधायक का संरक्षण उसे नया जीवन देता है।

विधायक द्वारा विनोद को स्वीकारने और सुविधाएँ प्रदान करने के पीछे सोची–समझी रणनीति थी, जिसका उपयोग वह अनुकूल समय पर करते हैं क्योंकि वह विनोद द्वारा किन्नर दल के वोट प्राप्त करना चाहते थे। राजनीति में सफल होने के लिए राजनीतिक दल को ज्वलन्त समस्या चाहिए होती है और उस समय किन्नरों को आरक्षण देने का मुद्दा उठाकर वह वोट बैंक की राजनीति करते हैं किन्तु विनोद इस अवसर पर उनके कहे अनुसार न चलकर, अपने तर्कों से किन्नर समाज को शिक्षा के प्रकाश की ओर प्रेरित करता है, उनके आत्मसम्मान की बात करता है। वह किन्नर आरक्षण की अपेक्षा समाज से उनकी घर वापसी की अपील करता है। किन्तु जिस राजनीतिक दल ने उसे वोट बैंक का माध्यम बनाया था उसे विनोद का समाज सुधारक रूप कैसे स्वीकार्य होता। दूसरा पूनम जोशी के साथ विधायक के भतीजे तथा उसके मित्रों द्वारा किया गया सामूहिक बलात्कार भी विनोद का काल बन जाता है। विधायक जानता था कि पूनम और विनोद के मध्य एक कोमल संबंध है। उसकी दुर्दशा को आधार बनाकर यदि विनोद ने अपने वर्ग को संगठित कर लिया तो उनका राजनैतिक कैरियर समाप्त हो जाएगा। इसलिए मार्ग की इस भयंकर बाधा को हटा देना ही उनके लिए सुरक्षित उपाय था। ऐसे में विनोद की माँ की तबीयत खराब होने की सूचना उनके षडयंत्र को एक नया मौका देती है। विनोद को मुंबई माँ से मिलने भेजा जाता है लेकिन उपन्यास का अन्त जिन दो समाचारों से हुआ है उससे

दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक में विनोद की माँ द्वारा बेटे की घर वापसी के लिए की गई अपील और दूसरे में मिठी नदी पर बेपहचान मिली किसी किन्नर की लाश वाला समाचार जो सीधे विनोद की हत्या की ओर संकेत करता है।

निःसंदेह प्रस्तुत उपन्यास विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली के माध्यम से किन्नरों के साथ की गई पारिवारिक एवं सामाजिक उपेक्षा को सामने लाता है। यह उपन्यास इस वर्ग की पीड़ा और अवमानना के दंश को तो उजागर करता ही है साथ ही अपील के माध्यम से आशा का भी संचार करता है। कितना क्रूर और वीभत्स है हमारा समाज कि किसी को महज शारीरिक कमी के चलते, असामाजिक बना देता है। समाज कुंठित, हिंसक, दोशी, क्रूर, एकांगी और पिछड़ी मानसिकता को लिए होगा तो उसका दंश सबको भुगतना पड़ेगा ही। संवेदनाओं का क्षरण हमारे समय की सबसे बड़ी क्रूरता है और इसी क्रूरता को लेखिका ने 'नाला सोपारा' के कथ्य में पूरी संवेदना और तार्किकता के साथ प्रस्तुत किया है।

7.4 पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' का शिल्प

यह उपन्यास कथ्य के साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी विशिष्ट है। उपन्यास को पढ़ने के दौरान यह प्रश्न बार–बार उठता है कि चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के लिए पत्र–शैली वाले जिस पुराने परम्परागत रचना–विधान को चुना है, उसका औचित्य क्या है? पूरी कथा विनोद द्वारा अपनी माँ वंदना को लिखे गए पत्रों के माध्यम से विस्तार पाती है। इसका भावनात्मक औचित्य माँ (बा) के प्रति बेटे का गहरा आत्मीय लगाव है। उसके शारीरिक दोष ने उसके प्रति माँ की ममता को और बढ़ाया है।

पत्र शैली में रचित इस उपन्यास की संपूर्ण कथा में कुल सत्रह (17) पत्र हैं जो विनोद द्वारा अपनी बा को लिखे गए हैं जिसमें सात पत्र मोहन बाबा नगर, बदलपुर, दिल्ली से हैं, दो पत्र लाजपत नगर दिल्ली से और आठ पत्र चण्डीगढ़ से प्रेषित किए गए हैं। इसमें माँ का लिखा एक भी पत्र नहीं है परन्तु विनोद के पत्रों में माँ की भावना व्यक्त हो जाती है। माँ को संबोधित करते हुए पत्रों की शृंखला से कथानक बुना गया है और पत्रों के माध्यम से ही कथानक का यह सूत्र मिलता है कि विनोद, माँ की विवशता और उसे कसाई के हाथ सौंपी गई बछिया की तरह बताकर अपनी आंतरिक पीड़ा व्यक्त करता है। पत्र शैली को चिंतन–प्रवाह या विचार–प्रवाह को अभिव्यक्त करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। इस दृश्टिकोण से देखा जाए तो लेखिका ने इसके माध्यम से कथा–प्रवाह को व्यक्त करके एक अनुठी कथ्य कृति तथा शिल्प की दृष्टि से एक अनुपम कृति की रचना करने में सफलता हासिल की है।

उपन्यास में ऐसे प्रसंग भी हैं जिन्हें व्यक्त करते हुए भाषा भावात्मक हो गई है। जैसे आठवीं कक्षा के छात्र के रूप में परिवार से दूर होने पर विवश यह बेटा अपनी बीती ज़िंदगी को याद करता हुआ जब माँ

से चिट्ठियों के माध्यम से बातचीत करता है तब यह भावुकता स्पष्ट दिखाई देती है। नवरात्री पर्व के आगमन पर लिखा गया पत्र, ''नवरात्रि में वह परी कौन–सा घाघरा पहनेगी डांडिया में, बेझिझक ऊपर मुझे दिखाने ले आती थी। पुराना कच्छी–घाघरा उसे छोटा–सा हो गया है। ये वाला नया है। भुज वाली उसकी यशोदा फोइबा (फूफी) ने पार्सल से भेजा है, साथ में नए चलन का फुंदने वाला डांडिया भी।'' यहाँ भाषा विनोद की ज्योत्सना के प्रति भावुकता को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में सफल हुई है।

यह उपन्यास समाज में अत्यंत बहिष्कृत व निकृष्टतम परिस्थितियों में संघर्षरत किन्नरों की जीवनचर्या पर आधारित होने पर भी, लेखिका ने गाली–गलोच का सीमित प्रयोग किया है। माँ व परिवार से बिछुड़ने का दर्द विनोद के मन में प्रतिपल रिसता रहता है और इस तकलीफ के साथ लेखिका की भावुक भाषा ने पूरा न्याय किया है। जैसे परिवार द्वारा उसे त्याग देने की पीड़ा का चित्रण– ''तुने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। ...जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआँ है जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएँ ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।'' वहीं दूसरी तरफ नौकरी पाने तथा किन्नरों के अस्तित्व के प्रश्न से जुड़े मुद्दों पर बात करते समय विनोद की भाषा उतनी ही दृढ़ और सुगठित हो जाती है जितनी पाठक को प्रभावित कर सके। जैसे किन्नर सभा को सम्बोधित करते हुए विनोद का प्रभावषाली स्वर– ''जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्स भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं। सोचो!

बच्चे तुम पैदा नहीं कर सकते मगर पिता नहीं बन सकते, यह किसने नहीं समझने दिया तुम्हें?

सुनो–पहचानो उन्हें। पहचानो। अपने श्रम पर जिओ।

मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर।

तुम्हें मारने का जहर।

तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।''

यहाँ विनोद का एक–एक शब्द किन्नरों में चेतना का संचार कर रहा है और पाठक वर्ग को सोचने पर विवश।

भाषा में वार्तालाप अर्थात् संवाद शैली का भी अनूठा रूप मिलता है। ये संवाद कथानक को साकार कर देती हैं। विधायक के यहाँ रहते हुए एक दिन विनोद को ज्योत्सना के अपने पास होने का आभास हुआ

जिसके विषय में वह माँ को पत्र में लिखता है किन्तु संवाद के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि सब वास्तविकता में हमारे सामने घट रहा है–

''घर में तैयार हो निकले, उस समय जनाब कंप्यूटर स्कूल में बिराजे हुए थे। जानती कैसे मैं कैसी लग रही हूं इस सलवार–कमीज़ में ? ...

'ऊंहू' कॉफी पीते हुए देखिए। टी.वी. पर देखते हैं जैसे दो लोग एक–दूसरे को।'

'दूध तो खतम हो गया था कॉफी' ...

'दूध को मारो गोली, यह नेस्कैफे है ... क्या कहते हैं, इनीसेंट।'

'इंस्टेट'। ...

उठना ही पड़ा

कॉफी मग हाथ में लेकर घूंट भरी।

भारी पलके झपझपाई।...

'ज्योत्सना! तू मारा रूम मा ?'

'ज्योत्सना... ज्योत्सना...''

लेखिका ने किन्नर परिवेश को व्यक्त करने के लिए गीतों का समावेश भी किया है क्योंकि किन्नर वर्ग में गीतों का विशेष महत्व है यदि उनका समावेश यहाँ न किया जाता तो किन्नर जीवन का चित्रण अधूरा रह जाता। यह गीत प्रायः पूनम द्वारा गाए गए हैं जैसे विनोद के समक्ष पूनम का यह गीत गाना– ''तू प्यार का सागर है, तेरी इक बूंद के प्यासे हम ... लौटा जो दिया तूने, चले जाएंगे जहां से हम, तू प्यार...'' विनोद के प्रति पूनम की भावूकता को व्यक्त करता है। ऐसे ही विधायक के भतीजे के जन्मदिन समारोह पर नाचने के लिए पूनम द्वारा जो गीत तिवारी जी को उसने गुणगुनाते हुए लिखवाए, उनका उल्लेख भी उनके मनोरंजन परक परिवेश को व्यक्त करता है। वहीं विनोद की माँ द्वारा गाई लोरी का उल्लेख भी हुआ है–

''खम्मा वीरा ने जाऊं वारणे, रेडड लोल

एक तो सुहागी गगन चान्दलो, रेडड लोल

वीज सुहागी मारो वीर, रेडड लोल

खम्मा वीरा ने जाऊं...''

यह लोरी गुजराती भाषा में है जो गुजराती परिवेश के अनुरूप प्रयोग की गई है। भाषा में बिम्ब प्रयोग भी पाठक को उस चित्रण से पूर्ण रूप से जोड़ देता है और लेखिका जिस संवेदना को पाठक वर्ग तक पहूँचाना चाहती है उसमें सफल भी हो जाती है। माँ के पत्र को पाकर विनोद की प्रतिक्रिया का चित्रण बिम्बात्मक है जो शब्दों में भावों को साकार कर देता है–

''तेरी चिट्ठी मिली।

पढ़े बिना मैंने सैंकड़ों बार उसे चूमा था। ...

कलम की स्याही में बसी हुई है तेरे हाथों से पकने वाली स्वादिष्ट सब्जियों की कल्हार की सीजी गंध। दुखते माथे पर पीड़ा सोखती तेरी उंगलियों की रेशमी सहलाहट। एक भी सलवट छोड़े बिना स्कूल ड्रेस पर की गयी तेरी इस्त्री की छुअन।'' यहाँ स्पर्श और गंध बिम्ब के माध्यम से विनोद की भावुकता व्यक्त की गई है जो पाठक के हृदय को भी भावुक करती है। इसी तरह– 'सर्द हवा की रेशमी सरसराहटें मेरे बालों में उंगलियां फेर रही थीं।'' ''खचाखच भरे हॉल की आधी से अधिक सीटों पर किसी दैत्य की कलाइयों की कांटे उगी मजबूत पकड़ में कैद चीखते, पुकारते छूट भागने को छटपटाते, पछाड़े खाते मासूम बच्चे बैठे हुए दिखाई पड़े।'' आदि बिम्बात्मकता के उद्धाहरण हैं जिन्होंने कथा को सजीव कर दिया है। उपन्यास में अलंकारों का प्रयोग भी भाषा को अर्थवान बना देता है। अलंकारों में उपमा अलंकार का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है इसके कुछ उद्धाहरण हैं–

'परी सी लग रही थी वह।', मन सुलगती–भीगी लकड़ियों सा धुआंता रहता है बा, बिलबिलाकर सुअर सा लोट गया ज़मीन पर, कसाई फिरकी सा घंटों नचवांएगे, उसका चेहरा पंखुड़ियों सा खिल आया।'' आदि उपमा अलंकार के सफल उद्धाहरण हैं। वही गुजराती, अंग्रेजी और बजारू शब्दों का प्रयोग पारिवेशिक विशेषताओं के प्रस्तुतीकरण में सहायक बन पड़ा है। सामान्य रूप से भाव प्रस्तुतीकरण हेतु बहुत ही सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है ताकि भाव ग्राह्यता बाधित या क्लिष्ट न हो। विनोद गुजराती परिवार से संबंधित है इसलिए गुजराती पात्रों के चित्रण में गुजराती भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है जेसे बा, पप्पा, दीकरा, मोटा भाई, कौन छै, छोकरा, छोकरी, मजा मा छे, टेपला आदि। दिल्ली एवं मुंबई की कथा होने के कारण इसमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी भाषा की आवश्यकतानुसार हुआ है। जैसे– फोन, सैलून, वारनिश, पब्लिक बूथ, पोस्ट बॉक्स, मोबाइल, एगजास्ट, हैंगर, कॉफी, इंस्टेट, मैटरनिटी होम, कंप्यूटर, फर्नीचर, लॉकअप, पुलिस, ग्रीटिंगकार्ड, राशनकार्ड, वोट, हॉल आदि शब्दों का प्रयोग परिवेशगत स्वाभाविकता का परिणाम है। वहीं किन्नर वर्ग द्वारा प्रयोग किए गए बजारू शब्द भी उनके परिवेश को ही स्पष्ट करते हैं। जैसे– लौंडा नाच, तगड़ी, फटीचर, सितमगर, रजा मुराद, पिल्लों की अंटी, आदि। लेखिका ने उपन्यास का अन्त नई शैली में किया है, वे लिखती हैं– ''प्रिय पाठकों, अत्यंत पीड़ा और खेद के साथ मैं आपको एक साथ दो दुखद समाचार पढ़वाना चाहती हूँ, ... कृपया आज यानी 27.12.2011 का टाइम्स ऑफ इंडिया उठा ले।''

समाचार एक में 'एक स्वर्गवासी माँ का माफीनामा, अपने किन्नर बेटे से घर वापसी की अपील।' माँ ने लिखा था कि मैं वंदनाबेन शाह सार्वजनिक रूप से घोषणा करती हूँ कि उन्होंने मझले बेटे विनोद शाह, जिसमें लिंग दोष होने के कारण बरसों पहले जबरन किन्नर चंपाबाई को सौंपकर दुर्घटना में उसकी मृत्यु होने का नाटक रचा था, लोकापवाद के भय से, उस भूल का परिष्करण करना चाहती हूँ।' वह विनोद से प्रार्थना करती है कि वह अपनी माँ को इस अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा कर अपने घर वापस लौट आए। अपनी अधूरी शिक्षा पूरी कर, अपनी माँ का स्वप्नपूर्ण करे। वह यह भी जानकारी देती है कि उसके पिता हरीन्द्र शाह ने वसीयत में अपनी संपूर्ण संपत्ति में उत्तराधिकार तीनों बेटों– सिद्धार्थ, विनोद एवं मंजुल को बराबर का हिस्सेदार बनाया है। माँ ने यह भी इच्छा जाहिर की, कि उसके शव को तबतक शवगृह में रखा जाए जब तक विनोद क्रियाकर्म के लिए न पहुँचे। वहीं दूसरे समाचार में एक किन्नर की हत्या का जिक्र किया गया है जो स्पष्ट रूप से विनोद की हत्या की तरफ संकेत करता है। इन दो समाचारों के साथ उपन्यास का अन्त एक नया प्रयोग है लेकिन अचानक समाचारों की संरचना पाठक को कुछ अटपटी–सी भी लगती है।

7.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि सत्रह पत्रों के माध्यम से लगभग पाँच महीने की यह कथा मानो किन्नर समुदाय की पूरी जीवन गाथा कहती है। जिसमें भावुकता भी है, व्यंग्य भी हैं, व्यथा भी है, अनुमान भी और प्रश्न भी हैं। इन सभी के माध्यम से उपन्यास विस्तृत आकार लेता है। शिल्प की दृष्टि से अनूठी कृति होते हुए भी संरचना की दृष्टि से बहुत अलग है। इस उपन्यास में पत्र लेखन की बहुत पुरानी शैली को अपनाया गया है किन्तु यह इसकी सबसे बड़ी कमी भी बनी है क्योंकि कथा के विस्तार और व्यापक आयाम को सही से नहीं समेटा जा सका है। चरित्रों का विकास भी पूर्ण रूप से नहीं होता। कारण यह है कि इसमें मात्र विनोद के ही पत्रों का ब्यौरा है 'बा' के पत्र नहीं हैं। हालाँकि विनोद के पत्रों में बा के पत्रों का उल्लेख हुआ है किन्तु इससे शैली और भी जटिल बन जाती है क्योंकि 'बा' के पत्रों की जानकारी भी विनोद को ही अपने पत्रों में देनी पड़ रही है। विनोद अकेला ही एकालाप कर रहा है जिससे यह भी लगता है कि ये पत्र किसी पुत्र ने माँ को न लिखकर पाठकों के लिए ही लिखे हैं तभी ब्यौरे इतने विस्तार से खींचे जा रहे हैं। इस शैली की भी अपनी सीमाएँ हैं जो टूटती हुई प्रतीत होती हैं। साथ ही उपसंहार के रूप में समाचार–पत्रों का चित्रण यहाँ एक ओर नया प्रयोग है वहीं उपन्यास में जबरदस्ती थोपे हुए भी लगते हैं। फिर भी कथ्य की नवीनता उपन्यास को इन सभी दोषों से उबार लेती है।

7.6 'नाला सोपारा' के चरित्र

'पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र विनोद है क्योंकि सम्पूर्ण उपन्यास की कथा विनोद के संघर्ष को ही व्यक्त करती है। चूँकि इस उपन्यास की पूर्ण कथा विनोद द्वारा अपनी 'बा'

को लिखे गए पत्रों द्वारा व्यक्त हुई है इसलिए इस उपन्यास के प्रमुख पात्र– 'विनोद' और 'बा' हैं। इनके अतिरिक्त हरीन्द्र, सिद्धार्थ, ज्योत्सना, पूनम, विधायक, तिवारी आदि इस उपन्यास के गौण पात्र हैं जो विनोद के जीवन से संबंधित हैं। कुछ पात्र उसके जीवन संघर्ष के साथ संघर्ष कर रहे हैं तो कुछ उसके संघर्ष को और बढ़ा रहे हैं। इन सभी पात्रों का चित्रण कर लेखिका ने किन्नर वर्ग की व्यथा को व्यक्त करते हुए समाज में उनकी स्थिति सुधारने के समाधान प्रस्तुत किए हैं। इसलिए इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

7.6.1 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

विनोद : विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली 'नाला सोपारा' उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो एक सशक्त रूप में हमारे सामने आता है। विनोद के चरित्र को उभारने वाली निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

लिंग दोष : विनोद मुम्बई के एक सम्पन्न परिवार में जन्मा जननांग विकृति का व्यक्ति है जो बचपन में तो सामान्य बच्चों जैसा बालोचित कर्त्तव्यों, खेलकूद तथा पढ़ाई में होनहार होता है किन्तु समय के साथ उसकी आंतरिक संरचना में प्राकृतिक बदलाव आता है जिससे उसे अपने असामान्य होने का बोध होता है। परिवार वाले चौदह वर्ष तक तो उसे किन्नर समुदाय से छिपाकर रखते हैं लेकिन अधिक देर वे इस सच्चाई को छिपाकर नहीं रख पाते। किन्नर समुदाय की दमकी के कारण लोकलाज के भय से वह विनोद को इस समुदाय को सौंपने हेतु विवश हो जाते हैं और विनोद को इस प्राकृतिक दोष के कारण अपने परिवार से अलग रहने की सज़ा भुगतनी पड़ती है। वह किन्नर जीवन को नरक मानता है इसलिए वह अपनी बा से प्रश्न भी करता है– ''तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कारवाई क्यों नहीं की ?... जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआं है जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।'' विनोद का उक्त कथन किन्नर जीवन के त्रासद अनुभव को हमारे सामने लाता है।

स्वाभिमानी : विनोद स्वाभिमानी किन्नर है। हिजड़ा समुदाय में स्त्रैण गुणों के अनुसार आचरण किया जाता है लेकिन विनोद पुरुष लक्षण एवं प्रवृत्ति वाला हिजड़ा है और वह इसी पहचान के साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है। इस समुदाय द्वारा उसे स्त्रैण गुणों को अपनाने के लिए प्रताड़ित किया जाता है किन्तु वह सब सहन कर लेता है, पर स्त्रैण गुणों अनुसार आचरण नहीं करता। वह अपनी बा से कहता है, ''उनके लात घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साड़ियाँ लपेटकर लिपिस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को ...'' इस प्रकार वह अपनी पहचान को बचाकर अपने

स्वाभिमान की भी रक्षा करता है। वह नहीं चाहता था कि लोग उसकी कमी के कारण उस पर दया करें। यही कारण है कि विधायक के यहाँ नौकरी करने पर जब उसे आवश्यक सुविधाओं के नाम पर एक कीमती मोबाइल, लैपटाप और ऐसी ही कुछ अन्य चीज़ें मुहैया कराई जाती हैं तो वह इसी शर्त पर सब वस्तुएं स्वीकार करता है कि इनकी राशि उसके वेतन से काटी जाए। विनोद का ऐसा व्यवहार उसके स्वाभिमानी होने का ही परिचायक है।

कर्मठ/मेहनती : विनोद अपनी शारीरिक विकृति को अपनी कमज़ोरी नहीं मानता। वह मेहनत पर विश्वास करता है क्योंकि उसका मानना है कि जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किन्तु यह ऐसी भी कोई विकलांगता नहीं है कि व्यक्ति अपनी मेहनत की रोटी इज्जत से न कमा सके। अपनी इसी सोच के कारण वह तुलसीबाई के हिजड़ा डेरे पर रहते हुए भी फरीदाबाद की उमंग सोसाइटी में रोज सुबह गाड़ियाँ धोने का काम करता है। उसके इसी कर्मठ व्यक्तित्व को देखकर स्थानीय विधायक उसे कम्प्यूटर संचालन का कोर्स करवाता है तथा अपने कार्यालय में नौकरी भी देता है। अपनी अधूरी पढ़ाई को भी वह इग्नू के माध्यम से पूरा करने में तत्पर दिखता है क्योंकि वह पढ़ाई पूरी कर अपनी अलग पहचान बनाना चाहता है। यह उसकी कर्मठता का ही परिणाम है कि वह स्त्रैण गुणों को अपनाकर दूसरों की अनुकंपा पर न जीकर, अपनी मेहनत के बल पर जीवन निर्वाह करता है। वह पत्र में बा को लिखता है, ''कोशिश में हूँ बा। उनसे छिपकर कोई बड़ा काम सीख सकूँ ताकि किसी भी रूप में उन पर निर्भर न रहूँ। अधूरी शिक्षा आड़े आ जाती है। गाड़ियाँ मजबूरी में धोता हूँ। कहीं और भाग सकता नहीं।'' विनोद की कर्मठता हर परिस्थिति में हार न मानने को प्रेरित करती है।

कर्त्तव्यनिष्ठ : विनोद चाहे कितनी भी विपरीत परिस्थितियों में रहा हो लेकिन उसने अपने कर्त्तव्य से कभी मुँह नहीं मोड़ा। हिजड़े का पारम्परिक जीवन चाहे वह स्वीकार नहीं कर पाता लेकिन उनके साथ रहते हुए वह उस डेरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन भी करता है। उसका कहना है कि ''उनका अन्न खाता हूँ तो उनके कुछ महत्वपर्णू काम मैंने अपने जिम्मे ले लिए हैं। सरकारी, गैर सरकारी अस्पतालों के जचकी वार्डों के चक्कर लगा नये जन्में बच्चों के घर–घाट के अते–पते नोट कर लाता हूँ ताकि वह उनसे बधावा उगाहने की रस्म पूरी कर सकें। हारी–बीमारी में अस्पताल लेकर दौड़ पड़ता है।'' इसके साथ ही वह डेरे में रहने वाले सभी किन्नरों के खाते भी डाकखाने में जाकर खुलवा देता है। यह सब कार्य वह अपना कर्त्तव्य समझकर करता है जो उसके कर्त्तव्यनिष्ठ होने का स्पष्ट उद्धाहरण है।

परिवार–स्नेही : परिवार द्वारा त्यागे जाने पर भी विनोद परिवार से पूर्ण रूप से जुड़ा रहता है। अपनी माँ से उसे इतना स्नेह है कि वह माँ के प्रत्येक सुख–दुख से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करता है। पत्र में वह लिखता है, ''तेरे पांव अब भी सूजते होंगे न बा। मैं उनकी उंगलियों को कैसे चटखाऊं। कैसे दूर

करूं उनकी थकान। थककर डबल रोटी से सूज जाने वाले तेरे उन पांवों को मैं चूमना चाहता हूं। उनकी टीसें हर लेना चाहता हूं। उन्हें छाती से लगाकर सोना चाहता हूं।'' विनोद का उक्त कथन स्पष्ट करता है कि माँ से अलग रहने पर भी उसे उनके संसर्ग की अभिलाषा है। वह माँ को भगवान के समान मानता है इसलिए जब उसकी बा उसे कहती है कि मायूस होने पर तू ध्यान लगाया कर, तब वह कहता है, ''बा, मैंने वह कोशिश शुरू कर दी है। रोज नहाने के बाद मैं ध्यानमुद्रा में बैठ जाता हूं पर विचित्र है बा, ध्यान में तू आ जाती है– तेरे कृष्ण नहीं।'' भगवान के स्थान पर बा का दिखाई देना उसके स्नेह को प्रकट करता है। वह प्रत्येक बात पत्र के माध्यम से अपनी बा को बताता है। उसके मन में गहरा विश्वास है कि इस संसार में केवल उसकी माँ ही अपनी है, बाकी सब रिश्ते तो स्वार्थ पर टिके हैं। गहन अंधकार एवं निर्णायक स्थिति में भी वह माँ से राय लेना नहीं भूलता। माँ की गोद के बिना तो वह स्वयं को अधूरा मानता है। माता–पिता के प्रेम और परिवार की आत्मीय ऊष्मा से अचानक कटकर, चौदह वर्ष की वयः संधि पर, हिजड़ों के पूरी तरह अपरिचित और भिन्न संसार में विनोद का आगमन उसके लिए एक त्रासद अनुभव था किन्तु इस त्रासद अनुभव के उपरान्त भी वह परिवार के सदस्यों की चिंता करना नहीं छोड़ता। वह माँ से अनुरोध करता है कि वह उसे रोज फोन करने की अनुमति दे, ताकि वह परिवार के विषय में जान सके। उसे परिवार के प्रत्येक सदस्य की चिंता होती है। बड़े भाई का बा के साथ किया गया अभद्र व्यवहार उसे व्यथित करता है। गर्भवती भाभी तथा बीमार पिता की भी उसे चिंता रहती है। अपनी बा से उसका यह कहना– ''पप्पा का ब्लड प्रेशर नापती रहती है न, बा! ... तुझे और पप्पा को सीढ़ियां तो नहीं चढ़नी पड़तीं। कालबा देवी वाले घर की तरह लिफ्ट है न बिल्डिंग में। लिफ्ट न हो तो लिफ्ट वाला घर ले ले। पप्पा को पेसमेकर लगा है न? मोबाइल फोन इस्तेमाल करना भी ऐसे में मना है, लेकर तो नहीं दे दिया उनको।'' विनोद की पिता के प्रति चिंता एवं स्नेह को प्रदर्शित करता है जो इस बात का प्रमाण है कि स्थान की दूरी भी विनोद के स्नेह को कम नहीं कर पाई है।

चेतनशील : विनोद एक ऐसा चेतनशील प्राणी है जो केवल अपने जीवन को ही अलग दिशा नहीं देना चाहता बल्कि अपने सम्पूर्ण समुदाय की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने की कामना रखता है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम वह शिक्षित होना चाहता है और अन्य को भी शिक्षित होने की प्रेरणा देता है क्योंकि उसका मानना है कि ''पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए।'' वह जननांग दोषी समाज की विसंगतियों और सीमित विकल्पों से भली–भाँति परिचित है, इसके बावजूद भी वह उनकी स्थिति में परिवर्तन की आकांक्षा रखता है। वह विरासत में मिले नरक को अभिशाप के रूप में न स्वीकारते हुए इससे मुक्ति का मार्ग खोजना चाहता है और इसके लिए किन्नर समुदाय व समाज की मानसिकता में बदलाव को आवश्यक मानता है। यह उसकी चेतनशील प्रवृत्ति ही है कि जब विधायक द्वारा उसे किन्नर समुदाय के सम्मुख आने का अवसर मिलता है तो वह विधायक की इच्छानुसार इस समुदाय को वोट बैंक की रणनीति का शिकार नहीं बनाता बल्कि इस अवसर को उनमें चेतना का संचार करने, समाज की

मानसिकता बदलने तथा सरकार के समक्ष इनके अस्तित्व संकट को सामने लाने में प्रयोग करता है। वह इस समुदाय में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान का संचार करते हुए कहता है– ''....शपथ लीजिए यहां से लौटकर आप किसी लिंगदोषी नवजात बच्चे–बच्ची को, किशोर–किशोरी को, युवक–युवती को जबरन उसके माात–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे... जलालत का नरक भोग कुछ नहीं सीखे आप?... इस अवमानना को झेलने से इंकार कीजिए। कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, ईंट–गारा ढोइए, जो चाहे, सो कीजिए, पाएंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।... आरक्षण निदान नहीं है। आत्मचेतना बुनियादी अधिकारों की मांग का पहला पायदान है।'' वह समाज से अपील करता है कि प्रत्येक लिंग दोषी संतान के परिवारवाले अपनी संतान का त्याग न करें क्योंकि कन्याभ्रूण हत्या से कम दंडनीय नहीं है जननांग दोषी संतान का त्याग। इन परिवारों से वह कामना करता है कि वे अपनी संतान की घर वापसी के लिए प्रयास करें। वह सरकार से भी यही माँग करता है कि वह ऐसे कानून बनाए जिससे अभिभावक बहिष्कृत बच्चों को अपने साथ रखें, माता–पिता में चेतना का निर्माण करे ताकि भविष्य में कोई भी लोकापवाद के भय से लिंग दोषी संतान को निष्कासित न करे। विनोद की यही इच्छा है कि तृतीय प्रकृति के तहत गिने जाने वाले जननांग दोषी समाज के हाशियाकृति, वंचित लोग अन्य नागरिकों की तरह पढ़े–लिखे और समाज की मुख्यधारा का हिस्सा बनें। उन्हें अदर्स की श्रेणी न देकर आरक्षित अथवा अनारक्षित श्रेणी में उनके जन्म के अनुरूप पहचान प्रदान की जाए। विनोद को इनका ताली पीट–पीटकर भीख माँगना स्वीकार्य नहीं, इसलिए वह इनमें चेतना द्वारा इनके आत्मसम्मान को जागृति करना चाहता है।

प्रेमी : प्रत्येक किन्नर भीतर से आत्मिक, मानसिक व अनुभूति के स्तर पर या तो स्त्री होता है या पुरुष। विनोद पुरुष प्रवृत्ति का है और यह उसके भीतर का पुरुष ही है जो पूनम जोशी के प्रति आसक्त होता है। वह उससे आत्मिक जुड़ाव महसूस करता है। जब वह आस–पास नहीं होती तब विनोद को उसकी कमी खलती है। इसी के साथ उसे बचपन की दोस्त ज्योत्सना की याद भी बराबर आती रहती है। अपनी माँ से अक्सर पत्र में वह ज्योत्सना के बारे में पूछता है, यहाँ तक कि वह माँ से यह भी कह देता है कि– ''...मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरूर करता। सब कुछ बता देता उसे। कह देता, तू मुझसे फेरे भर ले ले। अपनी इच्छाएँ जीने के लिए तू स्वतंत्र है। बच्चा हम गोद ले लेंगे। गोद नहीं लेना चाहेगी तो जिससे मर्जी हो, बच्चा पैदा कर ले। खुशी–खुशी मैं उसे अपना नाम दूंगा। वे सारे सुख दूंगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है।'' विनोद की यह बात उसकी प्रगतिवादी सोच को दर्शाती है। उसके भीतर छिपी प्रेम भावना कहीं–न–कहीं यह संकेत भी देती है कि सदियों से चली आ रही हमारी सामाजिक संरचना में बदलाव होना चाहिए। दूसरा विनोद का प्रेम आत्मिक प्रेम को प्रकट करता है।

अतः कहा जा सकता है कि विनोद अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रोकर समाज से दया–अनुकंपा की याचना नहीं करता। उसका चरित्र इतना उदात्त है कि वह केवल अपने पैरों पर ही खड़ा होने के लिए संघर्ष नहीं करता अपितु राजनीति द्वारा उपलब्ध कराए गये अवसर का लाभ उठाकर अपनी

हिजड़ा बिरादरी को भी ओढ़ी गई नियति से मुक्त होने का प्रबोधन देने के लिए प्रयास करता है। उसका चरित्र वस्तु स्थिति को स्वीकारने के साथ जीने के प्रति आशान्वित रहते हुए जीवन संघर्ष को स्वीकारने की चुनौती है तथा अपने श्रम के बल पर जीने का संदेश है।

'बा' (वंदना बेन शाह) : वंदना बेन शाह विनोद की माँ है जिसके लिए उपन्यास में विनोद द्वारा 'बा' का सम्बोधन किया गया है। यूँ तो वह अपने तीनों बेटों से प्रेम करती है लेकिन विनोद के प्रति उसका स्नेह अधिक प्रदर्शित हुआ है जिसका कारण विनोद का लिंग दोषी होना है। बेटे की इस शारीरिक विकृत को वह समाज से छिपाने का हर सम्भव प्रयास करती है क्योंकि वह जानती है कि जिस दिन यह सच्चाई सबके समक्ष आएगी, उसी दिन उसे बेटे से दूर होना पड़ेगा। उसे आशा है कि भविष्य में विज्ञान इस विकृति का भी कोई न कोई उपाय निकाल लेगा। वह बेटे को भी यही आशा देकर उसके आत्मविश्वास को बढ़ाती है– ''बावला', तूने यह भी समझाया था और छोकरों से तू अलग है। यह मान लेने में ही तेरी भलाई है, न किसी से बराबरी कर, न अपनी इस कमी की उनसे कोई चर्चा। समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा। वक्त के साथ नज़रिया बदलेगा।... हो सकता है, भविष्य में इस अधूरेपन का भी कोई इलाज निकल आए।...'' माँ द्वारा विनोद को दिए गए इस संदेश से जहाँ समाज की रुढ़िवादिता का आभास होता है वहीं लैंगिक अक्षमता से ग्रस्त पुत्र को माँ की सांत्वना जीवन के प्रति आशान्वित भी करती है।

चौदह वर्ष बाद जब हिजड़ों को उनके घर में जननांग विकृति बच्चे के होने की खबर मिलती है और वह उनके घर उसे ले जाने के लिए आते हैं तब विनोद के स्थान पर उसके छोटे भाई को दिखाकर उस समय तो वह विनोद को बचा लेते हैं लेकिन हिजड़ों की दमकी के भय से वंदना बेन विनोद की और भी चिंता करने लगती है। वह विनोद के साथ रोज़ स्कूल जाने लगी। जब तक कक्षाएँ चलती रहती वह वहीं बैठकर उसका इंतजार करती, किन्तु शाटिका के दर्द के कारण वह अधिक देर ऐसा न कर सकी और विनोद का स्कूल जाना बंद हो गया। साथ ही घर में उत्पन्न हुए विरोध तथा लोकलाज के भय से जब विनोद को हिजड़ों के साथ भेज दिया गया तब माँ के लिए पुत्र वियोग शाटिका के दर्द से भी अधिक पीड़ादायक होता है। परिवार में कोई विनोद से संबंध नहीं रखना चाहता था लेकिन 'बा', विनोद को पत्र व्यवहार के लिए अपना निजी पोस्ट बॉक्स नं. देती है। इसी के आधार पर उपन्यास का शीर्षक 'पोस्ट बॉक्स नं. 203– नाला सोपारा' रखा गया है। परिवार से छिपकर विनोद से पत्राचार कर उसके दुख–दर्द में शामिल होना एक माँ के प्रेम को ही प्रकट करता है क्योंकि माँ के लिए सभी संतानें समान होती हैं जिसका जीवंत उदाहरण 'बा' के माध्यम से प्रकट होता है।

'बा' विवश होकर विनोद को स्वयं से अलग तो करती है लेकिन उसके मन में इसका अपराधबोध है जो उसे सुख से जीने नहीं देता। उसे सदैव यह अनुभव होता है कि उसने अनजाने में या मजबूरी में कोई

अपराध किया है। इसलिए वह विनोद को घर तो नहीं ला सकती लेकिन उसके प्रति जुड़ाव से अपने अपराध बोध को कुछ कम करने का प्रयास करती है। वह विनोद से कहती है– "तू विश्वास कर सकता है तो अपनी बा पर विश्वास न डिगने दे। तू जिस नरक से गुज़र रहा है, वहाँ मैं तेरे साथ नहीं मगर तेरे उस नरक की हर गली मेरी छाती से होकर गुज़रती है।" यह विश्वास आमने–सामने नहीं वरन् चिट्ठियों के माध्यम से हो रहा है पर व्यक्त आत्मीयता माँ के संवादों को जीवंत बनाती है। बेटे के वियोग में बा, उसकी पसंद का खाना भी नहीं बनाती है। विनोद को केसर वाला श्रीखंड प्रिय था लेकिन जब से विनोद उनसे बिछड़ा तब से बा ने घर में श्रीखण्ड नहीं बनाया। वह नये घर में भी विनोद के स्कूल बैग और पानी की बोतल को दरवाज़े के पीछे लटकाकर रखती है क्योंकि उसने केवल बेटे को खोया नहीं उसके अभाव को झेला भी है। वह उसकी वस्तुओं को स्पर्श कर उसके अभाव को महसूस करना चाहती है।

विनोद परिवार से अलग रहकर दुखी है इस बात को जानकर बा उसे संदेश भेजती है कि जब भी अनमना अनुभव हो या उदास हो जाए उस समय ध्यान मुद्रा में बैठकर कृष्ण का स्मरण किया कर, ध्यान में बाँसुरी के स्वर तुझे आनन्द प्रदान करेंगे। ऐसा कहकर बा, बेटे के अकेलेपन को दूर करने का प्रयास करती है। सामान्यतः माँ अपने विकलांग बच्चे के प्रति अत्यधिक ममत्व रखती है ऐसे में जिस बच्चे को घर से निष्कासित कर कसाइयों के हाथ सौंप दिया हो उसके प्रति तो वह और भी अधिक ममतापूर्ण हो जाती है। कभी–कभी माँ की ममता उसे साहसी एवं विद्रोही भी बना देती है। बा भी ऐसी ही माँ के रूप में चित्रित है। समाज और घरवालों के दबाव के आगे झुकी बा आखिर में विनोद को न केवल सार्वजनिक स्वीकृति देती है बल्कि पिता को भी अपने ट्रांसजेंडर बेटे को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लेती है। उपन्यास के अंत में अखबार में बेटे को घर वापस बुलाने का आग्रह और संपत्ति में हिस्सा देने की बात माँ के सबल पक्ष को सामने लाती है।

अतः कहा जा सकता है कि बा उस ममतायी माँ के रूप में चित्रित हुई है जो अपनी कोख की खातिर समाज का भी विद्रोह कर देती है। उसके लिए उसकी संतान चाहे शारीरिक विकृति का शिकार ही क्यों न हो, पर वह उसे अपने पास रखना चाहती है। साथ ही बा का चरित्र उस माँ को हमारे सामने लाता है जो अपनी संतान के वियोग को सह रही हो।

7.6.2 गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण

प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त उपन्यास में गौण पात्रों की संरचना भी हुई है जिनका वर्णन विनोद के पत्रों में हुआ है। वैसे तो बा का चरित्र भी विनोद के ही पत्रों में उभरता है किन्तु उसे प्रमुख पात्रों में इसलिए रखा गया है क्योंकि यह उपन्यास माँ–बेटे की परस्पर संवेदना को व्यक्त करता है। गौण पात्रों द्वारा कथा का विस्तार हुआ है लेकिन पत्रात्मक शैली के कारण उनके चरित्र पूर्ण रूप से उजागर नहीं हो पाए हैं। प्रमुख गौण

पात्रों में पूनम, सिद्धार्थ और विधायक ही आते हैं। इनके चरित्रों के जो बिंदु उभरकर सामने आए हैं उन पर यहाँ दृष्टिपात किया गया है।

1. **सिद्धार्थ** : सिद्धार्थ, हरीन्द्र शाह तथा वंदना बेन शाह का बड़ा बेटा है जिसे विनोद मोटा भाई कहकर पुकारता है। सिद्धार्थ विनोद की तरह हिजड़ा नहीं, बल्कि पूर्ण पुरुष है। वह सामाजिक अपयश के कारण विनोद को घर में रखने के पक्ष में नहीं है और जब विनोद को हिजड़ों को सौंप दिया गया तो फिर वह परिवार को भी उससे कोई संबंध नहीं रखने देता। वह भाई की एक कमी के कारण उसके प्रति असंवेदनशील हो गया है। वह विनोद को 'काली परछाई' मानता है जिसका साया वह अपने घर पर नहीं पड़ने देना चाहता। विनोद के प्रति बा के स्नेह को देखकर वह उनपर क्रोध करते हुए कहता है– ''अपनी कोख से एक ही औलादा पैदा की है बा तूने? हमें कहीं से पड़ा उठाकर लाई है जो तू ...'' सिद्धार्थ का यह कथन उसके स्वार्थ को प्रदर्षित करता है क्योंकि वह केवल अपने बारे में सोच रहा है। विनोद और माँ की पीड़ा का उसे अहसास ही नहीं है। पत्नी की गर्भावस्था के दौरान तो वह माँ के कमरे में टंगी विनोद की तस्वीर पर भी आपत्ति जताता है क्योंकि उसका मानना है कि पत्नी के गर्भस्थ शिशु पर इसका गलत प्रभाव पड़ेगा। विनोद के जननांग दोषी होने के कारण वह इतना भयभीत है कि अपनी पत्नी की जल की जाँच के दौरान शिशु के जननांग पर विशेष ध्यान देता है ताकि वह ठीक से विकसित हो रहा है या नहीं? क्योंकि थोड़ी भी शंका होने पर वह बच्चा गिरवा देना चाहता था। वह तो बा से भी बेशर्मी की सीमा लांघते हुए पूछता है कि तुम्हारे या पापा के खानदान में पहले भी क्या कोई जननांग दोषी पैदा हुआ है। वह तो बेटे के दायित्व से भी मुख मोड़कर पत्नी संग उसके मायके रहने लगता है। जबकि बड़ा बेटा होने के नाते अपने बीमार माता–पिता के प्रति भी उसके कुछ दायित्व होते हैं किन्तु वह उनकी चिंता किए बिना अपने जीवन में ही व्यस्त रहता है।

2. **विधायक** : विधायक का चरित्र आज के भ्रष्ट नेता की तस्वीर सामने लाता है। प्रायः नेता अपने राजनीतिक पद पर बने रहने के लिए जनता के समक्ष अच्छाई का ढोंग रचते हैं लेकिन भीतर से उसी जनता की भावनाओं से खेलकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। विधायक भी अपनी कोठी में ठीक साढ़े नौ बजे जनता दरबार लगाता है ताकि जनता की शिकायतें सुनी जा सकें। वह विनोद की भी सहायता करता है। उसे कम्प्यूटर क्लास में दाखिला दिलवाकर अपने कार्यालय में नौकरी भी देता है। यहाँ तक तो एक अच्छे नेता का रूप सामने आता है लेकिन किन्नर आरक्षण को वोट बैंक के लिए प्रयोग करना, उनके वास्तविक चरित्र को उजागर करता है तथा किन्नर विनोद की सहायता के पीछे उनकी राजनीतिक मंशा का भी बोध होता है। विध ाायक कितना भी भला और अपने बचपन की देश–विभाजन संबंधी पृष्ठभूमि के कारण मानवीय तत्व से भरपूर हो आखिर वह आज की राजनीति का ही प्रतिनिधित्व करता है। वह किन्नर समुदाय के लिए आरक्षण का विशेष प्रावधान करके न सिर्फ अपना और अपनी पार्टी का श्रेय चाहता है बल्कि इसमें उसे भावी चुनाव में वोट–बैंक की संभावनायें भी दिखाई देती हैं। इसलिए इस समुदाय को अपने पक्ष में करने के लिए वह इसी समुदाय के

व्यक्ति विनोद को चुनता है जो उसकी स्वार्थी सोच को सामने लाता है। पूनम के साथ उसके अमेरिका से लौटे भतीजे और उसके साथियों का क्रूर व निर्मम व्यवहार तथा विनोद से मतभेद होने पर उसकी हत्या का प्रसंग विधायक के वास्तविक रूप को उभारता है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि नेता के लिए उसका अपने पद पर बने रहना आवश्यक है जिसके लिए वह जनता की भावनाओं के साथ मन चाहा स्वांग भी रच सकता है और समय आने पर अपनी राह में आने वाली निर्दोश जनता की हत्या भी।

3. **पूनम** : पूनम किन्नर दल की नटखट नचनियाँ है जो पूर्ण रूप से स्त्रैण हावभाव और गुणों से परिपूर्ण है। एक बार वह जो निश्चय कर लेती है तो फिर उसे पूरा करके ही छोड़ती है। वह पढ़ना–लिखना सीखना चाहती है। जब विनोद सभी के खाते खुलवाता है तो उस समय पूनम इस बात पर अड़ गयी कि जब तक वह अपना नाम ठीक से लिखना नहीं सीखती तब तक अपना खाता नहीं खुलवाएगी क्योंकि वह अँगूठा लगाने के पक्ष में नहीं थी। अपनी इसी जिद्द के चलते वह अपना नाम लिखना सीख जाती है। पूनम के पास नृत्य प्रतिभा भी है। विनोद पूनम की नृत्य प्रतिभा के विषय में अपनी बा को बताते हुए कहता है– ''उसका पदसंचालन गजब का है। अंग–प्रत्यंग में चपलता है। भाव–अभिव्यक्ति में गहराई। फिरकियां लेती है तो तकली सी मिनटों घूमती रहती है। चुम्बकीय आकर्षण में बंधे हुए मुग्ध दर्शकों को महसूस होता है, वह किसी अल्हड़ नदी के प्रवाह में तैर रहे हैं, कोई भी नृत्यांगना उसकी नृत्य प्रतिभा को देख उसकी मुरीद हुए बिना नहीं रह सकती ....''

पूनम सकारात्मक सोच के साथ जीवन निर्वाह करती है। उसकी इसी सकारात्मकता के विषय में विनोद माँ से कहता है– ''मन ही मन मैं उसके सकारात्मक स्वभाव का मुरीद हूँ। उसमें स्त्रियोजित ठुनक है, तो परस्परता को निबाहने का विवेकसम्मत धैर्य भी।..... त्रिशंकु अवस्था में जीने से इन्कार कर उसने स्वयं अपना लिंग अपनी मर्ज़ी से निर्धारित कर लिया है। वह भूल रही है और शायद पूरी तरह भूल जाना चाहती है कि वह एक किन्नर है।'' विनोद के प्रोत्साहन से वह 'उमंग सोसायटी' में गाड़ियाँ धोने का काम भी करती है।

पूनम के मन में विनोद के लिए प्रेम भावना है। वह विनोद का पूर्ण ध्यान रखती है जब वह रोज सुबह 'उमंग सोसायटी' में गाड़ियाँ धोने के लिए जाता है तब पूनम जल्दी उठकर उसके लिए चाय बनाती है। वह स्त्रैण गुणों से पूर्ण है इसलिए बस, ट्रेन में पूनम के हाथ पसारते ही सवारियाँ उसे पैसे देने लगती हैं। इसी कारण उसके पास पैसे रहते हैं, जब विनोद उससे कुछ रुपये की मांग करता है तब वह कहती है– ''हाय मेरे सलमान, मेरा सब ले ले नामुराद, पैसे क्या चीज़ है।'' इतना ही नहीं विनोद की आगे पढ़ने की इच्छा को जानकर वह विनोद को आठ हज़ार रुपये हाथ में पकड़ा देती है। पूनम की पहचान से ही विनोद को विधायक की सहायता और उनके कार्यालय में नौकरी मिलती है। विनोद के रहने के लिए विधायक ने एक कमरे की व्यवस्था भी की थी। पूनम जब भी उसके पास जाती उसके कमरे को व्यवस्थित कर दिया करती थी। वह

विनोद की हर आवश्यकता का ध्यान रखती है। विधायक के फार्म हाउस में नृत्य प्रस्तुत करने के पश्चात् जब विधायक का भतीजा अपने चार मित्रों के साथ मिलकर पूनम का शारीरिक शोषण करते हैं और अस्पताल पहुँचा दी जाती है तब भी वह स्वयं पर घटित हुए भयंकर हादसे को विस्मृत कर विनोद को बा के बीमार होने की सूचना देकर उसे बा से मिलने के लिए भेजती है। पूनक का विनोद के प्रति जो प्रेम है उसमें भावना, उदात्तता और मनोवैज्ञानिकता है। वास्तव में लेखिका ने विनोद के पश्चात् पूनम का ही विस्तृत एवं गहराई से चरित्र–चित्रण किया है। उसके जीवन की त्रासदमयी स्थितियाँ पाठक को संवेदनशील बनाकर उनकी आँखों को नम करती हैं।

7.7 सारांश

उपन्यास में पात्रों का चरित्र–चित्रण किन्नर विमर्श के परिप्रेक्ष्य में ही किया गया है। इन चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने समाज के तीसरे समुदाय की उपेक्षा और तिरस्कार का चित्रण किया है जो इस सच्चाई को सामने लाता है कि जिस प्रकार समाज में बलात्कृता स्त्री किसी अपराध के बिना अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार व समाज की उपेक्षा का दोहरा दण्ड भोगती है, वही स्थिति समाज में लिंग दोष से ग्रस्त बच्चों की होती है किंतु इनके जीवन में भी परिवर्तन हो सकता है यदि समाज, सरकार तथा स्वयं इस वर्ग की मानसिकता परिवर्तित हो जाए। विनोद का चरित्र इसी परिवर्तित मानसिकता को प्रदर्शित करता है।

7.8 कठिन शब्द

1. प्रवृत्तियाँ
2. रोचकता
3. बालोचित
4. अनुकंपा
5. वयःसंधि
6. आसक्त
7. आशान्वित
8. शाटिका
9. निष्कासित
10. गर्भस्थ

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आलोच्य उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में किन्नर जीवन पर प्रकाश डालें?

2. 'नाला सोपारा' के कथ्य का विश्लेषण करें।

3. 'नाला सोपारा' उपन्यास के शिल्प पर प्रकाश डालें।

4. पोस्टबाक्स नं. 203 'नाला सोपारा' की पत्रात्मक शैली पर चर्चा कीजिए।

5. नाला सोपारा उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।

6. नाला सोपारा उपन्यास के गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।

7. विनोद का चरित्र–चित्रण कीजिए।

8. बा के चरित्र को स्पष्ट करें।

9. पूनम के चरित्र पर प्रकाश डालें।

10. सिद्धार्थ का चरित्र–चित्रण कीजिए।

11. विधायक के परिप्रेक्ष्य में नेता का रूप स्पष्ट करें।

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

1. हिन्दी उपन्यासो ंमें किन्नर विमर्श – डॉ. मधु खराटे
2. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर – डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ़ता नियाज़

– – – – –

कहानीकार भीष्म साहनी

8.0 रुपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 चिन्तनपरक कहानीकार भीष्म साहनी

8.3.1 सामाजिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी का दृष्टिकोण

8.3.2 राजनीतिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी का दृष्टिकोण

8.3.3 आर्थिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी का दृष्टिकोण

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

8.1 **उद्देश्य** : भीष्म साहनी की कहानियों में जन सामान्य का जीवन और अंतर्विरोध किस रूप में अभिव्यक्त हुआ है, यह जान सकेंगे।

भीष्म साहनी के चिंतन पर किस विचारधारा का प्रभाव है। भीष्म साहनी ने अपने युग की परिस्थितियों को किस सीमा तक आँका है और प्रगतिशील विचारों से ओतप्रोत साहनी जी के रचना संसार में सामाजिक चेतना और दायित्व किस स्तर तक व्याप्त है, यह जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना : भीष्म साहनी का समस्त साहित्य ही भारतीय जीवन के सुख–दुःख में शामिल अनुभव है। प्रगतिशील विचारों से प्रभावित वे सदा ही मेहनत करने वाल वर्ग और शोषण की शिकार जनता के साथ खड़े होते हैं। वे उन तमाम लोगों से जुड़े हुए हैं जो जीवन में संघर्ष करते हुए जी रहे हैं। उन्होंने जीवन में मनुष्य और चीज़ों के बीच उपस्थित द्वंद्व को समझने की कोशिश की है। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की जनता के जीवन को, उसके संघर्ष और यातना को समझने की चेतना उनकी कहानियों में झलकती है।

8.3 कहानीकार भीष्म साहनी : भीष्म साहनी अपने युग के एक ऐसे रचनाकार रहे हैं जिनका समाज के प्रति दृष्टिकोण बड़ा स्वस्थ और स्पष्ट रहा है। मूलतः समाजवादी चेतना से जुड़े रहने के कारण समाज के प्रति उनकी दृष्टि प्रगतिशील रही है। यही कारण है कि समाजवाद की समष्टि चिंतनधारा के प्रभुत्व कहानीकार के रूप में भीष्म साहनी का नाम एक सशक्त कथाकर के रूप में उभरता है। उनकी कहानियों में जन–समान्य का जीवन और अंतर्विरोध बड़े सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

किसी भी विचार दर्शन या चिंतन के प्रभाव को एक विशिष्ट सीमा तक ही भीष्म जी ने ग्रहण किया है। यह सच है कि प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख कहानीकारों में उनका नाम लिया जाता है पर गौर से उनके साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट होगा कि मूलतः वह मानवतावादी है। इनका मानवतावाद मार्क्सवाद चिंतन और समाजवादी दर्शन से प्रभावित है।

भीष्म साहनी की कहानियों का मुख्य प्रतिपाद्य इस देश का मध्य और निम्न–मध्यवर्गीय समाज है। भारतीय दर्शन और चिंतन का प्रभाव कहीं–कहीं उनकी कहानियों पर स्पष्ट लक्षित होता है। हिन्दी के जिन कहानीकारों ने प्रेमचन्द की परम्परा को स्वीकारा है या आत्मसात किया है उनमें भीष्म जी अलग से पहचाने जाते हैं क्योंकि बनावट नाम की कोई भी चीज़ साहनी में कहीं भी नहीं है। इनकी कहानियों में आधुनिकता बोध और यथार्थवादी विचारधारा के अंतर्विरोधों को सामाजिक और पारिवारिक प्रसंगों में व्यक्त किया है। लेखक की कहानियों में कहीं भी दैववाद या अद्भुत शक्ति पर लेखक का विश्वास नहीं है। उनके लिए तो मानव जीवन और मानवीय जीवन के सुख दुःख ही सब कुछ है। भीष्म साहनी के सन्दर्भ में बलराज साहनी का कहना है कि "भीष्म के मिजाज़ में एक और खूबी मैंने यह देखी है कि उसमें जल्दबाज़ी नहीं है। सोचकर और थोड़ा बोलते हैं। कहानी की कथावस्तु का चुनाव भी वह बड़े धीरज से करता है। साधारण लोगों के जीवन की छोटी–छोटी बातें वह खुद अपनी आँखों से देखता है। उन लोगों की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। पात्रों को कल्पना से नहीं जीवन से खोजता और चुनता है। लिखते समय भी वह यथार्थ में ज़्यादा और अपनी कल्पना से कम काम लेता है।"

8.3.1 सामाजिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी का दृष्टिकोण : मूलतः इनकी कहानियाँ मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश, खोखली मर्यादाओं, झूठी नैतिकता और बाह्य आडम्बर जैसे विषय को अपनी मार्मिक शैली

के माध्यम से अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। भीष्म जी की कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं का चिंतनपरक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है।

भीष्म साहनी का आगमन जिस युग में हुआ वह युग सामाजिक परिस्थितियों के लिए बड़ा चर्चित एवं चिन्तनपरक रहा है। देश–विभाजन की त्रासदी ने समाज को झकझोर डाला, वहीं आज़ादी के बाद बदलती परिस्थितियों से जनता के मोहभंग की स्थिति ने सामान्यजन एवं रचनाकारों को प्रभावित किया। भीष्म साहनी की कहानियों में भी इन्हीं स्थितियों की अभिव्यजंना हुई है। सामाजिक जीवन की समस्त समस्याओं के प्रति भीष्म साहनी ने चिंतन–मनन किया है। स्वतन्त्रता के बाद की कहानियों ने विस्तृत जीवन परिवेश लिया है और उसके विविध पक्षों के उभरे दबे कोनों को उजागर करने का प्रयत्न किया है। औद्योगीकरण, मशीनीकरण के प्रभाव से जो परिवर्तन हुआ इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता है और परिणामस्वरूप जीवन के मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। परिस्थितिजन्य जीवन मूल्यों के प्रति भीष्म साहनी बहुत सजग दिखाई देते हैं, इनकी कहानियों में परिवर्तित जीवन मूल्यों को सटीक अभिव्यक्ति मिली है। प्रगतिशील विचारक भीष्म साहनी के लिए मनुष्य में स्नेहभाव, साहचर्य और विश्वास अधिक महत्वपूर्ण है। वह एक ऐसे धर्म की स्थापना करना चाहते हैं जिसमें सत्य, न्याय और समानता को स्थान दिया जाए।

लेखक ने मध्यवर्गीय लोगों के बदलते जीवन मूल्यों को उद्घाटित करने के साथ–साथ उनके फूहड़पन व्यवहार को भी दर्शाया है। रचनाकार मध्यवर्गीय लोगों की प्रगति से प्रसन्न तो है ही, लेकिन लेखक चिन्ता भी दर्शाता है कि प्रगति के साथ–साथ वह निरन्तर अपने दायित्वों को भूलता जा रहा है, उनमें स्नेह जैसे भाव का लुप्तीकरण होता जा रहा है, परिवार का विघटन होने के साथ, घर में बुजुर्गों के प्रति प्रेम के बजाये उपेक्षा भाव जागृत हो रहा है। जिस समाज में पैसे के तराजू पर प्रसन्नता तोली जाती हो, प्रेम का भाव एवं सहानुभूति तोली जाती हो, प्रेम का भाव एवं सहानुभूति एक दूसरे के प्रति न हो तो ऐसा समाज विकसित समाज नहीं कहलाया जा सकता है।

'चीफ की दावत' कहानी में शामनाथ नाम का एक व्यक्ति है, जिसके घर शाम के वक्त चीफ के लिए पार्टी है। शामनाथ की माँ बहुत ही बूढ़ी और बेडौल शरीर की निरक्षर देशी औरत है। यद्यपि शामनाथ को पढ़ाने–लिखाने और एक ओहदेदार बनाने में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। शामनाथ और उसकी पत्नी इस बात से परेशान है कि चीफ की दावत के समय माँ को कहाँ कर दिया जाए, ताकि उसकी नज़र से माँ को बचाया जाए और मेरी भद्दगी न हो पाए। परन्तु जिस बात से शामनाथ सबसे ज़्यादा परेशान था, अंत में वही होता है। चीफ को उस पूरी पार्टी में यदि कोई पसन्द आता है तो माँ के द्वारा बनाई गई फुलकारी। बेटे के व्यवहार से तंग माँ हरिद्वार जाने का निश्चय कर लेती है, परन्तु पार्टी की सफलता का सबसे बड़ा कारण माँ को पाकर आलिंगन में भर लेता है। लेकिन जब माँ को यह पता चलता है कि एक नई फुलकारी बनाकर

चीफ को भेंट कर देने से मेरे बेटे की पदोन्नति हो जाएगी तो हरिद्वार जाने का विचार त्याग कर वह एक बार पुनः बेटे के भविष्य के लिए अपनी रोशनी की अंतिम किरण भी उस पर समर्पित कर देती है। मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ जो आज़ादी के बाद देश में विकसित हुआ, उसमें इस जीवन की आंतरिक और बाह्य स्थिति, विसंगतियों, विचित्रताओं और अमानवीयता से लथपथ हो गई है। चीफ की दावत कहानी का उदाहरण दृष्टवय है – ''और माँ, आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है। माँ लज्जित–सी आवाज़ में बोली, क्या करूँ बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी में उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।'' 'चीफ की दावत' कहानी का मूल स्वर इसी विडंबना को उद्‌घाटित करना है कि 'शामनाथ' जैसे चरित्र हमारे मध्यवर्गीय की देन है।

साहनी जी की बहुचर्चित कहानियों में वांङ्चू का स्थान भी सर्वश्रेष्ठ है। 'वांङ्चू' एक ऐसे बौद्ध भिक्षु की कहानी है, जो चीन से भारत बौद्ध धर्म को जानने, समझने और महाप्राण की जन्मस्थली में रहकर उसके संबंध में कार्य करने आया है। भारत के बौद्ध धर्म संबंधी अवशेषों और संस्थाओं में घूमने वाला भावुक चीनी बौद्ध वांङ्चू समकालीन जीवन–प्रवाह से बिल्कुल कटा हुआ रहता है। लगभग उसकी पन्द्रह वर्षों के बाद अपने देश लौटने की इच्छा होती है और वह चीन कुछ दिनों के लिए चला जाता है। दुर्भाग्य की बात यह होती है कि भारत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सामाजिक परिवर्तनों से ही वह निर्लिप्त नहीं रहता बल्कि चीन की गतिविधियों से भी अनजान बना अपने ध्येय में मग्न रहता है। शायद इसी वजह से भारत और चीन जाना और चीन से पुनः भारत लौटने का अव्यावहारिक निर्णय लेता है। फलस्वरूप चीन के अधिकारी उसे भारत का जासूस समझते हैं और भारत के अधिकारी उसे चीन का। वांङ्चू इसी शक के दोनों पाटों में बुरी तरह से पिसता रहता है। वांङ्चू जिस रोज कलकत्ता पहुँचता है, उसी दिन सीमा पर चीनी और भारतीय सैनिकों के बीच मुठभेड होती है और दस भारतीय सैनिक मारे जाते हैं। वह देखता है कि लोग उसे घूर–घूर कर देख रहे हैं। वह स्टेशन के बाहर अभी निकला ही था, कि दो सिपाही आकर उसे पुलिस के दफ्तर ले गये और वहां घण्टे भर एक अधिकारी उसके पासपोर्ट और कागज़ों की छानबीन करता रहा। पुलिस से छूटने के पश्चात वह समाज की बेरुखी एवं सन्देहपूर्ण दृष्टि का शिकार भी होता है। वांङ्चू जैसे ही रेल के डिब्बे में बैठता है कि लोग गोली–काण्ड की चर्चा कर रहे थे जैसे ही उन्होंने वांङ्चू को देखा तो वह उसे सन्देह भरी दृष्टि से देखते हैं एक बंगाली बाबू उचककर उठकर हाथ झटककर कहने लगता है कि '' या तो कहो कि तुम्हारे देशवालों ने विश्वासघात किया है, नहीं तो हमारे देश से निकल जाओ.... निकल जाओ..... निकल जाओ!'' भीष्म साहनी ने इस सन्दर्भ के माध्यम से स्पष्ट किया है कि व्यवहारिक राजनीति से प्रेरित तथा नियंत्रित, आज के युग में आदमी आदमी के रूप में नहीं, अपने देश–कालगत राजनीतिक, भौगोलिक, धार्मिक तथा नीतिगत सम्मतियों के आधार पर पहचाना जाता है और उन्हीं के चलते पुरस्कृत या दंडित होता है। राष्ट्रों की राजनीति कितनी निर्मम और अमानवीय होती है, इसे भारत तथा चीन के बीच के तनावपूर्ण संबंधों की चपेट में पिसते हुए वांङ्चू

नामक एक ईमानदार, निष्ठावान तथा सही अर्थों में एक सार्वभौमिक जीवन जीने वाले बौद्ध शोधकर्ता की त्रासदी भरे जीवन के माध्यम से उभारा गया है।

बदलती हुई सामाजिक स्थितियों के परिणाम स्वरूप ही भीष्म साहनी की कहानियों में नारी के आध ुनिक और बदले हुए रूप का चित्रण हुआ है। समाज आज भी उसे परनिर्भर मानता है, लेकिन कहानीकार ने नारी की बदली हुई मानसिकता को परिलक्षित किया है। 'तस्वीर' कहानी की विधवा नारी अपने ससुर की हर यातना को सहन करती है, उसके साथ ही अपने ही बच्चों द्वारा किए गए उपेक्षणीय व्यवहार को भी झेलती है। बीती हुई बातों को याद करते हुए वह कहती है कि ''अपने बाप की तरह वह भी कड़वा बोला करता था। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी एक–दूसरे से कोसों दूर थे और दिन–प्रतिदिन दूर होते जा रहे थे। मैं नहीं जानती, उसने मुझे कभी प्रेम किया था या नहीं। प्रेम शब्द ही इतना बेतुका और निरर्थक जान पड़ता है।'' लेखक ने भारतीय समाज की गहरी पितृसत्तात्मक मानसिकता एवं पाखण्डी सोच को बार–बार उजागर किया है। नारी को दोयम दर्जे का मानने की परम्परा समाज में आजादी के बाद भी समाप्त नहीं है। आज़ादी के बाद औरत सचेत ज़रूर हुई है। समाज में स्त्री ने अपनी चेतनपूर्ण दृष्टिकोण की पैठ जरूर जमाई है और पुरुष प्रध ाान समाज को अपने होने का अहसास करवाया है। तस्वीर कहानी की विधवा स्त्री ससुर की प्रताड़ना का विरोध बड़ी ही सहजता के साथ करती नजर आती है। ससुर द्वारा उसे बार–बार घर के सामान को बेचने का रोब जमाया जाता लेकिन एक दिन वह ससुर को अपना निर्णय देती है इस बात की पुष्टि माँ के साथ घृणा करने वाली संतान से होती है। बच्चे पापा की तस्वीर के समक्ष जाकर कहते हैं कि – ''पापा, माँ कुर्सियाँ–मेज नहीं बेचेगी। तुम्हारी चीजें घर में ही रहेंगी। पापा, दादाजी ने माँ को बहुत डांटा, बहुत डांटा, मगर माँ नहीं मानी। पापा, हम यहीं पर रहेंगे तुम माँ को पैसे देकर भी नहीं गए, वह इतनी गरीब है।" 'तस्वीर' कहानी के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है कि पारम्परिक विधवा बहु भी प्रगतिशील विचारों को स्वीकार कर विद्रोह कर सकती है। 'तस्वीर' कहानी भारतीय नारी के बदलते तेवर को दर्शाती है।

राजनीतिक सन्दर्भ में भीष्म जी का दृष्टिकोण

1960 के बाद राजनीतिक स्थितियों ने जो करवटें ली और उसमें जो परिवर्तन आये उसने भीष्म जी की चेतना को प्रभावित किया है। मूलतः साठोत्तरी कहानी राजनीतिक स्थितियों की दृष्टि से स्वप्न भंग की ही कहानी है। आजादी के बाद का वातावरण भी विषैला एंव दमघोंटू ही था। जिनके भी हाथों में राजनीतिक सत्ता आई उसने ही भारतीय जनता को कोरे आश्वासनों की खेरात बांटी। भीष्म की कहानियाँ स्पष्ट करती है कि आज़ादी के बाद जनता का भ्रम टूट गया। देश के आम आदमी को समझ में आ गया कि आज़ादी मूलतः देश के पूंजीपतियों, भ्रष्ट नेताओं, रिश्वतखोर अफसरों और सुविधा भोगियों के लिए है। आम आदमी पहले से ज्यादा संकटग्रस्त हुआ। सरेआम जनता पर ही शक किया जाने लगा। प्रेम की भाषा बोलने वाली आम जनता के

सपनों को तोड़ा गया। राजनीतिक विवादों में जनता पहले भी पिसती रही और आज़ादी के बाद भी पिसती रही। लेखक ने राजनीतिक परिप्रेक्ष्य एवं व्यवस्था का चेहरा 'वाङ्चू' कहानी में बेनकाब किया है। इस समाज में वह भी राजनीति का शिकार होता है जो राजनीति से बिलकुल अनभिज्ञ है। आपसी राष्ट्रों के मतभेदों से किस प्रकार सामान्य वाङ्चू जैसे बौद्ध भिक्षु राजनीति का शिकार होते हैं, इसका चित्रण भीष्म साहनी ने बड़ी बारीकी से किया है। बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन हेतु भारत में आए वाङ्चू को न श्रीनगर में आने वाले नेहरु जी में रुचि रखता है और न ही अपने देश की राजनीति में। श्रीनगर में नेहरू जी के आने पर लोग उत्सुक थे, वहीं वाङ्चू संग्रहालय में जाने की रूचि को दर्शाता है। लेखक के एक साथी ने वाङ्चू से पूछा कि नेहरू जी कैसे लगे। लेकिन वह विशेष रूचि न दिखाकर केवल अच्छा कहकर संग्रहालय की ओर रूखस्त करने में ज़्यादा रूचि दिखाता है। तभी लेखक का मित्र कहता है कि ''यार, किस बूदम को उठा लाये हो ? यह क्या चीज़ है ? कहाँ से पकड़ लाये हो इसे ? ...... वाह, देश में इतना कुछ हो रहा हो और इसे रूचि ही न हो। .... अरे बाढ में जाये ऐसी पढ़ायी! वाह जी, जुलूस को छोड़कर म्युज़ियम की ओर चल दिया है।''

भारत के परिवेश से प्रेम करने वाला, सारनाथ को अपनी आत्मा मानने वाला वाङ्चू भारत और चीन की आपसी मुठभेड़ में पिस जाता है। सबसे मार्मिक स्थिति यह है कि आपसी राष्ट्रों के मतभेदों में एक ईमानदार व्यक्ति गुमनाम मर जाता है और समाज में एक दो व्यक्ति को छोड़ उस पर आँसू बहाने वाला कोई नहीं होता है। कहानीकार ने कहानी में कहा भी है 'कैंटीन का रसोइया' संसार में शायद यही अकेला जीव था जिसने वाङ्चू की मौत पर आंसू बहाए थे। युद्व की आड़ में वाङ्चू जैसे कई सामान्यजन पिस कर मर जाते होंगे शायद ही उनकी मृत्यु पर कोई आँसू बहाने वाला होता होगा। लेखक इस कहानी के माध्यम से राजनीति के घिनौने चेहरे को बेनकाब करना चाहता है। राजनीति में मानवीयता का स्थान नहीं के बराबर होता है। इसलिए ही भारत और चीन में बार–बार आवाजाही के लिए वाङ्चू पर शक किया जाता है। राजनीति की इस व्यवस्था में वाङ्चू की शोध से भरी ट्रंक भी उसकी नहीं रहती है और उस ट्रंक के कागज़ों को बनारस से दिल्ली भेजा जाता है। कागज़ों को बड़ी गहराई से देखा जाता है कुछ न मिलने पर भी उन कागज़ों पर बार–बार शक किया जाता है। वाङ्चू को जब पता चलता है कि उसके कागज़ों को दिल्ली भेज दिया है तो वह सिर से पैर तक काँप जाता है। पुलिस–अधिकारी और वाङ्चू का संवाद दृष्टवय है ''वे मेरे कागज आप मुझे दे दीजिए। उन पर मैंने बहुत कुछ लिखा है, वे बहुत ज़रूरी हैं। मुझे इन कागज़ों का क्या करना है, आपके हैं, आपको मिल जायेंगे।'' वाङ्चू कहानी राजनीति के अमानवीय चेहरे को बेनकाब करने वाली कहानी है।

आर्थिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी की कहानियों का दृष्टिकोण

भीष्म साहनी की कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जनजीवन के आर्थिक पक्ष का भी चित्रण मिलता है। बदलते परिवेश में आर्थिक स्थितियों ने जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन लाया है। वर्तमान समय में पैसा जीवन

का सबसे महत्त्वपूर्ण मूल्य बन गया है। पैसे की भाषा बोली जाती है। पैसे के आधार पर ही सम्बन्ध बन और बिगड़ रहे हैं। बदलते आर्थिक मूल्यों के कारण संयुक्त परिवार की संकल्पना ही समाप्त होती जा रही है। व्यक्ति के जीवन और व्यवहार में मान्यताओं के मानदंड आज अर्थसत्ता ही तय करने लगी है। बढ़ते हुए अर्थकरण का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण भीष्म की चीफ की दावत कहानी में झलकता है। कहानी में शाम नाथ आर्थिक मोह में इतना तल्लीन हो चुका है कि वह अब रिश्तों की मिठास और माँ के वात्सल्य प्रेम को भी भूल चुका है। वात्सल्य की प्रतिमूर्ति शामनाथ के लिए वस्तु बन जाती है इसलिए बूढ़ी मां को और वस्तुओं की भांति ही सजाने और संवारने में पति पत्नी चिन्तित दिखाई देते हैं। शामनाथ जिस कम्पनी में काम कर रहा है वह अमेरिकन कंपनी है जो भारत से मुनाफा कमा कर विदेश ले जा रही है। भारत का नवोदित मध्यवर्ग उसमें काम करके उसी तरह 'सुखसाज' महसूस कर रहा है जिस तरह भारतेंन्दू हरिशचंद्र ने अपनी मशहूर रचना, भारत दुर्दशा में दर्ज किया था 'अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी। धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।' भीष्म जी की कहानी में शामनाथ ऐसी ही कंपनी में प्रमोशन के लिए अपने बॉस को दावत देकर उसे खुश करने की जुगत कर रहा है। ''आखिर पाँच बजते–बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल, सब बरामदे में पहुँच गये। ड्रिंक का इन्तज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलँगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गयी, माँ का क्या होगा?

शामनाथ तरक्की एवं पैसे के पीछे इतना अन्धा हो चुका होता है कि माँ का व्यवहार ही उसे पसन्द नहीं आता है। बेटे की बेरुखी को देखकर माँ हरिद्वार जाने का निर्णय करती है। लेकिन बेटा हरिद्वार बदनामी के डर से मना करता है। प्रमोशन के अपने अवसर को और अधिक मज़बूत करने के इरादे से ही वह मां को वृद्वावस्था में भी, चीफ के लिए 'फुलकारी' बना देने को मजबूर करता है, ''माँ तुम मुझे धोखा देके यूं चली जाओगी। मेरा बनता काम बिगाड़ोगी? जानती नहीं, साहब खुश होगा तो मुझे तरक्की मिलेगी!'' इस कहानी के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है हमारे समाज में एक ऐसा वर्ग है जो रिश्तों को जीता है, इन्हें निभाने के लिए हर संघर्ष का सामना करता है। जैसे बेटे की तरक्की की खातिर नज़रें कमज़ोर होते हुए भी फुलकारी बनाने का प्रण करती है। वही दूसरा वर्ग हमारे समाज का पढ़ा–लिखा मध्यवर्ग है जो तरक्की और पैसे की मज़बूती हेतु रिश्तों को बाज़ार में लाता है।

'वाङ्चू' कहानी का पात्र भी आर्थिक रूप से कमज़ोर था। कहानी में वाङ्चू लेखक को सरकार से अनुदान का छोटा–मोटा प्रबन्ध करने के लिए पत्र लिखता नज़र आता है। लेखक दिल्ली से उसके अनुदान का प्रबन्ध करवाता भी है।

'तस्वीर' कहानी के माध्यम से लेखक ने स्त्री की आर्थिक कमज़ोरी को दर्शाया है। आर्थिक रूप से

कमज़ोर स्त्री की परनिर्भरता स्वभाविक है। सदियों से आज तक नारी को आर्थिक कमज़ोरी ने ही दूसरों पर निर्भर रहने पर अत्याधिक मजबूर किया है। लेखक विधवा स्त्री के माध्यम से सम्पूर्ण स्त्रियों को जागरूक करने का पक्षधर है लेखक का मानना है कि आर्थिक परनिर्भरता महिलाओं को कभी भी अपने पैरों पर खड़ा नहीं होने देगी। 'तस्वीर' कहानी की विधवा स्त्री गरीबी के कारण दो जून की रोटी हेतु तथा बच्चों के पोषण हेतु ससुर पर निर्भर रहती है। आर्थिक कमज़ोरी के कारण ही वह ससुर द्वारा मानसिक प्रताड़ना सहने को मजबूर है। ससुराल में वह उपेक्षणीय व्यवहार को सहन करती ही है, लेकिन संतान का प्यार भी प्राप्त नहीं कर पाती है। विधवा स्त्री के बच्चों को भी यही लगता है कि माँ ही गलत है, वह पापा से प्रेम नहीं करती है इसलिए उनकी मृत्यु के बाद घर का समान भी बेच रही है। माँ की मनःस्थिति को छोटे बच्चे नहीं समझ पाते हैं। पापा की तस्वीर के समक्ष जाकर माँ की शिकायत लगाते हैं, इस तरह माँ का हृदय गरीबी की हालत में और छलनी होता है। आर्थिक रूप की विवशता ही विधवा स्त्री को चुप रहने को मजबूर करती है, लेखक ने इस पात्र के माध्यम से स्पष्ट किया है कि आधुनिक स्त्री चुप रहने वाली नहीं है और न ही विवशता की टोकरी सिर पर लाद जीवन का निर्वाह कर सकती है। ससुर द्वारा बार–बार पैसों से सम्बन्धित तंज कसना विधवा स्त्री को सहन नहीं होता है और कहानी के अन्त में बड़ी सहजता से ससुर के व्यवहार के प्रति विरोध करती है। बच्चों का पापा की तस्वीर के समक्ष का संवाद माँ की गरीबी को इस प्रकार व्यक्त करता है ''पापा, माँ कुर्सियाँ–मेज़ नहीं बेचेगी। .... तुम्हारी चीजें घर में ही रहेंगी। पापा, दादाजी ने माँ को बहुत डांटा, बहुत डांटा, मगर माँ नहीं मानी .... पापा, हम यहीं पर रहेंगे ..... तुम माँ को पैसे देकर भी नहीं गए, वह इतनी गरीब है।'' भीष्म साहनी के कहानियों के पारम्परिक स्त्री पात्र अन्याय नहीं सहते हैं, इसलिए विद्रोह के भाव उनमें बड़ी ही सहजता से पैदा हो जाते हैं। लेखक की चेतना इस बात का भी प्रमाण है कि स्वतन्त्रता के बाद की स्त्री अपने पैरों पर खड़े होना जानती है, इसलिए ससुर के किसी भी प्रकार के तानों को सहन करने के पक्ष में नहीं है। कहानी के प्रारम्भ में आर्थिक रूप से कमज़ोर होने के कारण विधवा स्त्री शोषण को सहन करती है लेकिन जागरूक होने के पश्चात विद्रोह का बिगुल भी बजाती है।

कहानी में ससुर गुज़ारा चलाने के लिए उसे घर की सारी चीज़ें बेच देने के लिए आदेश देते हैं। तब वह विधवा स्तब्ध रह जाती है। साहनी जी विधवा के प्रति सहानुभूति रखने वाले सुधारवादी दृष्टिकोण के कहानीकार थे। उन्होंने इस प्रसंग को इस विधवा नारी के मुख से इस रूप में प्रस्तुत कराया है – ''जी नहीं, मैं छोटा–मोटा काम ढूँढ लूँगी।'' यहां पर साहनी ने विधवा के प्रति थोड़ी सहानुभूति व्यक्त करते हुए, यह बताने का प्रयत्न किया है कि वह परिजनों के आतंक के साथ कर्मठ बनकर अपने बच्चों का पालन और जीवन यापन करना चाहती हैं। लेखक विधवा नारी के विडंबनापूर्ण जीवन से अवगत करवाने के साथ–साथ उसकी आर्थिक विषमता को भी चित्रित करते हैं।

भीष्म साहनी मानवतावादी कहानीकार हैं। वह परंपरित मूल्यों एवं संस्कृति के पुजारी हैं। साहनी अपनी मानवता को विश्व की मानवता का अंग समझते हैं। ईश्वर एवं धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। वे किसी भी अनिर्वचनीय, अलौकिक सत्ता पर विश्वास नहीं करते हैं और न ही वे रूढ़िगत धर्म के उपासक हैं। मनुष्यता ही उनका सबसे बड़ा धर्म है और भारतीय संस्कृति की वह ही आधारशिला है। भीष्म साहनी की सभी कहानियाँ मानवता की कहानियाँ हैं। 'वाङ्चू' कहानी के द्वारा लेखक विश्व प्रेम की स्थापना करता है। भीष्म साहनी संस्कृतियों के आदान–प्रदान के द्वारा प्रेम को बांटने के पक्षधर है। 'वाङचू' एक ऐसा पात्र है जो बौद्व धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन करता रहता है। वह भारत में मतवाला बना घूमता रहता है। महाप्राण की भक्तिपूर्ण कल्पना में इतना डूब चुका था कि वह सारनाथ में ही रहने लगा था। 'वाङचू' संस्कृति से प्रेम करने वाला ईमानदार व्यक्ति था। वह एक ऐसे शोधार्थी के रूप में उभरता है जो भारत एवं चीन के सांस्कृतिक सम्पर्क की बहुमूल्य कडी को जोड़ता है। 'वाङचू' जब चीन जाता है तो वहां के लोग भारत की संस्कृति के बारे में उत्सुकता दिखाते हैं – ''वहाँ 'वाङचू' देर तक लोगों को भारत के बारे में बताता रहा। लोगों ने तरह–तरह के सवाल पूछे, रीति–रिवाज के बारे में, तीर्थों, मेलों–पर्वों के बारे में, 'वाङचू' केवल उन्ही प्रश्नों का उत्तर दे पाता, जिनके बारे में वह अपने अनुभव के आधार पर कुछ जानता था।'' भारत–चीन के बीच 'वाङचू' गौण रूप से मानवता के धर्म का पालन कर रहा था। लेकिन 'वाङचू' को इस धर्म के अनुपालन का खतरा भी उठाना पड़ता है कि प्रशासन द्वारा उस पर सन्देह किया जाता है।

8.4 सारांश :

मूलतः भीष्म साहनी की कहानियों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि भीष्म साहनी ने अपने युग की परिस्थितियों को समझा है। कहानीकार का दृष्टिकोण मानवतावादी है। वह भारतीय समाज के मध्यवर्गीय समाज के अन्तर्विरोध को व्यक्त करता है। लेखक ने मध्यवर्गीय समाज के बदलते जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त किया है और साथ ही में आर्थिक मोह में संलिप्त होने के कारण अपने दायित्वों को भूलते जा रहे मध्यवर्गीय समाज के प्रति चिन्ता जताई है।

8.5 कठिन शब्द :

1. अंतर्विरोध
2. धीरज
3. निरक्षर
4. दृष्टवय
5. चिन्तनपरक

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. भीष्म साहनी एक चिन्तनपरक कहानीकार हैं। सिद्ध कीजिए।

2. भीष्म साहनी की कहानियों में कहानीकार के चिन्तन पर प्रकाश डालिए।

3. सामाजिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी जी के दृष्टिकोण को रेखांकित कीजिए।

4. राजनीतिक एवं आर्थिक सन्दर्भ में भीष्म साहनी की कहानियों पर प्रकाश डालिए।

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ ....

1. आलोचना त्रैमासिक पत्रिका : भीष्म स्मृति अंक – 2004, अंक – 17–18, अप्रैल–सितम्बर
2. भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय संबंध – डॉ. संजय गडपायले
3. भीष्म साहनी की प्रमुख कहानियों में 'व्यवस्था' का चित्रण – डॉ. के. श्याम सुन्दर
4. हिन्दी कहानी रचना और परिस्थिति – सुरेन्द्र चौधरी
5. भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य – डॉ. विवेक द्विवेदी
6. भीष्म साहनी के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प – डॉ. शर्मिष्ठा आई. पटेल

– – – – –

'चीफ की दावत' और 'वाङ्चू' कहानियों की मूल संवेदना

9.0 रुपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 भीष्म साहनी की कहानियों की मूल संवेदना

9.3.1 'चीफ की दावत' कहानी की मूल संवेदना

9.3.2 'वाङ्चू' कहानी की मूल संवेदना

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

- संवेदना के विषय में जान सकेंगे।
- भीष्म साहनी की कहानियों की मूल संवेदना के विषय में जान सकेंगे।
- भीष्म साहनी की कहानियों में बिखरते मानवीय सम्बन्धों की पड़ताल की जा सकेगी और वर्तमान

समय में सम्बन्धों में बिखराव के कारण क्या हैं और व्यक्ति समय की इस दौड़ में संवेदनहीन क्यों होता जा रहा है, यह भी जान सकेंगे।

9.2 **प्रस्तावना** – भीष्म साहनी प्रगतिवादी विचारधारा के कहानीकार हैं। मानवीयता ही उनके साहित्य का प्रमुख स्वर रहा है। इन्होंने भारतीय समाज के पिछड़े वर्ग की संवेदनाओं को व्यापक रूप में अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। भारतीय मध्यवर्ग जीवन का खोखलापन, उसकी विकृतियां और विसंगतियाँ इनकी कहानियों में बेनकाब हुई है। भीष्म जी का समस्त जीवन उनकी गहरी निष्ठा का प्रतीक है। नवीन जीवन मूल्यों को स्वीकारती उनकी कहानियों में अपूर्व क्षमता है। आज का व्यक्ति जिन कठिन स्थितियों से गुज़र रहा है और जिन अंतर्विरोधी ज़िंदगी की पीड़ाओं को लेकर जी रहा है, भीष्म जी की कहानियाँ उसी ज़िंदगी के जीवन–मूल्य और मानवीय संबंधों की खोज है, मानवीय संबंध और संवेदनाओं को अंकित करने वाली इनकी कहानियों में जीवन–मूल्यों को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई से चित्रित किया है।

9.3 **भीष्म साहनी की कहानियों की मूल संवेदना** – 'संवेदना' शब्द आज मनोविज्ञान और साहित्य, दोनों क्षेत्रों में विशेष प्रचलित शब्द है। दोनों क्षेत्रों में इस शब्द के भिन्न–भिन्न अर्थ लिए जाते हैं। मनोविज्ञान में संवेदना का अर्थ – 'ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव' ऐसा होता है। साहित्य में इस शब्द का अर्थ 'मानव–मन की गहराइयों में हिन्दी उदात वृत्तियाँ' ऐसा एक विशाल अर्थ लिया जाता है यह वृत्तियाँ ही मूलतः मनुष्य की अनुभूति हैं जो ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूतियों तक ही सीमित नहीं हैं। संस्कृत शब्दकोश में संवेदना का अर्थ–जीवन का व्यापक अनुभव, ज्ञान या अनुभूति ही संवेदना है। अतः संवेदना व्यापक अर्थ में 'अनुभूति' का भी व्यंजक शब्द है। हिन्दी शब्दकोश में डॉ. हरदेव बाहरी ने संवेदना का अर्थ – 'सुख–दुःख की अनुभूति या प्रतीति' माना है।

मनुष्य मूलतः संवेदनशील प्राणी है। संवेदना मानव के अंतर्मन की सर्वाधिक पवित्र भावना है। व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव को उसकी वैयक्तिक संवेदना कह सकते हैं। यदि जीवन में संवेदना न हो तो मनुष्य पाषाण हो जाता है। दूसरों के सुख–दुःख को कोमलता से महसूस करनेवाला हृदय ही न रहा तो मनुष्य के पास मनुष्य कहलाने के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। संवेदना मानवहृदय की अमूल्य संपदा है। संवेदना मनुष्य की पहचान है।

साहित्य की संवेदना से सीधा अभिप्राय हम उस अनुभूति से लेते हैं जो परिस्थिति विशेष में सर्जक के हृदय को द्रवीभूत करती है और परिवेश की भयावह स्थितियों को दूर करने के लिए प्रेरित करती है। मूलतः साहित्य मनुष्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। मनुष्य की यही भावात्मक संवेदना या मनुष्यगत संवेदना साहित्य में संवेदना कही जा सकती है। बिना संवेदना के साहित्य सृजन नहीं होता। संवेदनशील मनुष्य का ज्ञान, चिंतन,

दर्शन, विज्ञान सब जीवन में आत्मसात होता है, फिर वह मानव संवेदना का अंग बनकर शक्तिशाली साहित्य के रूप में उभरता है। साहित्य मानव हृदय से सम्बन्धित होता है, क्योंकि साहित्यकार की संवेदना हृदय से निकलती है और पाठक के हृदय तक पहुँचती है। एक हृदय से दूसरे हृदय तक की इस यात्रा में संवेदना की अहम भूमिका रहती है। हृदयगत अनुभूति के विस्तार का माध्यम साहित्य है।

भीष्म साहनी संवेदनशील कहानीकार हैं। वह एक ऐसे प्रगतिशील विचारक हैं जो प्राचीन और नवीन पीढ़ी के बीच खड़े हैं। अनुभूत सत्यों को लेकर चलने वाली उनकी कहानियों में सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर मानवीय सम्बन्धों की पहचान व्यक्त हुई है। इनकी कहानियों के पात्र अपनी पीड़ा, अभावों और आकाक्षाओं को बखूबी छिपाते हुए सामान्य जन के बहुत करीब पहुँच जाते हैं। इनकी कहानियाँ न सिर्फ हमें जीवन के दर्शन कराती हैं बल्कि साथ–साथ में हमें सचेत भी करती जाती हैं। हमारे भीतर दायित्व बोध की भावना को जाग्रत करती चलती हैं। हमारी अनुभूतियों को और संवेदनशील बनाती हैं। चीफ की दावत, वाङ्चू और तस्वीर अत्यधिक संवेदनशील कहानियाँ हैं। यह तीन कहानियाँ व्यक्ति को भीतर तक झंकृत करती हैं।

9.3.1 **'चीफ की दावत' कहानी की मूल संवेदना** – भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' मध्यवर्गीय समाज के परिवेश और मानसिकता को वास्तविकता के साथ अभिव्यक्त करती है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने बुजुर्गों की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। आधुनिक दौर में किस तरह परिवार में बुजुर्गों को हाशिये पर धकेला जा रहा है। आधुनिक दौर के मध्यवर्ग का व्यक्ति आगे बढ़ने की चाह में दौड़ता जा रहा है और आगे बढ़ने की होड़ में पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की बलि चढ़ाता जा रहा है। (पैसे) अर्थ की लालसा में व्यक्ति संवेदनहीन बनता जा रहा है। मशीन और बिजनेस के इस युग में व्यक्ति भी मशीन बन चुका है।

नगरों–महानगरों के लोग पारिवारिक मूल्यों की खिल्ली उड़ाते नज़र आते हैं। ऐसे में वे भूल जाते हैं कि जीवन कितना खोखला होता चला गया है। बुजुर्गों एवं परम्परा के प्रति असंवेदनशीलता से उनके जीवन में ममता, दया, करुणा, सहानुभूति जैसे जीवन के मूलभूत तत्व लुप्त होते जा रहे हैं। चीफ की दावत, वाङ्चू और तस्वीर कहानी इसी यथार्थ को उभारती हैं और मध्यवर्ग की कुण्ठाओं, घुटन, बिखराव को यथार्थ के धरातल पर रेखांकित करती हैं। खोखली मर्यादाओं, बाह्य आडम्बरों और आरोपित नैतिकता के प्रति भीष्म साहनी का दृष्टिकोण व्यंग्यपूर्ण रहा है। 'चीफ की दावत' कहानी आधुनिक दौर में बुजुर्गों की पीड़ा को वाणी देती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की अवसरवादिता, उसकी महत्वकांक्षा में पारिवारिक रिश्ते के विघटन को उजागर करना इसका मुख्य उद्देश्य है। लेखक इस कहानी के माध्यम से स्पष्ट करता है कि आज व्यक्ति उच्च वर्ग में शामिल होने के अवसरों की तलाश में रहता है। ऊँचा बनने और अत्यधिक पैसे प्राप्त करने की चाह ने व्यक्ति को भीतर से खोखला बना दिया है। इस कहानी में आधुनिकता और परम्परा का द्वन्द्व सहज ही देखा जा सकता

है। एक ओर नए–नए आधुनिक बने बाबू शामनाथ और उसकी पत्नी है, वहीं दूसरी ओर फालतू सामान की हैसियत में तब्दील माँ है। मध्यवर्गीय जीवन का एक विचित्र अंतर्विरोध है कि वह परम्पराओं को छोड़ नहीं पाता और आधुनिक बनने की ओर ललचाई नज़रों से निहारता है। बड़े–बूढ़ों के प्रति अतिसंवेदनशीलता, ममता, दया, करुणा के लोप से जीवन का वास्तविक अर्थ ही अर्थहीन होता जा रहा है। 'अर्थ' को जीवन का शगल मानने वाले श्रवण कुमार शामनाथ की उस मानसिकता का अर्थ व्याख्यायित किया गया है जिसमें पुत्र मां को पहले तो अर्थहीन समझकर अपने मुताबिक में सेट करना चाहता है परन्तु जब बॉस उसे माँ का अर्थ समझाता है तो शामनाथ माँ का महत्त्व अपने स्वार्थ की कसौटी पर ही समझता है। शामनाथ के लिए माँ प्रमोशन की सीढ़ी मात्र है। निःसंदेह वह अभी तक माँ के अर्थ को नहीं समझ पाया था। भीष्म जी की पैनी दृष्टि एक मार्मिक चित्र खींचती है– ''शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आये और माँ को आलिंगन में भर लिया। – ओ मम्मी! तुमने तो आज रंग ला दिया!'' ''साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी! अम्मी।'' कहानी का केन्द्र बिन्दु शामनाथ की समस्या तरक्की की नहीं बल्कि तरक्की के आगे आने वाली 'समस्या' मां है। उसकी यह चिंता है कि प्रदर्शन के अयोग्य माँ को प्रदर्शन की वस्तु कैसे बनाया जाये। शामनाथ का व्यवहार इस बात का द्योतक है कि वह संस्कारों की भी प्रदर्शनी लगाने में विश्वास रखता है। शामनाथ को लगा कि घर में माँ को छिपाया नहीं जा सकता और उसे पड़ोस की विधवा के घर भेजने से भी उसकी नाक कट जाएगी, तब उसे यह चिन्ता सताने लगी कि चीफ के आने पर माँ कहाँ बैठेगी, कौन से कपड़े पहनेगी और कौन–सा ज़ेवर पहनेगी। माँ के साथ उसकी बातचीत बड़ी रोचक एंव अर्थगर्भित है– ''और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना, फिर जब हम यहाँ आ जायें, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना। माँ अवाक् बेटे का चेहरा देखने लगी। फिर धीरे से बोली – अच्छा बेटा।'' शामनाथ के लिए माँ कठपुतली बन चुकी थी। जिसे वह अपने हिसाब से बैठाना, संवारना और बुलवाना चाहता था। शामनाथ का अपनी माँ के प्रति व्यवहार ह्रदय को द्रवित करने वाला है। जिसे माँ ने अपने ज़ेवर बेचकर शामनाथ को इतनी दूर पहुँचाया, आज उसी बेटे के लिए वही माँ महत्त्वहीन बन चुकी है। वर्तमान समय में सम्बन्धों को स्वार्थ के तराजू पर तौला जाता है, चाहे वह फिर माँ ही क्यों न हो।

प्रस्तुत कहानी बहू और बेटे के फूहड़ व्यवहार एवं क्षुद्र सोच को दर्शाती है। इतना पढ़ लिखकर आज का व्यक्ति बुद्धिहीन होता जा रहा है। संवेदनहीन होता जा रहा है, वह प्रेम की भाषा के अलावा स्वार्थ की भाषा बोलता है। जब शामनाथ और उसकी पत्नी घर को डेकोरेट करने के लिए माँ को उचित स्थान पर सेट करने को व्यग्र होता है। संपन्नता एवं प्रदर्शन हेतु माँ को कुर्सी पर कैसे बैठाने के साथ–साथ माँ को सफेद सलवार कमीज़ और चूड़ियाँ पहनने का निर्देश देता है। एक कुर्सी को उठाकर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले ''आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो। माँ माला संभालती, पल्ला ठीक करती उठीं, और धीरे–धीरे से कुर्सी पर आकर बैठ गयीं। यूँ नहीं, माँ टाँगें ऊपर चढ़ाकर नहीं बैठते, यह खाट नहीं है। माँ

ने टाँगें नीचे उतार लीं।" जिस माँ ने बेटे को अपनी पहली ऊँगली पकड़ाकर चलना सिखाया, सहारा दिया, दुनिया को पहचानने की समझ दी, उस बेटे को आज पैसे के लोभ और अंग्रेज़ियत मिजाज़ ने इतना अन्ध ाा बना दिया है कि उसे जीवन का सही अर्थ समझ नहीं आ रहा है।

शामनाथ की एक समस्या हल होती और दूसरी समस्या की गठरी खुल जाती। वह सम्पन्नता प्रदर्शन के द्वारा चीफ पर अपनी धाक जमाना चाहता है, इसलिए वह माँ को सफेद सलवार–कमीज़ और चूड़ियाँ पहनने को मजबूर करता है। माँ और बेटे का संवाद, पुत्र की बुद्धिमत्ता और मां की स्थिति की मार्मिकता को दर्शाता है – "चूड़ियां कहां से लाऊं बेटा, तुम तो जानते हो, सब ज़ेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए' यह वाक्य शामनाथ को तीर की भांति चुभा। वह उत्तर में कहता है, "जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना।" भौतिकता की इस आँधी के थपेड़ों से माँ रूपी परम्परा ज़ख्मी हो रही है। संवेदनशीलता के साथ लेखक परम्परा के महत्त्व को स्थापित करता है। यह कहानी पाठक को सोचने पर विवश कर देती है कि अर्थ के इस युग में संस्कार और नवीन मूल्यों को कितना समझा जा सका है। तथाकथित विकसित, आध ुनिक सभ्य समाज का जो यांत्रिक युग चल रहा है उसमें सब कुछ इमेडिएट (तत्काल) प्राप्त करना ध्येय बनता जा रहा है। पैसे को ही जीवन का अर्थ समझने वाला सुपुत्र माँ को गुसलखाने से भी एक पायदान नीचे का दर्जा देने से भी नहीं हिचकता है।

शामनाथ की इस चीफ की दावत में माँ उपहास का माध्यम बनती है। पूंजीवादी आधुनिकता बोध ा और यथार्थवादी विचारधारा के अन्तर्विरोध यहाँ खुलते हैं। शामनाथ द्वारा दी गई दावत में पुरुष और महिलाएं बेहिचक शराब पीते हैं। यहां तथाकथित अभिजात्य समाज की मर्यादाएं और सदाचार को तार–तार कर दिया जाता है। माँ को उपहास का केन्द्र बनाते हुए भी शामनाथ को लाज नहीं आती। जब वह माँ को आदेश देता है "माँ हाथ मिलाओ!" बात यहीं नहीं समाप्त होती। पराकाष्ठा का चरम बिंदु "हो डू डू" और बरामदा तालियों से गूंज उठा। साहब तालियां पीटना बन्द ही नहीं करते थे। शामनाथ की माँ के प्रति खीझ प्रसन्नता और गर्त में बदल उठी। मां ने पार्टी में नया रंग भर दिया था। माँ की विवशता शामनाथ के लिए प्रसन्नता और गर्व का कारण बनी थी।

देर रात तक पार्टी में से आती ठहाकों की आवाज़ों से माँ का गला रुदने लगा। माँ का अर्न्तमन शामनाथ की दावत से छिल चुका था। बुढ़ापे के समय में वह अपनी पीड़ा कहती भी तो किसे कहती। अपनी संतान ने ही भरी सभा में माँ को उपहास का पात्र बनाया। अपने आप को फालतू महसूस समझने वाली माँ कोठरी के किवाड़ बन्द करके रोने लगी। आसूओं की बाढ़ को पोंछने वाली कोठरी में कोई न था। जीवन भर अपनी खुशियों को परे धकेल अपनी संतान की तरक्की चाहने वाली माँ को बुढ़ापे के समय उपेक्षित व्यवहार झेलना पड़ता है।

दावत की गुडनाइट के पश्चात माँ की जिस दशा का वर्णन भीष्म जी ने किया है वह अत्यन्त मार्मिक है। उन्होंने माँ के घुटन भरे वातावरण को चित्रित किया है। ''मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों से छल–छल आंसू बहने लगे। वह दुपट्टे से बार–बार उन्हें पोंछती, पर वे बार–बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बांध तोड़कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार–बार आँखें बंद की, मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही नहीं आते थे।'' इस सन्दर्भ से अनुमान लगाया जा सकता है कि बूढ़ी माँ बेटे के घर में घुट–घुट कर जी रही थी। इस घुटन भरे वातावरण से मुक्ति पाने के लिए वह बेटे से हरिद्वार भेज देने का प्रस्ताव रखती है परन्तु शामनाथ अपनी बदनामी के डर से स्वीकार नहीं करता और तरक्की की लिप्सा तो थी ही उसे।

शामनाथ के साहब को माँ की पुरानी फुलकारी बहुत पसन्द आती है। साहब की चाहत हुई कि उसे भी वैसी ही फुलकारी माँ बनाकर दे। लेकिन माँ की नज़र इस बुढ़ापे में साथ नहीं दे रही थी। माँ को जैसे ही मालूम हुआ कि फुलकारी बनाने से बेटे की प्रमोशन हो जायेगी तो वह तुरन्त बेटे को हाँ करती है। हरिद्वार जाने के प्रस्ताव को भी भूल जाती है। अंतस् को छील देती पंक्तियां माँ के अर्थ को अर्थमान बनाती हैं – ''क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा? क्या उसने कहा है? कहा नहीं मगर देखती नहीं, कितना खुश गया है। कहता था जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शुरु करेगी, तो मैं देखने आऊंगा कि कैसे बनाती हैं। जो साहब खुश हो गया तो मुझे इससे बड़ी नौकरी मिल सकती है, मैं बड़ा अफसर बन सकता हूं!'' मां के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे–धीरे उसका झुर्रियों भरा मुंह खिलने लगा। आँखों में हल्की–हल्की चमक आने लगी।

इस कहानी में शामनाथ की माँ वात्सल्य की प्रतिमा के रूप में चित्रित हुई है और शामनाथ मध्यवर्ग के एक दुनियादार, महत्त्वकांक्षी, खुशामदी, प्रदर्शन–प्रिय, अवसरवादी व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है।

9.3.2. 'वाङ्चू' कहानी की मूल संवेदना – वाङ्चू एक संवेदनशील बौद्ध भिक्षु है वह चीन से भारत आया था। वह चीनी शोध छात्र है भारत में वह बौद्ध धर्म के अध्ययन हेतु आया है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने देश चीन की क्रांतिकारी घटनाओं से बेखबर है। वर्षों से भारतीय बौद्ध विहारों में एकान्त साधना में मग्न रहता है। समसामयिक राजनीतिक घटनाओं और हलचलों से अलिप्त रहकर वह एकांत साधना में रहता है। वह अपनी साधना में इतना आत्मलीन हो जाता है कि बाहर क्या हो रहा है इसका उसे पता भी नहीं होता है। उसकी शोधवृत्ति से प्रभावित होकर भारत में उसे लोगों की सहानुभूति और प्रेम प्राप्त होता है। भारत का प्रेम वाङ्चू को वापिस भारत बुलाता है। संवेदनशील, प्रेम की भाषा बोलने वाला वाङ्चू राजनीतिक व्यवस्था में खूब पिसता है। बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करने वाला वाङ्चू जब वापिस चीन जाता है तो उसे गहरे तनाव का सामना करना पड़ता है। चीन में वाङ्चू के ऊपर नज़र रखी जानी आरम्भ हो

गई। मित्तभाषी वाङ्चू को एक दिन एक आदमी ग्राम–प्रशासन केन्द्र में ले गया। ग्राम–प्रशासन–केन्द्र में पहुँचते ही उससे भारत और उससे सम्बन्धित विभिन्न सवाल पूछे जाने लगे – "तुम भारत में कितने वर्षों तक रहे ? वहां पर क्या करते थे ? कहाँ–कहाँ घूमे ? आदि आदि। फिर बौद्ध धर्म के प्रति वाङ्चू की जिज्ञासा के बारे में जानकर उनमें से एक व्यक्ति बोला "तुम क्या सोचते हो, बौद्ध धर्म का भौतिक आधार क्या है?" वाङ्चू जिस देश में पैदा हुआ वहां उसका दिल नहीं जम पा रहा था। चीन–भारत युद्ध के छिड़ने के बाद अपने मित्रों की सलाह से वह अपने देश चीन को लौट जाता है। पर उसे भारत से लौटता हुआ देखकर चीन की सरकार उसे संदेह के घेरे में ले लेती है। प्रेम को आधार बनाकर जीने वाला वाङ्चू राजनीति की चक्की में पिसता जाता है। अपने देश में ही उसे ऊब होने लगती है। वह वापिस भारत चला आता है लेकिन भावनाओं में संलिप्त वाङ्चू को वापिस भारत में आकर मुँह की खानी पड़ती है। भारत–चीन युद्ध छिड़ जाने के कारण वाङ्चू को चीन का भेदिया समझकर भारत की पुलिस पकड़ लेती है। चीनी होने की हैसियत से वह भारतीय पुलिस द्वारा संदेह की नज़रों से देखा जाता है। बदलते समय और परिस्थितियों के प्रति वाङ्चू इतना अबोध रहता है कि उसकी समझ में नहीं आता कि यह सब क्या चल रहा है। इन अवांछित और विपरीत परिस्थितियों के कारण वाङ्चू की सारी एकांत साधना व्यर्थ होती जा रही थी। इतना ही नहीं अपितु उसके विपत्ति का कारण भी वह बनती है। वाङ्चू के शोधपत्र, किताबों को ज़ब्त कर लिया जाता है। उस पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। वाङ्चू अपने कागज़ों के बिना अधमरा हो जाता है। गैर–मौजूदगी में पुलिस के सिपाही उसकी कोठरी से उसकी ट्रंक ले जाते हैं। सुपरिंटेण्डेण्ट के सामने जब कागज़ों की पोटली को खोला गया तो वाङ्चू के शोध पर गहरा सन्देह किया गया। भीष्म साहनी ने व्यवस्था के सन्देह से परिपूर्ण चित्र बड़ी मार्मिकता से उकेरे हैं। "कहीं पाली में तो कहीं संस्कृत भाषा में उद्धरण लिखे; लेकिन बहुत सा हिस्सा चीनी भाषा में था। साहब कुछ देर तक तो कागज़ों को उलटते–पलटते रहे, रोशनी के सामने रखकर उनमें लिखी किसी गुप्त भाषा को ढूँढते रहे, अन्त में उन्होंने हुक्म दिया कि कागज़ों के पुलिन्दे को बाँधकर दिल्ली के अधिकारियों के पास भेज दिया जाये, क्योंकि बनारस में कोई आदमी चीनी भाषा नहीं जानता था।"

चीन–भारत की लड़ाई बन्द होने के बाद कोई एक महीने के बाद वाङ्चू पुलिस हिरासत से मुक्त हुआ। पुलिस ने उसका ट्रंक वापिस किया। उसमें कोई भी कागज़ात न पाकर वाङ्चू बड़ा हतप्रभ हुआ। पुलिस से गिड़गिड़ाया– मुझे मेरे कागज़ात वापस कर दीजिए, उन पर मैंने बहुत कुछ लिखा है, वे बहुत ज़रूरी हैं, तो पुलिस वालों ने कहा – "मुझे उन कागज़ों का क्या करना है, आपके हैं, आपको मिल जायेंगे।" प्रशासन के इस क्रूर व्यवहार के कारण वह बीमार होता चला गया। वह बीमार तो था ही लेकिन पुलिस अधिकारियों के रवैये से और अधिक मानसिक 'रूप से बीमार होता गया। महीने भर बाद लेखक को खबर मिलती है कि वाङ्चू की मौत हो गई। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीति दो देशों के बीच के मानवीय और

सांस्कृतिक संबंध को नहीं देख पाती है, हालांकि राजनीति का आधार इसी तरह का सम्बन्ध होना चाहिए। डॉ. किरणबाला के शब्दों में कहें, तो 'वाङ्चू' न चीनी था, न भारतीय, वह मात्र मनुष्य था और इसलिए वह चीनी भी था और भारतीय भी। इस बात को गलत राजनीति ने नहीं समझा और मानवमूल्य की उपेक्षा की गई। राजनीति की इस निर्मम संवेदनशीलता का शिकार बनती है सबसे पहले आदमी के आदमी होने की निष्ठा। सारा ज्ञान, सारी जिज्ञासाएँ उच्चतर लक्षणों के प्रति अर्पित जीवन की सारी ईमानदारी और निःस्वार्थ चेष्टाएँ इस निर्मम राजनीति के समक्ष संदिग्ध बनती हैं।

वाङ्चू को याद करकर रोने वाले बहुत ज़्यादा लोग नहीं थे। लेखक ने जब वाङ्चू की मौत की खबर सुनी तो सबसे पहले उन्होंने सारनाथ जाने का मन बनाया। फिर सोचा गया कि वहां उसका कौन हो सकता है, जिसके सामने जाकर वह अफसोस जतलाए। लेकिन फिर भी लेखक वहां गया और वहां पर उससे मिलने सारनाथ के मंत्री भी आए। मंत्री जी ने कहा – वाङ्चू बड़ा नेक दिल आदमी था, सच्चे अर्थों में बौद्ध भिक्षु था। कैंटीन का रसोइया आया वह भी कहने लगा – बाबू आपको बहुत याद करते थे। बहुत भले आदमी थे कहते–कहते वह रूआंसा हो गया। कहानीकार ने कहा है कि संसार में शायद यही अकेला जीव था जिसने वाङ्चू की मौत पर आंसू बहाए थे। कहानीकार ट्रंक और कागज़ों का पुलिन्दा लिए दिल्ली लौट जाते हैं। लेखक का रास्तेभर वाङ्चू की पाण्डुलिपियों से सम्बंधित सोच विचार अत्यन्त मार्मिकता से भर देता है – ''इस पुलिन्दे का क्या करूँ? कभी सोचता हूँ, इसे छपवा डालूँ, पर अधूरी पाण्डुलिपि को कौन छापेगा? पत्नी रोज़ बिगड़ती है कि मैं घर में कचरा भरता जा रहा हूँ! दो–तीन बार वह फैंकने की धमकी भी दे चुकी है, पर मैं इसे छिपाता रहता हूँ। कभी किसी तख्ते पर रख देता हूँ। कभी पलँग के नीचे छिपा देता हूँ। पर मैं जानता हूँ, किसी दिन ये भी गली में फेंक दिये जायेंगे।''

दो देशों के बीच गलत राजनीति के कारण मानवीय एवं सांस्कृतिक संबंधों की जो स्थिति होती है, यह कहानी उसका सबूत है। इस कहानी में जिस भोले–भाले यात्री का चित्रण किया गया है उसकी सहजता और सरलता मात्र कल्पना से निर्मित नहीं की जा सकती है। जिस ढंग से भीष्म जी ने वाङ्चू के चरित्र को गड़ा है उसे पढ़कर लगता है, ''भीष्म जी कहानी नहीं लिख रहे, भारत और भारत की पुरानी संस्कृति के प्रति अपरिमित जिज्ञासा रखने वाले एक भोले–भाले चीनी यात्री से हमें मिलवा रहे हैं। कहानी के अंत में उसके विश्वास का टूटना या उसका 'हक्का–बक्कापन' कहीं–न–कहीं खुद हमें कचोट जाता है।''

कहानी का अंत होने पर पाठकों के मन में इस संसार की नीरवता और हताशा से गहरा साक्षात्कार होता है जहां किसी की भावनाओं और संवेदनाओं का कोई अर्थ नहीं रह गया है। सारा कुछ भौतिकवादी और उपयोगितावादी दृष्टि पर ही केन्द्रित हो आया है। वाङ्चू को त्रासदमयी पीड़ा से गुज़रना पड़ा। राजनीति की बिसात पर कुछ सड़े–गले फालतू से कानून कायदों के लिए भोले–भाले वाङ्चू की बलि चढ़ा

दी गई। यह कहानी इस का बात का प्रमाण है कि वक्त की कोई भी गर्दिश वाङ्चू को धूमिल नहीं कर पाई। वाङ्चू एक ऐसा पात्र है जो वक्त की भट्ठी में तप कर कुन्दन हो चुका है।

9.4. सारांश : भीष्म साहनी एक संवेदनशील कहानीकार हैं। इन्होंने चीफ की दावत के माध्यम से बुजुर्गों की उपेक्षा, वाङ्चू के माध्यम से व्यवस्था का भ्रष्ट व्यवहार, तस्वीर कहानी के माध्यम से नारी की पीड़ा को बड़े ही कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। लेखक जितना संवेदनशील होगा उसकी रचना उतनी विश्वसनीय होगी, इस दृष्टि से भीष्म साहनी एक सफल एवं संवेदनशील कहानीकार के रूप में उभरते हैं।

9.5 कठिन शब्द

1. संवदेना
2. वैयक्तिक
3. उदात्त
4. ज्ञानेन्द्रिय
5. अभिव्यक्ति

9.6. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विवेच्य कहानियों की मूल संवेदना को रेखांकित कीजिए।

____

____

____

____

2. मूल संवेदना के सन्दर्भ में भीष्म साहनी की कहानियों का विवेचन कीजिए।

____

____

____

____

3. भीष्म साहनी एक संवेदनशील कहानीकार हैं, सिद्ध कीजिए।

____

4. भीष्म साहनी की कहानियों में मूल मार्मिक स्थलों पर प्रकाश डालिए।

5. भावनात्मक धरातल पर भीष्म साहनी की कहानियों पर प्रकाश डालिए।

9.7. सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. आलोचना त्रैमासिक पत्रिका : भीष्म स्मृति अंक – 2004, अंक – 17–18, अप्रैल–सितम्बर
2. भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय संबंध – डॉ. संजय गडपायले
3. भीष्म साहनी की प्रमुख कहानियों में 'व्यवस्था' का चित्रण – डॉ. के. श्याम सुन्दर
4. हिन्दी कहानी रचना और परिस्थिति – सुरेन्द्र चौधरी
5. भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य – डॉ. विवेक द्विवेदी
6. भीष्म साहनी के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प – डॉ. शर्मिष्ठा आई. पटेल

– – – – –

भीष्म साहनी की कहानियों का शिल्प एवं चरित्र

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 कहानियों का शिल्प

10.3.1 देशकाल और वातावरण

10.3.2 रूप

10.3.3 भाषा

10.3.4 चरित्र शिल्प

10.4 चरित्र

10.4.1 शामनाथ

10.4.2 वाङ्चू

10.5 सारांश

10.6 कठिन शब्द

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.1 उद्देश्य :–

- शिल्प का अर्थ जान सकेंगे।
- भीष्म साहनी की कहानियों में शिल्प किस रूप में उभरा है।
- विवेच्य कहानियों में कहानीकार ने किस कहानी की अभिव्यक्ति हेतु किस शैली को अपनाया है।
- विवेच्य कहानियों को भाषा के भावानुकूल प्रयोग ने प्रभावी बनाया है, यह जान सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना :

सौन्दर्य की अभिव्यक्त को कला कहा जाता है। मानव आदिकाल से ही अपने हृदय की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए छटपटाता चला आ रहा है। भावनाओं की अभिव्यक्ति जब सौन्दर्य के आधार पर होती है, तो इसे कला नाम से पुकारा जाता है। रचनाकार के लिए अपने कथ्य को कहने का माध्यम शिल्प है। पात्र–योजना, वातावरण, संवाद योजना, भाषा शैली आदि कलात्मक लक्षणों को कला में अपनाया जाता है। शिल्पविधान का प्रयोग जितना सशक्त और संजीव होगा, कहानी उतनी ही अधिक आदर्श मानी जाएगी। शिल्प पाठकों की अभिरूचि के अनुसार साहित्य के चुनाव में केवल सहायक ही नहीं होता, अपितु शिल्पगत विशेषताओं के आधार पर उसे स्थायित्व भी प्रदान करता है। सफल रचनाकार वर्ण्य विषय के प्रति पूर्ण न्याय करते हुए जब रचना को सुन्दर शिल्प देता है, तभी वह रचना श्रेष्ठ होती है। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आत्मकथात्मक, ऐतिहासिक कहानियाँ लिखने वाले भीष्म साहनी की कहानियों में शिल्प के नये आयाम उभरे हैं। भीष्म साहनी सामाजिक दायित्व को रचना का प्रमुख लक्ष्य मानते हैं।

10.3 कहानियों का शिल्प :

साहित्य में वस्तु तत्त्व की भांति कला और शिल्प का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। कोई भी साहित्यिक कृति वस्तु तथा विचार तत्व की वाहिका होते हुए भी कलात्मक इकाई भी होती है। शिल्प एक ऐसा माध्यम है जो कहानीकार के अनुभव के संसार को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। शिल्प के विषय में कहा गया है कि ''प्रत्येक अनुभूति को अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप एक सक्षम रूप या माध्यम चाहिए जिससे वह एक प्रभावी कृति या रचना बन सके।''

अंग्रेजी में 'क्राफ्ट' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है उसके पर्यायी अर्थ में हिन्दी में शिल्प का ही प्रयोग किया जाता है। शिल्प का शब्दशः अर्थ होता है किसी चीज के बनाने का ढंग या तरीका। कोश के अनुसार टेक्नीक के लिए ''शिल्प, विधि, पद्धति, रचना प्रणाली आदि का प्रयोग हुआ है।'' इसी

प्रकार से मानक अंग्रेजी–शब्दकोष में टेक्नीक के लिए ''प्रविधि, शिल्प विधान का प्रयोग किया गया है।'' अतः कहा जा सकता है कि शिल्प किसी वस्तु को हाथ से बनाने की पद्धति, यही कारीगरी, कौशल्य और विधि है।

शिल्प के सन्दर्भ में जैनेन्द्र कुमार का कहना है कि ''टेक्नीक ढाँचें के नियमों का नाम है, पर ढाँचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आये।''

डॉ. शेखावत का कहना है कि ''रचनाकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती समय और यथार्थ की अनुभूति को अभिव्यक्त करने की है। अब यह अभिव्यक्ति किस तरह उस यथार्थ को समेटकर उसे पूर्णता और प्रभावी रूप दे सके, यह शिल्प का प्रश्न है।'' इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि शिल्प या शिल्पविधि वह पद्धति या विधि है जिसके माध्यम से रचना के लक्ष्य की पूर्ति होती है। आज का कहानीकार प्रचलित शिल्प को त्याग कर रचना के ताने–बाने से मानवीय संबंधों के बदलाव को अभिव्यक्त करता है और फिर भाषा से उसे बुनता है। इसी बुनावट में भीष्म जी की कहानियों का शिल्प है। समकालीन कहानीकार के दौर में भीष्म साहनी जैसे कहानीकारों ने ही नए शिल्प को लेकर कथा साहित्य की जड़ता को तोड़ा है। कहानी को ठोस सामाजिक आधार देने का कार्य भीष्म जी ने किया है। वे एक प्रगतिशील चेतना सम्पन्न कहानीकार हैं। उनकी समस्त कहानियों में मध्य और निम्नवर्ग के जीवन का चित्रण किया गया है। इन्होंने मध्य और निम्नवर्ग की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं को अपनी कहानी का प्रतिपाद्य बनाया है। इन्होंने सामाजिक, विसंगतियों, संकीर्णताओं और विषमताओं से निराश होकर पलायनवादी रुख अपनाने के स्थान पर उनसे सक्रिय असहमति व्यक्त कर, उनके कारणों की ओर इशारा करने वाली उनकी कहानियों का केन्द्र बिंदु 'व्यक्ति' नहीं बल्कि 'मनुष्य' है। कहानियों में इन्होंने सामंतवादी समाज के इतिहास की खोज की है। इनकी कहानियों का हर पात्र आरोपित संस्कार से संघर्ष करता है और उसका यह संघर्ष समूचे परिवेश से जुड़ जाता है। स्वयं कहानीकार ने स्वीकार किया है कि कहानी का मूल आधार जीवन के यथार्थ का अनुभव है।

भीष्म साहनी की कहानियों का शिल्पगत विवेचन इस प्रकार है :–

10.3.1 देश काल और वातावरण :

देश काल और वातावरण का चित्रण भावों को जागृत करने में विशेष सहायक होता है। वातावरण की सफल अभिव्यक्ति कहानी का गुण है। कहानी में वातावरण–चित्रण के अनेक पक्ष हैं। इसके अंतर्गत प्रकृति–वर्णनों द्वारा मानसिक परिस्थितियों का वैषम्य या साम्य कथन कहानी के बीच–बीच में बाह्य वातावरण के संकेत और पात्रों की परिस्थितियों का चित्रण व्यापक अर्थ में परिस्थिति–योजना प्रकृति, सज्जा

और देशकाल चित्रण तीनों को वातावरण कहा जाता है। वातावरण के कारण ही पाठक का मन कहानी में रमता है, इसी के फलस्वरूप उसका मन भूत से वर्तमान या भविष्य की ओर झुक जाता है। वातावरण का महत्त्व इतना अधिक होता है कि जिस प्रकार रात के अंधेरे में रस्सी में साँप की प्रतीति होती है। उसी प्रकार यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित कथा भी सत्य की घटना प्रतीत होती है। देशकाल और वातावरण के अन्तर्गत किसी भी समाज की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज़ तथा व्यक्ति का आतंरिक संसार–कुण्ठा, काम, भय, अह्म आदि जटिल परिवेश का परिचय मिलता है।

भीष्म जी की कहानियों में देश, काल और वातावरण भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। कहानी में देश, काल और वातावरण कहानी के गठन को अस्त–व्यस्त नहीं होने देते हैं। साथ ही कहानी के पात्रों का सीधा संबंध उन स्थितियों से होता है जिस स्थान से वे जुड़े होते हैं। कहानीकार स्वयं पंजाब की मिट्टी से जुड़ा हुआ है इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पंजाब की मिट्टी की गंध उनकी कहानियों में है। 'चीफ की दावत' कहानी में पंजाबियत का रंग उभरकर आया है। बूढ़ी माँ के द्वारा गाया गया पंजाबी लोक गीत, 'हरिया जी माये, हरिया नी भैणे, हरिया ते भागी भरिया है' ! और 'फुलकारी' का वर्णन पंजाबी लोगों के रहन सहन और वेश–भूषा को दर्शाता है। भीष्म जी की अनेक कहानियों में पंजाब के साथ–साथ गाँव, नगरों एवं महानगरों के व्यवहार का चित्रण हुआ है। सपाटबयानी जहां उनकी कहानियों के शिल्प का एक अंग है उसी से उनकी कहानियों का शिल्प खुरदुरा है वे कहानी में जो कुछ भी कहना चाहते हैं वह उसी जिन्दगी का है जिसे आज का आदमी जी रहा है। सपाटबयानी 'तस्वीर' कहानी में साफ झलकती है।

कहानी का आधार वातावरण होता है, लेकिन उसमें वातावरण की सजीवता उसे यर्थाथ रूप प्रदान करती है। आज की कहानी में वातावरण का प्रायः संक्षिप्त और सांकेतिक रूप ही ग्रहण किया जाता है। कहानी में देश, काल और वातावरण कहानी के गठन को अस्त–व्यस्त नहीं होने देता है, साथ ही कहानी के पात्रों का सीधा सम्बन्ध उन स्थितियों से होता है जिस स्थान से वे जुड़े होते हैं। कहानीकार स्वयं पंजाब की मिट्टी से जुड़ा हुआ है। 'चीफ की दावत' कहानी में पंजाबियत का रंग उभरा है। बूढ़ी माँ के द्वारा गाया गया पंजाबी लोक गीत 'हरिया जी गाये, हरिया नी भैणे, हरिया ते भागी भरिया है !' और 'फुलकारी' के वर्णन से पंजाब के लोगों के रहन–सहन और वेश–भूषा को दर्शाया गया है। कहानी के प्रारम्भ में लेखक ने देशगत उपकरणों का चित्रण करते हुए, कमरे का सजीव चित्रण किया है, –"आखिर पाँच बजते–बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल, सब बरामदे में पहुंच गये। ड्रिंक का इन्तजाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा।" इसी प्रकार जब सभी मेहमान शामनाथ के घर पर पहुंच गए तो पार्टी का जो रंग जमा, उसे भी लेखक ने अत्यन्त सजीवता से प्रकट किया है। इसी चित्रण में साहब, मेमसाहब तथा

अन्य दोस्तों का व्यवहार और पहनावा आदि का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण मिलता है –''दफ्तर में जितना रोब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त–परवर हो रहे थे और उनकी स्त्री, काला गाउन पहने, गले में सफेद मोतियों का हार, सेण्ट और पाउडर की महक से ओत–प्रोत, कमरे में बैठी सभी देसी स्त्रियों की अराधना का केन्द्र बनी हुई थी।''

लेखक ने पंजाब के साथ–साथ गांव, नगरों एवं महानगरों के व्यवहार का चित्रण भी किया है। इसी कहानी में मध्यवर्गीय लोगों के जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। मध्यवर्गीय लोगों का रहन सहन रीति–रिवाज़, खान–पान एवं प्राकृतिक परिवेश का समुचित चित्रण हुआ है। शहरी परिवेश से मध्यवर्ग के लोग जिजीविषाग्रस्त होते हैं। इस परिवेश में जब मेहमानों का स्वागत किया जाता है, तो स्वागत में जिस प्रकार की दावत दी जाती है। उससे स्पष्ट झलकता है कि भारतीय समाज का मध्यवर्ग पश्चिमी सभ्यता की आधी–अधूरी नकल करता हुआ विकसित हो रहा है। इस सन्दर्भ की पुष्टि हेतु कहानी का उद्धरण द्रष्टव्य है ''शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पौंछने की फ़ुर्सत नहीं। पत्नी ड्रेसिंग गाऊन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाये, मुंह पर फैली सुर्खी और पाउडर को भूले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट फूँकते हुए, चीजों की फ़ेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ जा रहे थे।''

वातावरण का बिम्ब अपनी समग्रता के कारण एक पूरा चित्र हमारे सामने उपस्थित कर देता है। इस तरह का वर्णन कहानी को और रोचक एवं स्वाभाविक बना देता है। 'वाङ्‌चू' कहानी में वाङ्‌चू के मानसिक वातावरण का चित्रण इस प्रकार है – ''जब वाङ्‌चू पार्टी – दफ्तर से लौटा, तो थका हुआ था, उसका सिर भन्ना रहा था। अपने देश में उसका दिल जमी नहीं पाया था। ...छप्पर के नीचे लेटा तो उसे सहसा ही भारत की याद सताने लगी। उसे सारनाथ की कोठरी याद आयी, जिसमें दिन–भर बैठा पोथी बांचा करता था, नीम का घना पेड़ याद आया, जिसके नीचे कभी–कभी सुस्ताया करता था।'' भीष्म साहनी की खासियत यह है कि वह समग्र कथा को एक सूत्र में बांधने में सिद्धहस्त है।

10.3.2 रूप :

रूप की दृष्टि से भीष्म जी की कहानियाँ बहुत ही सुगठित हैं। सुगठित रूप के कारण ही इनकी कहानियों में कहीं भी बनावट नहीं है। इन्होंने अपनी कहानियों में एकालाप, पूर्वदर्शन, संस्मरण इत्यादि पद्वति को अपनाते हुए स्वाभाविकता को बनाए रखा है। इनकी कहानियों में चरम बिंदु आता ही है पर कहानी किसी चमत्कार के लिए चरम बिंदु पर टिकी नहीं होती क्योंकि भीष्म जी की कहानियों का चरम बिंदु कभी इतना सशक्त नहीं हुआ कि वह शेष कहानी पर भारी हो जाए। उनके कहानी – शिल्प में कहानी का रचना–विध ाान महत्त्व का होता है और फिर जिस शैली को लेकर उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं, वह शैली आडम्बर से दूर, सीधी–सादी वर्णनात्मक है। 'तस्वीर' कहानी का उदाहरण द्रष्टव्य है – ''सारा वक्त कमला डरी–डरी–सी

पिछले दरवाज़े में खड़ी रही थी। कमला ग्यारह बरस की हो चली थी। उन दिनों वह भी अक्सर अविश्वास की दृष्टि से ही मुझे देखा करती थी। उधर ससुर की फटकार इधर बच्चों की। वह चला गया, तो इसमें मेरा क्या दोष है। उसकी जगह मैं चली जाती, तो अच्छा था। मुझे लगा, जैसे कमला मेरी ओर डर और उपेक्षा से देखे जा रही है।'' इनकी कहानियों की शैली अर्थ की अनेक वक्रताओं को लेकर चलती है, इन वक्रताओं को समझे बिना कहानी के कथ्य को पूरी तरह से नहीं पहचाना जा सकता है।

भीष्म जी की कुछ कहानियाँ तो ऐसी है जिसमें शिल्प–विधान का परिपूर्ण निर्वाह हुआ है जैसे चीफ की दावत, वाङ्चू, तस्वीर, रास्ता, भगौडा, इंद्रजाल आदि कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ आकार–प्रकार से विस्तृत हैं पर अधिकतर कहानियाँ लघु हैं। इनकी कहानियों में घटनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है।

भीष्म जी की कहानियों के संवादों के माध्यम से चरित्र का उद्घाटन होता है। 'चीफ की दावत' के स्वार्थी बेटे का परिचय इस संवाद से होता है – ''और खुदा के वास्ते नंगे पांव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहनकर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी वह खड़ाऊँ उठाकर मैं बाहर फेंक दूँगा।'' साहनी ने अपनी कहानियों में विशेषतः किसी न किसी समस्या को ठोस रूप देने का प्रयत्न किया है। कहानी में पात्रों के मनोभावों तथा क्रिया–कलापों को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। 'तस्वीर' कहानी में बच्चों का पिता के प्रति स्नेह बड़ी कुतूहलता के साथ प्रकट हुआ है ''पापा माँ कुर्सियाँ, मेज नहीं बेचेगी। माँ ने कह दिया है। पापा तुम्हारी चीज़े घर पर ही रहेंगी। पापा, दादाजी ने माँ को बहुत डाँटा, मगर माँ नहीं मानी।'' अतः कहा जा सकता है कि इन्होंने अपनी कहानियों में जिस यथार्थ का चित्रण किया है वह उस यथार्थ को एक ही पक्ष से नहीं उभारते हैं। इसी कारण कहानी में वस्तु को सम्पूर्णता प्राप्त होती है।

वाङ्चू कहानी में संस्मरणात्मक पद्धति को अपनाया गया है। वर्णनात्मक एवं संवादात्मक शैली का उपयोग कर कहानी को रोचक रूप प्रदान किया है। इस शैली के कारण ही कहानियाँ मानसिक पटल पर टहलती रहती हैं। वह कहीं भी लुप्त नहीं होती हैं। संवादात्मक शैली का उदाहरण द्रष्टव्य – ''तुमने बहुत देर कर दी। सभी लोग तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। मैं चिनारों के नीचे भी तुम्हें खोज आया हूँ। मैंने कहा। मैं संग्राहलय में था।'' 'वाङ्चू' कहानी में सांकेतिकता का पुट है। यह कहानी कई अर्थ–ध्वनियाँ व्यक्त करती है। दो देशों के आपसी युद्ध के कारण उत्पन्न विभीषिका में एक निरीह निरपराध व्यक्ति पिस जाता है। लड़ती है राजनीति और मारी जाती है शिक्षा–संस्कृति। दो देशों के बीच गलत राजनीति के कारण मानवीय और सांस्कृतिक संबंधों की जो स्थिति होती है, यह कहानी उसका सबूत है। ''वाङ्चू न चीनी था, न भारतीय। वह मात्र मनुष्य था और इसलिए वह चीनी भी था और भारतीय भी। इस बात को गलत राजनीति ने नहीं समझा और मानव–मूल्यों की अपेक्षा की गयी।''

10.3.3 भाषा :

साहित्य की सभी विधाओं में भाषा का अपना ही महत्त्व होता है। साहित्य भाषा से ही निर्मित है मानवीय भावों की अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा साधन भाषा ही है। प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से ही व्यक्तिगत अनुभव को जनसामान्य तक पहुंचाने का प्रयोग करता है। प्रत्येक युग में सचेत और सजग रचनाकर अपने युग की भाषा तलाश करता है। जिससे बदलते परिवेश और स्थितियों को भाषिक स्तर पर युगानुरूप अभिव्यक्ति मिले। भीष्म साहनी की कहानियों की भाषा सार्थक सिद्ध होती है। उन्होंने अपनी कहानियों में इस देश के आम लोगों में प्रचलित जन सामान्य की भाषा का ही प्रयोग किया है। इनकी भाषा किसी एक क्षेत्र, स्तर, वर्ग या समाज तक सीमित नहीं है। विभिन्न क्षेत्रों, वर्गों और समाज से जुड़ी हुई इनकी भाषा अभिव्यक्ति की ऐसी शक्ति लिए हुए है जो बहुत कम कहानीकारों में देखने को मिलती है। हर वर्ग एवं स्तर के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में है। इनकी कहानियों में सहजता, सरलता और सुबोधता भी है। बोल–चाल की भाषा को अपनाकर इन्होंने अपनी भाषा को अत्याधिक प्रभावपूर्ण बनाया। कृत्रिमता या अस्वाभाविकता इनकी भाषा में कहीं नहीं है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर लेखक ने उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पंजाबी आदि भाषाओं पर अधि ाकार को प्रमाणित किया है। साहनी भाषा की सहजता के समर्थक हैं। इस सन्दर्भ में श्याम कश्यप ने ठीक ही कहा है – ''भीष्म जी की भाषा की सबसे बड़ी खूबी है, उसकी सादगी। इस सादगी का अर्थ सरल और स्पष्ट भाषा का कतई नहीं है, जो अपनी कला–विहीनता के कारण अखबारी भाषा का कुछ जड़ रूप होती है। उनकी सादगी में भी कलात्मक वक्रता और गतिशील तरलता है, वह उनके समकालीनों में बहुत कम देखने को मिलेगी।

भीष्म साहनी की कहानियों की विषय वस्तु का सम्बन्ध अधिकांशतः मध्यवर्ग है। इसलिए उन्होंने विशेषरूप से पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने वातावरण और परिवेश की सजीव सृष्टि के लिए हिन्दी, उर्दू, तत्सम, अंग्रेजी का प्रयोग प्रचूर मात्रा में किया है जिससे कहानी की रोचकता में चार चाँद लग गये हैं।

प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग इनकी कहानियों में मिलता है। ग्रामीण कथावस्तु के अनुसार ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया है। शहर के शिक्षित नागरिक पात्रों की भाषा अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी है। साहनी ने प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग किया है – 'चीफ की दावत' कहानी व्यंग्यात्मक है जिसमें माँ पुरानी पीढ़ी की अनपढ़ औरत है जबकि बेटा पढ़ा लिखा शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधि है।

बिम्ब वह है जो बुद्धि और भावना विषयक पूरे जटिल तंत्र को क्षण मात्र में प्रस्तुत कर देता है। यह अदृश्य विचारों की अन्विति है। भीष्म साहसी की कहानियों में सांकेतिकता व बिम्ब की प्रचुरता नहीं है। फिर भी कुछ कहानियों में बिम्ब उभरकर सामने आते हैं। 'तस्वीर' कहानी में विधवा स्त्री की परिस्थिति के बिम्ब का उदाहरण द्रष्टव्य है – ''उसकी आँखें बन्द करने की देर थी कि सारा दृश्य बदल गया था। मुझे

लगा, जैसे घर के किवाड़ और खिड़कियाँ सब टूट गए हैं, और हू–हू करता अंधड़ घर में चक्कर लगाने लगा है। मुझे लगता, जैसे मेरी आँखों के सामने कोई नाटक खेला जा रहा है। एक दृश्य वह था, जब वह जीता था, दूसरा दृश्य, जब वह मर चुका था। एक दृश्य के बाद जब दूसरा दृश्य बदला, तो पहला दृश्य झूठा पड़ गया, सपने की तरह झूठा।''

भावानुकूल भाषा का प्रयोग भी इनकी कहानियों की मूल विशेषता है। भाषा का भावानुकूल प्रयोग कहानी को सहज और प्रभावी बनाता है। ऐसी भाषा मनोरंजक एवं रोचक होने के साथ–साथ पाठकों के हृदय पर अपने विचारों का मनोवांछित प्रभाव डालती है और पाठक को कहानी के पात्रों से गहराई से जोड़ती है 'तस्वीर' कहानी का उदहारण द्रष्टव्य है – ''मैं उस रात लेटी, तो मेरे मन में अचानक गहरी टीस उठी। वह मर के भी अच्छा है। मैं दर–दर की ठोकरें खाकर भी बुरी हूँ। उसने जीते जी बच्चों को ऐसा अपने हाथ में किया था कि मरने के बाद भी वे उसके साथ है, उसी को अच्छा समझते हैं। उसके चले जाने के बाद भी बच्चे उसके साथ मेरी तुलना करते हैं'' 'तस्वीर' कहानी में भी भाषा के विविध शब्द लय के साथ आ गये हैं। भीष्म साहनी की कहानियों में कही भी भाषा का पाण्डित्य नहीं उभरता है मूल्तः इनकी भाषा रचनाकर की भाषा है, न कि कलाकार की भाषा है। कलाकार की भाषा का पाठक समुदाय सुशिक्षित होगा। भीष्म की कहानियाँ सबके लिये हैं। अरबी–फारसी शब्द : दफ़्तर, तस्वीर, शिकायत, तौफीक, अंग्रेजी :– बीमा कम्पनी, देशी शब्द : फूहड़, संस्कृत : मुँह, दृश्य आदि।

'चीफ की दावत' कहानी में भाषा सहज, सरल और अद्वितीय गहनता लिए हुए है। शब्दों में व्यवहारिकता और भावुकता है ही, साथ ही लाक्षणिकता से सुसज्जित है। लेखक ने प्रायः बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली अंग्रेजी और पंजाबी भाषा आदि के उन सभी शब्दों को यथोचित रूप में अपनाया है, जो प्रायः मध्यवर्गीय हिन्दी भाषा में प्रचलित है। इतना अवश्य है कि लेखक ने उन शब्दों का अर्थ भी प्रस्तुत करके पाठक को सहज होने में सहायता प्रदान की है। मुकम्मल, डिरंक, अड़चन, अवाक, साक्षात, रौ, रौब आदि शब्द कहानी को उतार–चढ़ाव व सार्थकता प्रदान करते हैं। अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग कहानी को सहज बनाते हैं–''और जो सो गई तो ? डिनर का क्या मालूम कब तक चले।''

सरलता, सहजता और सुबोधता कहानी को प्रेषणीय बनाती है ''माँ झिझकते हुए, अपने में मिसटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अन्दर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर। ठीक तरह से नमस्ते भी, न कर पायी। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।'' प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग इनकी कहानियों में मिलता है। ग्रामीण कथावस्तु के अनुसार ग्रामीण भाषा का प्रयोग किया है। शहर के शिक्षित नागरिक पात्रों की भाषा अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी है।

भीष्म साहनी ने पात्रानुकूल भाषा को अपनाया है। लेखक का मित्र वाङ्‌चू के भारत के प्रति रूचि का कारण व्यक्त करने का उद्धरण द्रष्टव्य है –''पसन्द क्यों न होगा। यहां थोड़े में गुजर हो जाती है, सारा वक्त धूप खिली रहती है। फिर बाहर के आदमी को लोग परेशान नहीं करते। जहां बैठा है वही बैठा रहने देते हैं। इस पर उन्हें तुम–जैसे झुड्‌डू मिल जाते हैं, जो उनका गुणगान करते रहते हैं और उनकी आवभगत करते रहते हैं। तुम्हारा वाङ्‌चू भी यही पर मरेगा ...।'' 'वाङ्‌चू' कहानी में विविध भाषाओं के शब्द मिलते हैं– जैसे :– संस्कृत शब्द, संशय, अतिथि, सप्ताह, अरबी–फारसी–सैलाब, जुलूस, खत, अंग्रेजी–सोसाइटी, एलुमीनियम, राइटिंग पैड इत्यादि।

भीष्म जी की भाषा पर उर्दू का प्रभाव तो है ही पर उसका लहजा पंजाबी अधिक है। इसलिए पंजाब की आत्मीयता, तरलता स्थान–स्थान पर छलक पड़ती है। अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए इन्होंने तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी किया है। साथ ही साथ जहां आवश्यक है वहां मुहावरों, कहावतों और सूक्तियों का जिस प्रकार का प्रयोग किया है उससे उनकी भाषा की सार्थकता और अधिक बढ़ गई है। इस प्रकार कह सकते हैं कि भीष्म जी की कहानियों का शिल्प अपनी विशेषताओं के साथ परिलक्षित होता है।

10.3.4 चरित्र शिल्प :

कहानी के मुख्य तत्वों में चरित्र–शिल्प का महत्त्व सबसे अधिक है। क्योंकि कहानी की जान संक्षिप्तता है और संक्षिप्त कथावस्तु को आगे बढ़ाने का कार्य पात्रों के माध्यम से ही संभव हो पाता है। आधुनिक कहानी में वही कथा श्रेष्ठ मानी जाती है जिसमें लेखक पात्रों का चरित्र–चित्रण करता हुआ किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या करे। सफल चरित्र–चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि लेखक को मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान हो। कथावस्तु के अनुकूल पात्रों का चयन किया जाना चाहिए।

10.4 पात्रों का वर्गीकरण :

1. चरित्र के आधार पर

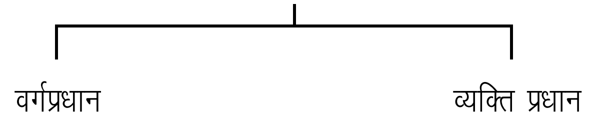

2. स्वभाव के आधार पर

- स्थिर पात्र
- गतिशीलपात्र
- विचित्र पात्र
- अधमपात्र

3. अध्ययन की सुविधानुसार

- मुख्यपात्र
- गौणपात्र

चरित्र–चित्रण की प्रणालियाँ :– चरित्र–चित्रण के लिए चार प्रणालियाँ प्रयुक्त होती है :– 1. वर्णन द्वारा, 2. संकेत द्वारा, 3. वार्तालाप, 4. घटनाओं द्वारा। भीष्म जी ने जिन चरित्रों को उभारा है वे चरित्र पूर्ण या अपूर्ण अथवा अच्छे–बुरे नहीं होते हैं। उनके चरित्र तो इन सबका मिला जुला रूप होते हैं जो पूर्ण और वास्तविक है। साथ ही वे जिस वस्तुगत सत्य को स्थितियों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं वो सत्य भी समय सापेक्ष होता है। इस दृष्टि से चीफ की दावत, वाङ्‌चू, तस्वीर, शोभायात्रा, आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने पात्रों का चुनाव सामान्य जन से किया है इसलिए सहज और स्वाभाविक चरित्रों के कारण ही उनकी विश्वसनीयता बढ़ गई है। उदाहरणतः 'चीफ की दावत' कहानी की बूढ़ी माँ, वाङ्‌चू और तस्वीर कहानी की विधवा स्त्री। लेखक की ख़ासियत यह है कि वह प्रत्येक पात्र की विशिष्टता को उसकी चाल–ढाल, वेश–भूषा उसके संवाद आदि के जरिए उभारते हैं।

'विधवा स्त्री' भारतीय समाज की विडम्बनापूर्ण परम्परा का अनुसरण करने पर मजबूर स्त्री है। ससुराल में उपेक्षित जीवन जीने के साथ–साथ बच्चों की नज़र में भी उपेक्षित है। यह पीड़ित स्त्री पात्र भारतीय समाज की विधवा स्त्री के जीवन का यथार्थ चित्रांकन करती हुई उसकी परिस्थितियों से अवगत करवाती है। 'तस्वीर' कहानी की विधवा स्त्री पात्र विधवा जीवन के त्रासमयी जीवन को बड़े ही सपाट तरीके से स्पष्ट करती हैं। पुरुष प्रधान समाज ने स्त्री को दोयम दर्जे का ही समझा है, इसलिए वह उसकी सुरक्षा करना अपना दायित्व समझता है। पुरुषों ने स्त्री को 'अन्या' ही समझा, इसलिए वह स्त्री के निर्णय का कभी महत्त्व नहीं समझता है – ''तू कौन है फैसले करनेवाली ?'' उन्होंने चिल्लाकर कहा –तेरे पास है क्या ? चुपचाप सामान बाँधो और चलो मेरे साथ। मैं सिर से पाँव तक काँप उठी, पर मैं कुर्सी को कसकर पकड़े रही।''

विद्रोही पात्र अन्याय, अत्याचार और पाखण्ड का शिकार बने हुए होते हैं। इस प्रकार के पात्र निम्नस्तर के पात्र कहलाये जाते हैं। इनकी कहानियों के स्त्री पात्र ऐसे हैं जो पारम्परिक आदर्श नहीं भूलते

हैं, लेकिन अपने अस्तित्व हेतु विरोध करना जानते हैं। 'तस्वीर' कहानी में घर और घर का सामान बेचे जाने का विधवा स्त्री विरोध करती है – ''जी नहीं, मैं यही पर रहूंगी। मैं यहीं बच्ची को लेकर रहूंगी। कोई छोटा–मोटा काम ढूंढ लूंगी। मैं जानती थी कि अब वे जली–कटी कहेंगे, कोसेंगे, चिल्लाएँगे, पर उनकी आवाज़ फिर धीमी पड़ गई।''

'वाङ्चू' कहानी का पात्र वाङ्चू भी निम्नस्तर का पात्र है जो व्यवस्था की मार झेलने वाला असहाय व्यक्ति है। वह विरोध करने का पहाड़ा नहीं पढ़ा है, इसलिए उसे 'बूदम' भी कहा जाता है, जिस राजनीति में वह कभी ध्यान नहीं देता था, वही गलत राजनीति और भारत से चीन और चीन से भारत की आवाजाही के कारण उसका जीवन संकटग्रस्त हो जाता है। कभी कलकत्ता और कभी बनारस के पुलिस स्टेशन में हाजिरी देता रहता है। वाङ्चू का सच झूठ समझा जाता रहा और अन्ततः वह अपने आप की सफाई देते हुए भारत में मर जाता है। लेखक पात्र वाङ्चू की मृत्यु की खबर सुनकर क्षोभग्रस्त होता है ''मैं फौरन तो सारनाथ नहीं जा पाया, जाने में कोई तुक भी नहीं थी, क्योंकि वहां वाङ्चू का कौन बैठा था, जिसके सामने अफसोस करता, वहां तो केवल ट्रंक ही रखी थी। पर कुछ दिनों बाद मौका मिलने पर मैं गया। ...मैंने मुड़कर देखा, कैंटीन का रसोइया भागता चला आ रहा था। अपने पत्रों में अक्सर वाङ्चू उसका जिक्र किया करता था... सारे संसार में शायद यही अकेला जीव था, जिसने वाङ्चू की मौत पर दो आँसू बहाये थे।'' भीष्म साहनी के पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह पाठक के मस्तिष्क से ओझल नहीं होते हैं। इनकी यह तीनों कहानियां किसी न किसी जिंदा चरित्र और दैनिक जीवन के यथार्थ का निरुपण करती हैं। यथार्थ का यह निरूपण बिल्कुल सीधा सादा है।

आदर्श पात्र विशेष रूप से परंपरित मूल्यों एवं सत्य से चिपके रहने वाले पात्र होते हैं। ये पात्र किसी भी स्थिति–परिस्थिति में अपनी आस्था को खोने नहीं देते है जैसे 'चीफ की दावत' कहानी की बूढ़ी माँ। बूढी माँ परम्परा से जुड़ी वात्सल्य प्रेम से ओतप्रोत है। वह संतान की तरक्की के मोह को नहीं छोड़ पाती है। चाहे संतान शामनाथ बूढ़ी मां के साथ दुर्व्यवहार करता है। आदर्श पात्र दूसरों के कल्याण में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। वह दूसरों के रास्ते में कांटे बिछाकर आगे नहीं बढ़ते हैं, बल्कि अपने जीवन की बाजी लगाकर दूसरों के सपनों को पूरा करने की कोशिश करते हैं। आदर्श पात्र मानव कल्याण का सपना देखते हैं और मानवता की भाषा बोलते हैं। बूढ़ी मां स्वार्थी बेटे की तरक्की के लिए नज़र कमज़ोर होते हुए भी उसके चीफ के लिए फुलकारी बनाने का आश्वासन देती है – ''मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी–बनायी ले लो। ... क्या तेरी तरक्की होगी ? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा ? क्या उसने कुछ कहा है ?''

यथार्थ पात्र युगीन परिवेश में हमारे आस–पास मौजूद होते हैं। ऐसे पात्रों के न तो आदर्श, ध्येय

और सिद्धान्त होते हैं। ये पात्र परिस्थितियों से समझौता करने वाले पात्र होते हैं। जैसे – 'चीफ की दावत' कहानी का मिस्टर शामनाथ। वह एक ऐसा पात्र है जो मध्यवर्ग समाज का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यवर्गीय समाज कोई आदर्श नहीं रख रहा बल्कि धीरे–धीरे मूल्यहीन बनता जा रहा है। पैसे की होड़ में व्यक्ति दौड़ा जा रहा है और अपने दायित्वों के प्रति सजग भी नहीं है। वह हर एक का उपयोग करना जानता है जिससे भी लाभ होता है। शामनाथ अपना स्वार्थ साधने के लिए अपनी माँ का उपयोग करता है और दावत में बुलाये सभी लोगों के बीच उसे हंसी का पात्र भी बनाता है। शामनाथ बाजार के युग में जीने वाला व्यक्ति है इसलिए रिश्तों को भी बाजार के तराज़ू पर तौलता है – ''बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कबसे कह रही हूँ। ...क्या कहा माँ ? यह कौन सा राग तुमने फिर छेड़ दिया ? ....तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो। ...तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनायेगा ? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।''

10.4 चरित्र :

'चरित्र–चित्रण' कहानी का दूसरा प्रमुख महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। चरित्र–चित्रण के द्वारा पात्रों के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला जाता है। सफल कथाकार के पात्र पाठक के अत्यन्त निकट होते हैं। कभी–कभी तो ऐसा लगता है जैसे वे स्वयं ही हैं।

कथावस्तु अगर शरीर है तो पात्र या चरित्र उसका प्राण है। यह पात्र किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। भीष्म साहनी के पात्र गतिशील हैं। इन्होंने पात्रों को समाज के प्रत्येक वर्ग से चुना है जिनका चित्रण बड़ी सफलता पूर्वक किया है।

10.4.1 शामनाथ :

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में शामनाथ मुख्य पात्र के रूप में उभरता है। शामनाथ एक ऐसा पात्र है जो सामाजिक तथा आर्थिक विडंबनाओं से जूझ रहा है। वह स्वयं को आर्थिक दृष्टि से सुव्यवस्थित करने के लिए कुछ भी कर सकता है। 'चीफ को दावत' पर बुलाना उसे उत्कृष्ट कोटि का भोजन खिलाकर प्रमोशन के लिए अवसर पाने की इच्छा उसके चरित्र के लालचीपन को दर्शाती है। अपनी इस लौकिक उन्नति की इच्छा की पूर्ति हेतु वह हर बंधन को तोड़ सकता है। घर के 'फालतू' समान सी माँ को कैसे दृष्टि से ओझल किया जाए – इसकी हर संभावना उसके मन में कौंधती है। सहेली के घर भेजा जाय, दरवाजा बंद करके उस पर ताला लगा दिया जाए या फिर कुछ और किया जाए यह प्रश्न उसे तमाम तरह से विचलित करते हैं। अन्ततः वह निर्णय लेता है कि ''माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहां बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जायें, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली

जाना।'' इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि शामनाथ तरक्की हेतु संवेदनहीन होता जाता है और अपनी बूढी माँ को 'फालतू' वस्तु के रूप में आंकता है।

शामनाथ स्वार्थी व्यक्ति है। स्वार्थ साधने के लिए वह किसी भी प्रकार का घृणित कार्य कर सकता है। जब माँ चीफ के आकर्षण का कारण बनती है, तो वह उसे गाना गाने और फुलकारी बनाकर देने के लिए विवश करता है। शामनाथ के कहे शब्द द्रष्टव्य है – ''तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनायेगा, साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।'' शामनाथ अर्थ एवं तरक्की की लोलुपता में इतना संलिप्त हो जाता है कि वह सही और गलत की दिशा भूल जाता है।

इस कहानी में शामनाथ एक दिखावटी पात्र के रूप में उभरता है। वह बाहरी ताम–जाम में विश्वास रखता है, इसलिए चीफ को दावत पर आमंत्रित करने पर वह उसे अपने बड़े होने का अहसास कराना चाहता है। वह चीफ को दिखाना चाहता है कि वह किसी से भी कमज़ोर नहीं है। वह स्वंय को सभ्य और पूंजीपति दर्शाने हेतु घर का वातावरण बदल देता है – ''आखिर पांच बजते–बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियां, मेज, तिपाइयां, नैपकिन, फूल सब बरामदे में पहुंच गये। ड्रिंक का इन्तजाम बैठक में किया गया। अब घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहस एक अड़चन खड़ी हो गयी, माँ का क्या होगा ?'' शामनाथ का चरित्र ऐसा है कि वह परम्परा के प्रति आदरभाव न रखकर उसके प्रति नकार भाव रखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परम्परा उसके लिए एक फालतू वस्तु की भांति है जिसका समय के उपरान्त उपयोग खत्म हो जाता है। इसलिए वात्सल्य प्रेम से ओत प्रोत माँ उसे फालतू प्रतीत होने लगती है।

वह मौकापरस्त है। जहाँ भी उसे फायदा मिलता है वह किसी भी तरह का समझौता उस स्थिति से नहीं करता है। इस प्रकृति के कारण वह मूल्यहीन बनता जाता है। आधुनिक समय की दौड़ में वह इतना संलग्न हो जाता है कि वह दायित्वों के प्रति सचेत नहीं रहता है। इसलिए मेहमानों के समक्ष वह अपनी माँ को हास्यस्पद बनाता है। माँ की घुटन को समझने के बजाय वह मौके की फिराक में रहता है कि ऐसी कौन सी स्थिति आए की चीफ उस पर प्रसन्न हो जाए और उसे प्रमोशन मिल जाए। माँ की हास्यस्पद स्थिति का मार्मिक चित्र इस प्रकार है ''माँ, हाथ मिलाओ। पर हाथ कैसे मिलाती। दायें हाथ में तो माला थी। घबराहट में मां ने बायां हाथ ही साहब के दाये हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल ही दिल में जल उठे। देसी अफसरों की स्त्रियां खिलखिलाकर हंस पड़ी।

इससे स्पष्ट होता है कि शामनाथ मध्यवर्ग समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। वह स्वार्थी, मौकापरस्त एवं दिखावटी है। वह आधुनिकता के परिवेश में अंधा व्यक्ति है इसलिए जीवन मूल्यों के प्रति कोई दायित्व नहीं समझता है।

10.4.2 वाङ्चू :

वाङ्चू कहानी का मुख्य पात्र वाङ्चू है। सम्पूर्ण कहानी इसी पात्र के इर्द–गिर्द घूमती है। 'मुस्कराहट' उसके चेहरे की विशेषता है। वह समाज की प्रत्येक परिस्थिति में एक सा भाव लिए रहता है। वह मानवता की भाषा बोलने वाला पात्र है। जो प्रेम के बल पर सम्बन्ध बनाता था।

वाङ्चू मित्त भाषी बौद्ध भिक्षु है। वह कम बोलने में विश्वास रखता है। बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करना उसे अच्छा लगता है। वह किसी भी विषय पर खुलकर बात नहीं करता है इसी कारण उसे 'बूदम' भी कहा गया। उसे दुनिया के किसी भी विषय में दिलचस्पी नहीं थी। वाङ्चू प्यार का पुजारी था, वह प्रेम की भाषा बोलता और प्यार भरी मुस्कराहट मुँह पर फैलाये रखता था। समाज के किसी भी राजनीतिक मुद्दों पर वार्तालाप करने में कोई रूचि नहीं रखता था। ''मुझे याद नहीं कि उसने हमारे साथ कभी खुलकर बात की हो, या किसी विषय पर अपना मत पेश किया हो। उन दिनों मेरे और मेरे दोस्तों के बीच घण्टों बहसें चला करती, कभी देश की राजनीति के बारे में, कभी धर्म के बारे में, लेकिन वाङ्चू इनमें कभी भाग नहीं लेता था। वह सारा वक्त धीमे–धीमे मुस्कराता रहता और कमरे में एक कोने में दबकर बैठा रहता।''

महाप्राण के प्रति आस्था भाव :– वाङ्चू महाप्राण के प्रति आस्था भाव रखने वाला भक्त है। महाप्राण का चाहे जन्म स्थान हो, चाहे महाप्राण के प्रवचन हो, चाहे महाप्राण जिस–जिस दिशा की ओर चरण उठे हो, वाङ्चू भक्तिपूर्ण कल्पना में डूबा मन्त्रमुग्ध सा महाप्राण के नाम से स्थापित हर दिशा में घूम आया था। महाप्राण से जुड़े प्रत्येक स्थान से वह संवेदनशील रूप से जुड़ा था। इस सन्दर्भ में कहानी का उद्धरण द्रष्टव्य है – ''जब से श्रीनगर में आया था, बर्फ से ढके पहाड़ों की चोटियों की ओर देखते हुए अक्सर मुझे कहता – वह रास्ता तहासा को जाता है ना, उसी रास्ते बौद्धग्रन्ध तिब्बत में भेजे गये थे। वह उस पर्वतमाला को भी पुण्य–पावन मानता था, क्योंकि उस पर बिछी पगडण्डियों के रास्ते बौद्ध भिक्षु तिब्बत की ओर गये थे।''

वाङ्चू का प्रेमी रूप :– कहानी में मित्त भाषी वाङ्चू का प्रेमी रूप भी उभरता है। लेखक की छोटी मौसेरी बहन नीलम के प्रति वाङ्चू के हृदय में प्रेम के बीज पनप चुके थे। वह उसके प्रति प्रेम भाव रखता है। वाङ्चू का नीलम के प्रति कनखियों से देखना लेखक को शंका में डालता है। वाङ्चू श्रीनगर में कोई एक सप्ताह लेखक के पास ही ठहरा। उन्हीं दिनों उनकी छोटी मौसेरी बहन भी आई थी। शीघ्र ही दोनों में अन्तरंगता बढ़ती गई। अब दोनों में उपहारों का आदान–प्रदान होना आरम्भ होने लगा था। ''और उसने दोनों मुट्ठियाँ खोल दीं, जिनमें चांदी के कश्मीरी चलन के दो सफेद झूमर चमक रहे थे। और वह दोनों झूमर अपने कानों के पास ले जाकर बोली – कैसे लगते हैं ?...उसके अपने कान कैसे भूरे–भूरे हैं ! ...मेरे इस प्रेमी के ...तुम्हें उसके भूरे कान पसन्द हैं ?''

भारत के प्रति प्रेम भाव :

वाङ्चू भारत से चीन वापिस जाता है तो वहां उदास रहने लगता है। चीन में उसका एक भाई रहता था राजनीतिक उथल–पुथल के कारण उससे भी उसका सम्पर्क टूट गया था। वाङ्चू जब चीन के ग्राम प्रशासन अर्थात पार्टी दफ्तर से लौटता है तो अत्याधिक उदास हो जाता है। वह जिस धरती पर पैदा हुआ, उसे वह उदास प्रतीत होने लगती है, क्योंकि उसे जो प्रेम भारत में मिलता है, जो शान्ति उसे भारत में मिलती है, वह उसे चीन में नहीं मिल पाती है। वह मन से भारत में ही रहा था, शारीरिक रूप से वह चीन में था और वह भी खोया हुआ सा। ''जब वाङ्चू पार्टी दफ्तर से लौटा, तो थका हुआ था। उसका सिर भन्ना रहा था। अपने देश में उसका दिल जमीं नहीं पाया था। आज वह और भी ज्यादा उखड़ा–उखड़ा महसूस कर रहा था। छप्पर के नीचे लेटा तो उसे सहसा ही भारत की याद सताने लगी। उसे सारनाथ की अपनी कोठरी याद आयी, जिसमें दिन भर बैठा पोथी बांचा करता था। नीम का घना पेड़ याद आया, जिसके नीचे कभी–कभी सुस्ताया करता था। स्मृतियों की श्रृंखला लम्बी होती गयी। सारनाथ की कैंटीन का रसोइया याद आया, जो सदा प्यार से मिलता था।'' भारत में रहने की मृगतृष्णा उसे वापिस खींच लाती है। जो प्यार, स्नेह अपनापन उसे भारत में मिला उसे चीन में नहीं मिला।

राजनीति के पाटों में पीसता वाङ्चू :– 'वांङ्चू' कहानी का वाङ्चू एक ऐसे पात्र के रूप में उभरता है जो गलत राजनीतिक व्यवस्था एवं उसके भ्रष्ट रूप का पर्दाफाश करता है। उसके चरित्र से स्पष्ट होता है कि किस तरह किसी भी सामाजिक मुद्दों पर रूचि न रखने वाला व्यक्ति भी राजनीति का शिकार हो जाता है। जो समाज में प्रेम की धारा बहाने के पक्ष में है उसे ही यह अव्यवस्था निगल डालती है। बौद्ध भिक्षु वाङ्चू अव्यवस्था की चक्की में पिसता हुआ गुमनाम की मृत्यु को प्राप्त होता है। दो संस्कृतियों को एक करने वाले वाङ्चू की मृत्यु हृदय को भावविह्वल कर डालती है। वाङ्चू का व्यक्तिगत जीवन राजनीतिक बन जाता है। उसे हर हफ्ते महीने भर में वह कहां जाता है , क्या खाता है, क्या पढ़ता है, क्यों पढ़ता है इत्यादि प्रश्नों से सामना करना पड़ता है। आखिर बुलावा आया और वाङ्चू चिक उठाकर बड़े अधिकारी की मेज के सामने जा खड़ा हुआ। तुम चीन से कब लौटे ? ...कलकत्ता में तुमने अपने बयान में कहा कि तुम शान्तिनिकेतन जा रहे हो। फिर तुम यहाँ क्यों चले आये ? पुलिस को पता लगाने में बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है। ...तुम चीन से क्यों लौट आये ? मैं भारत में रहना चाहता हूँ ...। 'जो लौट आना था, तो गये क्यों थे ?'' भारत और चीन की आपसी मुठभेड़ में आम नागरिक राजनीति से अनभिज्ञ रहने वाला वाङ्चू मारा जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि वाङ्चू कहानी का मुख्य पात्र है। वह सादगी से भरपूर है, वह संवेदनशील एवं मित्तभाषी है और वह दो देशों की संस्कृतियों को एक कर प्रेम की गंगा बहाने का पक्षधर है। वह मानवता को स्थापित करने में रूचि रखता है।

10.5 सारांश :

अन्ततः कहा जा सकता है भीष्म साहनी ने प्रचलित शिल्प को त्यागकर रचना के ताने–बाने से मानवीय सम्बन्धों के बदलाव को अभिव्यक्त किया है। भावानुकूल भाषा का प्रयोग कर अपने विचारों से पाठकों के हृदय को प्रभावित किया है। भाषा का सहज प्रयोग इनकी कहानियों को सम्प्रेषणीय बनाता है।

10.6 कठिन शब्द :

1. वैषम्य
2. प्रतिपाद्य
3. द्रष्टव्य
4. उपेक्षा
5. समक्ष

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. भीष्म साहनी की कहानियों की शिल्प योजना पर विचार व्यक्त कीजिए।

____

____

____

____

2. भीष्म साहनी की कहानियों के देशकाल और वातावरण पर प्रकाश डालते हुए कहानियों की शैली को स्पष्ट करें।

____

____

____

____

3. रूप की दृष्टि से भीष्म साहनी की कहानियों पर प्रकाश डालिए।

____

____

4. भीष्म साहनी की कहानियों में भाषा के प्रयोग पर प्रकाश डालिए।

5. भीष्म की कहानियों में चरित्र शिल्प किस प्रकार का उभरा है।

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. आलोचना त्रैमासिक पत्रिका; भीष्म साहनी स्मृति अंक – 2004, अंक 17–18, अप्रैल–सितम्बर
2. भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय संबंध – डॉ० संजय गडपायले
3. भीष्म साहनी की प्रमुख कहानियों में 'व्यवस्था' का चित्रण – डॉ० के. श्याम सुन्दर
4. हिन्दी कहानी रचना और परिस्थिति – सुरेन्द्र चौधरी
5. भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य – डॉ० विवेक द्विवेदी
6. भीष्म साहनी के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प – डॉ० शर्मिष्ठा भाई पटेल

– – – – –

नयी कहानी आंदोलन और कमलेश्वर

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 नयी कहानी आंदोलन

11.4 नयी कहानी आंदोलन और कमलेश्वर

11.4.1 कमलेश्वर एक परिचय

11.4.2 कमलेश्वर – नयी कहानी आंदोलन के पुरोधा

11.5 निष्कर्ष

11.6 कठिन शब्द

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप हिन्दी साहित्य में कहानी के सबसे महत्वपूर्ण एवं सर्वविदित कथा आंदोलन 'नयी कहानी आंदोलन' से परिचित होंगे। इस आलेख से आप इस बात से भी अवगत होंगे कि नयी कहानी आंदोलन को सफल बनाने में कथाकार कमलेश्वर की कितनी महत्ती भूमिका रही है। कमलेश्वर ने अपने लेखन की शुरूआत कहानियों से ही की थी इसी कारण उन्हें एक कहानीकार के रूप

में विशेष ख्याति प्राप्त हुई। उनकी कहानियाँ कैसे नयी कहानी की हरेक विशेषता से ओतप्रोत है इससे भी आप परिचित होंगे।

11.2 प्रस्तावना

नयी कहानी आंदोलन मूलतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कथाकारों के वैचारिक धरातल में आए बदलाव को रूपायित करता है। इस आंदोलन से जुड़े कथाकारों ने कहानियों में जीवन को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त कर हिन्दी कहानी को नयी दिशा प्रदान की। नयी कहानी आंदोलन को प्रबल बनाने वाले कथाकारों में कमलेश्वर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने न केवल स्वयं कहानियाँ लिखकर नयी कहानी आंदोलन को स्थापित किया बल्कि एक संपादक के रूप में भी नये कथाकारों को नया एवं सार्थक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इतना ही नहीं एक आलोचक के रूप में भी नयी कहानी आंदोलन को संरक्षण प्रदान कर उसके विरोधियों को पुरजोर जबाव दिया।

11.3 नयी कहानी आंदोलन

हिन्दी साहित्य में कहानी का सबसे महत्वपूर्ण एवं सर्वविदित आंदोलन 'नयी कहानी आंदोलन' है। नयी कहानी आंदोलन मूलतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कथाकारों के वैचारिक धरातल में आए बदलाव की स्पष्ट झलक प्रस्तुत करता है। इससे पहले कहानी पुरानी परिपाटी को लेकर लिखी जाती थी। कहानी घटनाप्रधान होने के साथ–साथ आदर्शात्मक होती थी किन्तु नये कहानीकारों ने सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जीवन को यथार्थ रूप में देखने समझने का प्रयास किया। नयी कहानी के दौर में विशिष्ट भाव बोध की कहानियां लिखी जाने लगी।

हिन्दी साहित्य जगत में नयी कहानी आंदोलन की शुरूआत सन् 1955–56 से मानी जाती है। सन् 1955 में इलाहाबाद से 'कहानी' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसके संपादक भैरवप्रसाद गुप्त थे। सन् 1956 में इसी पत्रिका में नयी कहानी नाम से एक विशेषांक निकला जिसमें 18 लेखकों की कहानियां शामिल की गई। इसी विशेषांक के आधार पर उस दौर की कहानियों को नयी कहानी कहा जाने लगा। इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कहानियां कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पूर्ववर्ती कहानियों से भिन्न थी। कहानी के क्षेत्र में आए इस नए बदलाव ने पाठकों एवं आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इसी बदलाव ने आगे चलकर नयी कहानी आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

प्रत्येक आंदोलन कहीं–न–कहीं अपने ऐतिहासिक संदर्भ से युक्त होता है। नयी कहानी आंदोलन भी इसका अपवाद नहीं। नयी कहानी भी अपने ऐतिहासिक संदर्भ से नए भाव बोध, दश्ष्टिबोध लेकर अपने मार्ग की ओर आगे बढ़ी। स्वतंत्रता के बाद मानव जीवन की अपूर्ण अपेक्षणाओं से पैदा हुए मोहभंग का इस

पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति से आम जन की अपेक्षाएं खण्डित हुई उनके आज़ादी को लेकर देखे गए स्वप्न धराशायी हुए परिणामस्वरूप नई पीढ़ी के मन में मोहभंग पैदा हुआ। जिससे सामाजिक जीवन में अंतर्विरोधात्मक स्थितियों जैसे कुंठा, घुटन, पीड़ा, निराशा, अकेलापन एवं आशंका का भाव आ गया। इन सबकी अभिव्यक्ति का केन्द्र नयी कहानी ही रही। अतः यह कहना गलत न होगा कि नये कहानीकारों ने स्वातंत्र्योत्तर जीवन को अपनी कहानियों में व्यक्त कर जीवन के नये संदर्भों को खोजने का प्रबल प्रयास किया।

नयी कहानी आंदोलन से जुड़े कथाकारों में कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव की त्रयी के अतिरिक्त निर्मल वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भंडारी, कश्ष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, अमरकांत आदि कथाकारों ने भी अहम भूमिका अदा की। इन कथाकारों ने हिन्दी साहित्य को कई चर्चित एवं यादगार कहानियां देकर समश्द्ध तो किया ही साथ ही नयी कहानी को कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर अपूर्व समश्द्धि भी प्रदान की। इस आंदोलन से जुड़े कहानीकारों ने कहानियों में उन्हीं जीवन–विषयों को अभिव्यक्त किया जिनका उनके साथ सीधा संपर्क रहा अर्थात् नया कहानीकार जिन नए संर्दर्भों की बात करता है। वे संदर्भ किसी बाहरी परिवेश से न होकर उसके अपने समाज, अपने आस–पास के जीवन की ही देन हैं। इस प्रकार इस आंदोलन से जुड़े कहानीकारों द्वारा जीवन के यथार्थ को बड़ी ईमानदारी के साथ चित्रित किया गया है। यही कारण है कि नयी कहानी कल्पना प्रसूत होने पर भी अपने आस–पास के जीवन की कहानी दिखती है।

11.4 नयी कहानी आंदोलन और कमलेश्वर

11.4.1 कमलेश्वर एक परिचय

कमलेश्वर नयी कहानी आंदोलन से जुड़े कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका जन्म उत्तर प्रदेश में मैनपुरी नामक कस्बे में 6 जनवरी 1932 में हुआ। एक साधारण परिवार में जन्में कमलेश्वर ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल पर सफलता के कई कीर्तिमान स्थापित किए। कमलेश्वर ने अपने लेखन कला की शुरूआत कहानियों के माध्यम से ही की थी। कहानियों का उनका सफर रेलवे दफ्तर की उन कापियों से शुरू हुआ था जो उनके बड़े भाई कभी–कभार घर लाया करते थे। उन्होंने व्यवस्थित तौर पर कहानियां लिखना तब शुरू की जब वह पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगीं। उनकी पहली कहानी 'कामरेड' थी जो एटा से निकलने वाली 'अप्सरा' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद उनका यह सफर निरंतर चलता रहा और आज वे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक के रूप में जाने जाते हैं। कहानी लिखने के विषय में उनकी मान्यता है कि ''कहानी लिखना मेरे लिए यातना नहीं है, यातनापूर्ण है वे कारण जो मुझे कहानी लिखने के लिए मजबूर करते हैंकृकृ और यह मजबूरी तभी होती है जब मेरा अपना संकट दूसरों के संकट से सम्बद्ध होकर असाध्य हो जाता हैकृ या मेरी करुणा दूसरों की संवेदना से मिलकर अनात्म हो जाती है।''

11.4.2 कमेलश्वर– नयी कहानी आंदोलन के पुरोधा

कमलेश्वर नयी कहानी आंदोलन की प्रसिद्ध त्रयी– कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव में तो महत्वपूर्ण स्थान रखते ही हैं किन्तु इस कथा आंदोलन को समुचित दिशा देने तथा उसे विकसित कर ऊँचाइयों तक पहुँचाने में उनका सर्वाधिक योगदान रहा। वे नयी कहानी के सर्वाधिक गतिशील कहानीकार हैं जिनकी कहानियां परिवेश और समय की आकांक्षाओं के साथ बदलती रही। कमलेश्वर ने अपनी 'समग्र कहानियां' शीर्षक कहानी संग्रह में अपनी कथा यात्रा को तीन पड़ावों में विभक्त किया है– मैनपुरी से इलाहाबाद, इलाहाबाद से दिल्ली और दिल्ली से बम्बई और बाद में यह भी जोड़ देते हैं कि ''दिल्ली लौटकर आने की मेरी रचना का चौथा दौर कहा जा सकता है।''

प्रारंभिक दौर जिसका समय उन्होंने सन् 1946 से 1959 तक माना है। इस दौर को वह अपने लेखन का अत्यंत महत्वपूर्ण दौर मानते हैं। नयी कहानी आंदोलन भी इसी दौर में उपजा था। इस आंदोलन को कमलेश्वर का भरपूर सहयोग एवं समर्थन प्राप्त हुआ। नयी कहानी आंदोलन के दौर में लिखी उनकी कहानियां या यूं कहें कि कमलेश्वर की प्रारंभिक दौर की कहानियां मूलतः कस्बाई जीवन को रूपायित करती है जिनमें 'राजा निरबंसिया', 'कस्बे का आदमी', 'देवा की माँ', 'धूल उड़ जाती है', 'मूर्दों की दुनिया' आदि प्रमुख रही हैं। यही वह दौर था जब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामान्यजन में मोहभंग की स्थितियां उत्पन्न हुई थीं जब उनके द्वारा देखे सपने धराशायी हुए थे। गाँव तथा कस्बों से शिक्षा ग्रहण करने आया व्यक्ति इन संत्रासों को गहराई से अनुभव कर रहा था। कमलेश्वर की प्रारम्भिक दौर की कहानियों के पीछे की मनोदशा इसी ओर इशारा करती है। वे इस दौर की कहानियों में अपने कस्बे मैनपुरी में बार–बार लौटते दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में कमलेश्वर के परम मित्र दुष्यंत कुमार ने लिखा– ''वह अपने छोटे से कस्बे मैनपुरी से मानसिक रूप में इतना जुड़ा हुआ था कि इलाहाबाद में रहते हुए भी वह वहीं की बातें सोचा करता था। हर महीने मैनपुरी भागकर जाया करता था और तीन चार बोरे प्लॉट लाया करता था। उसी समय उसने 'मुरदों की दुनिया' कहानी लिखी थी। वह कहानी कमलेश्वर ही लिख सकता था क्योंकि वह अपने कथा क्षेत्र से संवेदन और समझदारी के स्तर पर जुड़ा हुआ था। उसके दिल में एक कसक थी अपने छुटे हुए शहर के बाशिंदों के लिए। यह वह समय था जब वह वैचारिक द्वन्द्व के बीच घिर गया। अपने टूटे हुए सामन्ती घर से तो वह निकल आया था, पर जीवन में जो आस्थाएँ खंडित हुई थीं, उनकी पुनः स्थापना और जिन्दगी से फिर से जुड़ सकने का उसका यह अन्तर्द्वन्द्व मैंने देखा है। मैंने देखा है कि कमलेश्वर ने कभी भी किसी 'ड्रॉम्मा' से चालित होकर लिखना स्वीकार नहीं किया है। कमलेश्वर की हर कहानी उसके जीवनानुभवों से निकली है, कमलेश्वर ने पढ़–लिखकर उस संक्रान्ति को नहीं झेला है, बल्कि उसे स्वयं जिया है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानीकार कमलेश्वर ने अपने जीवनानुभवों और भोगे हुए यथार्थ को ही अपनी कहानियों का विषय बनाया। कस्बाई जीवन अपने प्रत्येक पहलू के साथ उनकी कहानियों में चित्रित हुआ है। नयी कहानी में जिस अनुभव की प्रमाणिकता की बात की जाती है उसकी स्पष्ट झलक कमलेश्वर की कहानियों में दशष्टिगोचर होती है।

नयी कहानी में पति–पत्नी और नर–नारी के बदलते संबंधों पर भी बहुत सारी कहानियां लिखी गईं। कमलेश्वर की कहानियों में दाम्पत्य संबंधों में आए बिखराव एवं असंतोष का चित्रण बड़ी बारीकी के साथ हुआ है। ''राजा निरबंसिया', 'देवा की माँ', 'आत्मा की आवाज़', 'तीन दिन पहले की रात', 'बयान' आदि कहानियाँ इसके सफल उदाहरण हैं। इन कहानियों में एक ओर तो स्त्री–पुरुष संबंधों में आए बदलाव को चित्रित किया गया है तो दूसरी ओर कस्बाई संस्कशति की स्पष्ट झलक भी उनकी कहानियों में दशष्टिगत होती है। 'देवा की माँ' कहानी में पति द्वारा उपेक्षित होने के बाद भी पत्नी द्वारा उसके कुशल क्षेम की कामना करना, सिंदूर को कहीं ओर न फेंककर तुलसी पर चढ़ाना आदि कस्बाई संस्कशति को ही दर्शाता है। इसके अतिरिक्त 'मूर्दों की दुनिया', 'गर्मियों के दिन', 'कस्बे का आदमी', 'थानेदार साहब', 'नौकरी पेशा', 'गाय की चोरी', 'दुनिया बहुत बड़ी है' आदि कहानियों में कमलेश्वर ने कस्बाई मनोवशति एवं वातावरण का जो चित्रण किया है उससे यह बात स्पष्ट होता है कि कस्बे के जीवन परिवेश के कोने–कोने को कमलेश्वर झांक आये हैं। चाहे 'गर्मियों के दिन' कहानी में दुकानों पर साइन बोर्ड की संस्कशति, 'राजा निरबंसिया' में कस्बे का अस्पताल, 'इतने अच्छे दिन' में कस्बे का सराय, 'थानेदार साहब' में कस्बे के छोटे थानों की कार्य प्रणाली का चित्रण हो। निसंदेह इन कहानियों से पाठक वर्ग कस्बाई जीवन परिवेश से भली–भांति परिचित होता है।

नयी कहानी में आम आदमी की प्रतिष्ठा पर अधिक बल दिया गया है। नयी कहानी आंदोलन से पूर्व भी कहानियों में आम आदमी का चित्रण निसंदेह हुआ है किन्तु उसे प्रमुखता नयी कहानी के माध्यम से ही मिली। कमलेश्वर को भी आम आदमी का कथाकार माना जाता है। आम आदमी के जीवन संघर्ष से वे भली भांति परिचित थे क्योंकि उनका जीवन भी साधारण जन की तरह कष्टपूर्ण रहा। यही कारण है कि उनकी कहानियों में इस वर्ग की पीड़ा की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कहानियाँ जैसे 'मांस का दरिया', 'नीली झील', 'दिल्ली में एक मौत', 'अपने देश में', 'फालतू आदमी', 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'जिन्दगी की पटरी' आदि आम आदमी को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। उनकी कहानियों में चित्रित आम आदमी विपरीत परिस्थितियों में भी टूटकर बिखरता नहीं बल्कि उसके अंदर की जिजिविषा तथा स्वयं के अस्तित्व को बनाए रखने की ललक उसे निरंतर संघर्षशील रखती है। आम जन के प्रति प्रतिबद्धता उनकी कहानियों में हर समय दिखाई देती है फिर चाहे उनकी कस्बाई कहानियां हो या महानगरीय जीवन की कहानियां। अपने प्रत्येक दौर की कहानियों में उन्होंने आम जन की पीड़ा को यथा–कथा अभिव्यक्त कर उनके जीवन संघर्ष को वाणी प्रदान की है।

नयी कहानी आंदोलन की बात करते हुए यदि मध्यवर्ग की बात न की जाए तो इस आंदोलन को हम पूर्णता समझने में अक्षम होंगे। यूं तो स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा में मध्य वर्ग केन्द्र में रहा है। उनमें इस वर्ग से संबंधित सभी समस्याओं को गहराई से चित्रित किया गया है। इस संदर्भ में नयी कहानी आंदोलन भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कमलेश्वर के लेखन की यह विशिष्टता रही कि वह जिस स्थान विशेष में रहे वहाँ के परिवेश को अपनी कहानियों में यथासंभव अभिव्यक्त करते रहे। उनकी प्रारंभिक दौर की कहानियां यद्यपि कस्बाई जीवन से संबंधित रही तो अपने दूसरे दौर इलाहाबाद से दिल्ली की कहानियों में उनके महानगरीय जीवन के अनुभव ही प्रमुखता से अभिव्यक्ति हुए हैं। 'खोयी हुई दिशाएँ' कहानी संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा ''इस संग्रह की कहानियां एक बदली हुई मनःस्थिति की कहानियां हैं। तीन वर्ष पहले मुझे टेलीविजन की नौकरी के सिलसिले में दिल्ली आना पड़ा। इलाहाबाद छोड़ते हुए बड़ी तकलीफ हुई, पर यहां आकर जब चारों तरफ देखना शुरू किया तो लगा कि एकाएक सबकुछ बदल गया है। यहाँ एक नई ही जिन्दगी थी, एक ऐसी जिन्दगी जिसके किनारे खड़े होकर देखने से बहाव का पता ही नहीं चलता थाकृकृ एक अजीब सा परायापन और बेगानापन है यहाँ।''

कमलेश्वर ने अपने इस दौर की कहानियों में मध्यवर्ग के महानगरीय जीवन पर अनेक कहानियां लिखी– 'पराया शहर', 'खोई हुई दिशाएं', 'दिल्ली में एक मौत', 'नौकरी पेशा', 'अपना एकांत', 'शोक समारोह', 'भरे पूरे अधूरे', 'दूसरे', 'अजनबी' आदि में मध्यवर्गीय व्यक्ति की महानगरीय जीवन विसंगतियों को चित्रित किया गया है। इन कहानियों में मध्यवर्गीय पात्रों की मानसिकता का भी पता चलता है। 'पराया शहर' कहानी का नायक सुखबीर कस्बे से आया पात्र है जो पंद्रह वर्षों से दिल्ली में रहने के बावजूद भी वहां के वातावरण को अपने अनुरूप न पाकर स्वयं को निपट अकेला अनुभव करता है। 'दिल्ली में एक मौत' में भी महानगरीय जीवन में व्याप्त स्वार्थपरकता एवं दिखावे से भरी जिन्दगी का चित्रण किया गया है। 'शोक समारोह' कहानी महानगरीय मध्यवर्गीय व्यक्ति की कृत्रिमतापूर्ण जीवन शैली को चित्रित करती है। इस कहानी में स्पष्ट किया गया है कि दिखावे एवं कृत्रिमता के वशीभूत होकर मध्यवर्ग शोक को समारोह में तब्दील करने से भी नहीं चूकता। वहीं 'जोखिम' कहानी मध्यवर्गीय व्यक्ति के महानगरीय परिवेश में रहने के लिए किए संघर्ष की गाथा है।

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय आर्थिक जीवन संघर्ष को बहुत बारीकि से अंकित किया है। 'राजा निरबंसियां', 'देवा की माँ', 'गर्मियों के दिन', 'दूसरे', 'भरेपूरे अधूरे', 'अकाल', 'बयान', 'इतने अच्छे दिन', 'ऊपर उठता हुआ मकान' आदि कहानियां मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति को बयां करती है। 'राजा निरबंसिया' में पति–पत्नी के संबंधों के टूटन का एक कारण आर्थिक विपन्नता भी रहा। 'देवा की माँ' कहानी में 'माँ' का दरियाँ बुनकर पेट पालना, 'गर्मियों के दिन' में मरीज के इंतजार में भरी गर्मी में बिना भोजन के बैठना वैध की मजबूरी' आदि पात्र मध्यवर्ग की आर्थिक दशा को सफलता से चित्रित करते हैं। इसके

अतिरिक्त 'दूसरे' कहानी में अर्थ के अभाव में दूसरें पर निर्भर परिवार की मजबूरी स्पष्ट झलकती है। 'भरे पूरे अधूरे' कहानी में भी मध्यवर्ग की आर्थिक तंगी के चलते अरमानों के टूटने की करुण गाथा वर्णित है। इस प्रकार कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय व्यक्ति फिर चाहे वह कस्बे का हो या महानगर का, उसकी सच्चाई को बड़ी ईमानदारी के साथ उजागर किया है।

कमलेश्वर ने साम्प्रदायिकता की समस्या को लेकर भी कई चर्चित कहानियां लिखी जिनमें इस बात को स्पष्ट किया गया है कि मध्यवर्ग ने साम्प्रदायिकता को हमेशा और हर समय समर्थन नहीं दिया बल्कि धर्म से बढ़कर इंसानी रिश्तों को अधिक महत्व दिया। इस संदर्भ में उनकी 'धूल उड़ जाती है', 'सोलह छतों का घर' कहानियां उल्लेखनीय हैं। जिनमें मध्यवर्ग के साम्प्रदायिक सौहार्द पर गहराई से बात की गई है। 'धूल उड़ जाती है' की प्रमुख पात्र नसीबन मुस्लिम होने पर भी हिन्दू बच्चन सिंह के बच्चों को संरक्षण प्रदान करती है। अपने बच्चों की भांति वह बच्चन के बच्चों को प्यार देकर इस बात को प्रमाणित करती है कि मानवता से बढ़कर कोई धर्म नहीं। इसी भांति 'सोलह छतों का घर' की सलीमा दादी भी दंगों में फँसे बच्चों को बचाने में कोई भेदभाव नहीं करती है। कमलेश्वर ने 'और कितने पाकिस्तान' तथा 'मरियम' जैसी कहानियां भी लिखी जिनमें विभाजन से उपजे दर्द, जीवन मूल्यों के विघटन को दर्शाया गया है।

नयी कहानी में जिस अनुभूति की प्रमाणिकता की बात की जाती है उसकी स्पष्ट झलक हमें कमलेश्वर की कहानियों में देखने को मिलती हैं। उनके स्थान परिवर्तन के साथ उनकी कहानियों के विषय भी तथानुरूप परिवर्तित होते रहे। वह जिस भी जगह रहे चाहे कस्बा, शहर, महानगर वहां के वातावरण, स्थितियों को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त करते रहे। वे चाहते तो अपने कस्बे मैनपुरी में बैठकर दिल्ली, बम्बई या कश्मीर की कहानियां लिख सकते थे किन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। यही कारण है कि नयापन सदैव उनकी कहानियों में दृष्टिगत होता रहा चाहे वो कथ्य को लेकर हो या भाषा को लेकर। यदि सामान्य जनजीवन से घटनाएँ और पात्र लिए गये हों तो निश्चय ही कहानी की भाषा पर जनजीवन की भाषा का प्रभाव रहेगा। जिस समाज से कथ्य लेकर कहानीकार कहानी रचता है उसी समाज की भाषा का प्रयोग कर कहानीकार पात्रों के मनोभावों को अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। कमलेश्वर ने नयी कहानी की भाषा के विषय में लिखा– ''नयी कहानी ने भाषा की जड़ता को तोड़ा। व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को पृथक कर समय के विस्तार में जी रहे मनुष्य की बोली में ही उसने नए अर्थों की तलाश की।'' चुंकि नयी कहानी में कहानी को जीवन के अत्यधिक निकट लाने का प्रयास हुआ अतः इस प्रयास में बोलचाल की भाषा का इस दौर की कहानियों में खूब प्रयोग हुआ। कमलेश्वर की भाषा में परिवेश चित्रण की अद्भूत शक्ति विद्यमान है। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए पाठक के समक्ष किसी भी दृश्य का संपूर्ण चित्र स्वतः ही बनता चला जाता है जो उनकी कहानियों को एक जीवंतता प्रदान करता है। या यूं कहे कि उनकी भाषा में अद्भूत चित्रात्मक शक्ति है तो गलत न होगा। यथा 'खोई हुए दिशाएं' कहानी में बस स्टाप

का चित्रण– ''पीछे वाली दुकान के बाहर चोलियों का विज्ञापन है। रीगल बस स्टाप के नीम के पेड़ों से धीरे–धीरे पत्तियाँ झड़ रही हैं। बसे जूँ–जूँ करती आती हैं– एक क्षण ठिठकती हैं– एक ओर से सवारियों को उगलती हैं और दूसरी ओर से निगलकर आगे बढ़ जाती हैं। चौराहे पर बत्तियाँ लगी हैं। बत्तियों की आँखें लाल–पीली हो रही हैं'' इन शब्दों के माध्यम से कनाट प्लेस के बस स्टाप का चित्रण हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। उनकी कहानियों में ऐसे चित्रों की भरमार है जहां उन्होंने अपनी अद्भूत भाषाई क्षमता के माध्यम से वातावरण को सजीवता प्रदान की है। वातावरण चित्रण के साथ–साथ कमलेश्वर अपने पात्रों के चित्र भी पाठक के मन में उतारते चले जाते हैं जिनसे पात्रों की मनस्थिति से भी पाठक परिचित होते हैं। इस प्रकार उनकी कहानियों में परिवेश और कथ्य के अनुरूप भाषा ढलती चली जाती है। परिवेश अनुसार उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी आदि भाषाओं का प्रयोग उनकी कहानियों में हुआ है।

कमलेश्वर ने केवल कहानियां लिखकर ही नयी कहानी आंदोलन में अपना योगदान नहीं दिया बल्कि 'नई कहानियां' पत्रिका के संपादक के तौर पर कार्य करते हुए श्रेष्ठ कहानियों एवं समर्थ कहानीकारों को नया लिखने के लिए एक सार्थक मंच भी प्रदान किया।

11.5 निष्कर्ष

निसन्देह 'नयी कहानी आन्दोलन' में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने अपनी बहुमूखी प्रतिभा एवं रचनात्मक व्यक्तित्व के द्वारा हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान तो बनाई ही साथ ही नयी कहानी आंदोलन से जुड़े कहानीकारों में भी वे अग्रणी रहे। उनके इस कथा आंदोलन के प्रति योगदान का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उन्होंने 'नयी कहानी की भूमिका' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर नयी कहानी को पूर्णतः समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

11.6 कठिन शब्द

1. सर्वविदित
2. अग्रणी
3. सूक्ष्मता
4. समुचित
5. यथार्थ
6. अस्तित्व
7. पुरोधा
8. पूर्वाग्रह
9. अनुभूति
10. अपवाद

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नयी कहानी आंदोलन पर लेख लिखिए।

2. नयी कहानी आंदोलन में कमलेश्वर का योगदान स्पष्ट कीजिए।

3. नयी कहानी पूर्ववर्ती कहानी से किस तरह भिन्न थी स्पष्ट कीजिए।

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. समग्र कहानियां– कमलेश्वर
2. खोई हुई दिशाएं– कमलेश्वर
3. नयी कहानी की भूमिका– कमलेश्वर
4. कहानीकार कमलेश्वर : पूनर्मूल्यांकन– पुष्पपाल सिंह

– – – – –

M.A. HINDI **Lesson No. 12**

Course Code : HIN-302 **Semester-III**

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र–चित्रण एवं शिल्प विधान

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 पात्र चरित्र–चित्रण

12.2.1 'खोई हुई दिशाएं' कहानी के पात्र

चन्दर

12.2.2 'नीली झील' कहानी के पात्र

महेस पांडे

पार्वती

12.3 प्रस्तुत कहानियों का शिल्प–विधान

12.3.1 शिल्प : अर्थ एवं अभिप्राय

12.3.2 'खोई हुई दिशाएं' कहानी का शैल्पिक विधान

12.3.3 'नीली झील' कहानी का शैल्पिक विधान

12.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.5 सन्दर्भ पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययन उपरान्त आप

- कमलेश्वर की कहानियों के पात्रों की मानसिकता से परिचित होंगे।
- आज की नारी के संदर्भ में पार्वती का मूल्यांकन कर पाएंगे।
- चन्दर के माध्यम से शहरी परिवेश को जान पाएंगे।
- कमलेश्वर की पर्यावरण संरक्षण दृष्टि को जान पाएंगे।
- कमलेश्वर के रचना शिल्प की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

12.2 पात्र चरित्र–चित्रण

कहानी की कथावस्तु किसी भी प्रकार की क्यों न हो, वह किसी न किसी पात्र पर आधारित रहती है। कहानी में पात्रों की संख्या जितनी कम हो उतनी ही अच्छी मानी जाती है। कहानी के पात्रों में सजीवता स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति मूलभाव तथा घटना के प्रति अनुकूलता रहनी चाहिए। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल पात्रों के सम्बन्ध में कहते हैं– ''पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश, विदेश जहां के भी हों, उनकी सृष्टि में केवल एक शर्त होनी चाहिए, उनकी सार्थकता और स्वाभाविकता में हमें किसी प्रकार का सन्देह न हो।''

कहानी में जिनके सम्बन्ध में कथा कही जाती है, वे कहानी के पात्र होते हैं। उनमें से मुख्य पात्र को कहानी का नायक कहते हैं। कहानी में जिस प्रकार के पात्रों को चित्रित किया गया है, उसे चरित्र–चित्रण कहते हैं। इसी में कहानी का लक्ष्य या उद्देश्य निहित रहता है।

12.2.1. 'खोई हुई दिशाएं' कहानी के पात्र

चन्दर

कमलेश्वर द्वारा रचित 'खोई हुई दिशाएं' कहानी का मुख्य पात्र एवं नायक है। वह इलाहाबाद के शहरी कस्बे से संबंध रखता है परन्तु अब वह राजधानी में रह रहा है।दिल्ली में आकर वह सभी में अपनेपन की तलाश करता है पर निराशा ही उसके हाथ लगती है। इसी अपनेपन की तलाश में वह प्रेमिका के घर जाता है जो विवाहित है लेकिन वहां से भी निराश लौटता है। वह अपने मित्र, रिक्शावाले व पड़ोसियों से अपनी पहचान बनाए रखना चाहता है पर कोई भी लाभ नहीं होता। इसलिए वह अपने आप को जानने के लिए समय तय करता है परन्तु व्यस्तताओं के कारण वह अपने आप से मिल नहीं पाता। पूरी कहानी में वह

कई प्रकार की स्थितियों का सामना करते हुए भयभीत दिखाई देता है जिससे उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएं सामने आती हैं–

1. अकेलेपन से त्रस्त

चन्दर पत्नी के रहते हुए भी इतने बड़े शहर में अपने आप को अकेला महसूस करता है वह राजधानी के अन्य लोगों में अपने शहर जैसे अपनेपन के भावों को तलाशता है परन्तु उसे वहां अपनापन कहीं नहीं मिलता है उसके स्वयं के शब्दों में, "और यह राजधानी! जहां सब अपना है, अपने देश का है.... पर कुछ भी अपना नहीं है, अपने देश का नहीं है।" उसे अकेलापन इतना त्रस्त करता है कि वह पेड़ों और पक्षियों से अपना खालीपन भरना चाहता है उसे लगता है कि लोग तो नहीं पर शायद यह पेड़ पौधे तो उसे जानते हैं जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है– "तनहा खड़े पेड़ों और उनके नीचे सिमटते अंधेरे में अजीब–सा खालीपन है। तनहाई ही सही पर उसमें अपनापन तो हो।" वह पिछले तीन सालों से दिल्ली में है पर इस खचाखच भरी हुई राजधानी में वह अपने आप को बिल्कुल अकेला पाता है। कस्बे से राजधानी आकर वह राजधानी के जीवन से सामंजस्य नहीं बिठा पाता। वह किसी से बातचीत नहीं करती है इसलिए दिल्ली का हर स्थान उसे सूना और अकेला लगता है। वह विचित्र भावों से गुजरता है, जैसे कि पार्क में उसकी मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कहानीकार ने लिखा है– ''शोर–शराबे से भरे उस सैलाब में वह बहुत अकेला–सा महसूस करता है और लगता है कि इन तीन सालों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जो उसका अपना हो, जिसकी कचोट अभी तक हो, खुशी या दर्द अब भी मौजूद हो। रेगिस्तान की तरह फैली हुई तनहाई है, अनजान सागर तटों की खामोशी और सूनापन है और पछाड़ खाती हुई लहरों का शोर–भर है, जिससे वह खामोशी और भी गहरी होती है।'' इस प्रकार उसके जीवन में यह रिक्तता हर समय बनी रहती है और इसके कारण हर स्थिति से भागना चाहता है सामना करना नहीं।

2. सच्चा प्रेमी

वह सच्चे प्रेमी के रूप के सामने आता है। वह इन्द्रा से प्रेम तो करता है परन्तु बेरोजगार होने के कारण उसे लगता है कि शायद वह उसके लिए नहीं बना है। पर उसके लिए वह एक सुखमय भविष्य की कामना करता हुआ कहता है, "भरोसा तो बहुत है इन्द्रा, पर मैं खाना–बदोशों की तरह जिन्दगी–भर भटकता रहूंगा..... उन परेशानियों में तुम्हें खींचने की बात सोचता हूँ तो बरदाश्त नहीं कर पाता। तुम बहुत अच्छी और सुविधाओं से भरी ज़िन्दगी जी सकती हो। मैंने तो सिर पर कफन बांधा है...... मेरा क्या ठिकाना।" वह चाहे इन्द्रा से दिल की गहराइयों से प्रेम करता है और इन्द्रा भी उससे कहती है कि 'तुम क्या नहीं कर सकते' पर वह यह बिल्कुल नहीं चाहता कि वह उसका जीवन बर्बाद कर दे इसलिए उसे समझाते हुए कहता है– ''मेरे पास

है ही क्या? समझ में नहीं आता कि जिंदगी कहां ले जाएगी इन्द्रा! इसलिए मैं यह नहीं चाहता कि तुम अपनी जिंदगी मेरी खातिर बिगाड़ लो। पता नहीं मैं किस किनारे लगूं, भूखा मरूं या पागल हो जाऊं...'' और फिर जब इन्द्रा का विवाह हो जाता है तो वह उसकी तरफ से निश्चिंत लगता है। वह दिल्ली आकर उसके घर भी जाता है पर शायद वह उसके सुखी जीवन में उथल–पुथल मचाना नहीं चाहता इसलिए चला आता है।

3. संकोची

चन्दर हमेशा अपनी बात कहने में संकोच करता है न वह रिक्शे वाले के सामने भी अपनी भावनाओं को व्यक्त कर पाता है न ही कैफे वाले आदमी से, न प्रेमिका से और न ही पत्नी से। प्रेमिका के साथ मिलने पर जब वह उसकी खाने पीने की दिनचर्या को भूलकर उसे चीनी वाली चाय प्रस्तुत करती है तो वह उसे कहता कुछ नहीं, संकोच करता है पर इन्द्रा के इस व्यवहार से आंतरिक पीड़ा अनुभव करता है इसलिए वहां से भागना चाहता है क्योंकि उसे लगता है कि इतनी लम्बी दोस्ती के बाद भी इन्द्रा उसे नहीं पहचानती है जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है– "चन्दर का मन कर रहा था कि इन्द्रा के पास से किसी भी तरह भाग जाए और किसी दीवार पर अपना सिर पटक दे।"

वह निरंतर पत्नी के साथ बातचीत करने के बारे में सोचता रहता है कि किस प्रकार वह अपने भावों को प्रकट करेगा। उसके स्वयं के शब्दों में, "किसी बहाने खुराना की तरफ वाली खिड़की को बन्द करना पड़ेगा। घूम–कर मेज के पास पहुंचना होगा और तब पानी का एक गिलास मांगने के बहाने वह पत्नी को बुलाएगा, और तब उसे बाहों में लेकर प्यार से यह कह सकने का मौका आएगा–बहुत थक गया हूँ।" इतना कुछ सोचने के बाद भी वह पत्नी के सामने अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है।

4. निराशावादी

पूरी कहानी में चन्दर एक निराशावादी व्यक्ति के रूप में सामने आता है वह हर व्यक्ति से उम्मीद करता है कि यह मुझे जानता होगा पर ऐसा जब नहीं होता तो निराश हो जाता है क्योंकि रिक्शे वाला जान पहचान से अधिक पैसे को महत्व देता है। कैफे में मिलने वाले व्यक्ति से पहचान की कुछ उम्मीद होती है पर वहां भी उदासी ही उसके पास आती है। वह पूर्व प्रेमिका इन्द्रा से भी उम्मीद करता है कि वह तो मुझे जानती होगी उसे आज भी याद होगा कि दो चम्मच चीनी मेरा गला खराब कर देती है लेकिन जब वह चाय के समय पूछती है कि कितनी चीनी डाल दूं तो चन्दर द्वारा दो कहने पर भी उसे कुछ आशा होती है जो उसके स्वयं के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है, "तभी इन्द्रा ने पूछा, चीनी कितनी दूं ? और एक झटके से सब कुछ बिखर गया, उसका गला सूखने–सा लगा और शरीर फिर थकान से भारी हो गया। माथे पर

पसीना आ गया। फिर भी उसने पहचान का रिश्ता जोड़ने की एक नाकाम कोशिश की और बोला, दो चम्मच और उसे लगा कि अभी इन्द्रा को सब कुछ याद आ जाएगा और वह कहेगी कि दो चम्मच चीनी से अब गला खराब नहीं होता?" वहां पर भी निराशा ही उसके हाथ लगती है। उसके परिवार में उसकी पत्नी है घर है पर वह उदास है क्योंकि उसकी उम्मीदों पर कोई खरा नहीं उतरता। दिल्ली जैसे महानगर में आकर व्यस्त एवं भागमभाग की जिन्दगी में वह अपनी पहचान खो चुका है इसलिए निराश है। इस शहर में नज़दीक से किसी के बारे में कुछ पता नहीं चलता। इसलिए वह अंदर ही अंदर कुढ़ता रहता है।

5. कुंठाग्रस्त

चन्दर एक कुंठाग्रस्त पात्र है। असफलताओं के कारण वह घोर निराशा का शिकार होकर कुंठित हो जाता है। वह कस्बाई मूल्यों के छूटने के कारण पीड़ित है। दिल्ली शहर के महानगरीय जीवन का अजनबीपन, अकेलापन संबंधों के चुक जाने का एहसास, अलगाव और परायापन उसे कुंठित कर देता है। तन्हाई और जीवन के खोखलेपन में उसके लिए सारे के सारे संबंध सिर्फ औपचारिक होकर रह गये हैं। यहाँ तक कि बरसों पूर्व परिचित इन्द्रा से भी इसे मेहमान–नवाजी मिलती है और उसके प्रत्येक क्षण का हिसाब रखने वाली पत्नी भी उसे अजनबी और अपरिचित लगती है। इस कुठित मनोवृत्ति के कारण वह सड़कों पर, पार्क में इधर–उधर घूमता रहता है पर घर नहीं जाता।

अंततः चन्दर अकेलेपन से जूझता एक ऐसा व्यक्तित्व है जो मित्रों, अनजान व्यक्तियों, प्रेमिका एवं पत्नी में निरन्तर अपनी पहचान खोजता है परन्तु अंत तक उसे निराशा ही मिलती है वह अपनी व्यथा को किसी के आगे स्पष्ट नहीं होने देता है एवं आन्तरिक पीड़ा से ग्रस्त वह अंतहीन तलाश के लिए भागता रहता है एक पल के लिए वह जहां कहीं उसे अपनापन और अपनी पहचान दिखती भी है तो अगले ही पल कुछ ऐसा घटित हो जाता है कि उसकी पहचान का स्वप्न टूट जाता है और वह हताश हो जाता है। अतः इस कहानी में चन्दर निरन्तर भागता हुआ चरित्र है जो कहीं भी रूकने का नाम नहीं लेता। उसके माध्यम से देश का प्रत्येक आदमी अशांत, असंतुष्ट और उद्विग्न दिखाई देता है।

12.2.2 नीली झील कहानी के पात्र

महेस पांडे

महेस पांडे कमलेश्वर द्वारा रचित 'नीली झील' कहानी का मुख्य पात्र एवं नायक है। वह मध्यम वर्ग से संबंध रखता है और परिश्रम कर रोजी रोटी कमाता है। वह अपने से अधिक आयु वाली धनवान विध ावा पंडिताइन से विवाह करता है और काम करना छोड़ देता है। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता है इसीलिए वह उसकी अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए इच्छानुसार मंदिर एवं धर्मशाला बनवाने के लिए पैसे

एकत्रित करता है पर पक्षियों के प्रति मोह होने के कारण वह पक्षियों की आवास स्थली 'नीली झील' खरीद लेता है ताकि वह पक्षियों को सुरक्षा दे सके और उनकी खत्म होती हुई नस्ल को बचाया जा सके। वह समाज में एक नया आदर्श स्थापित करता है। पूरी कहानी महेसा के इर्द–गिर्द घूमती है उसके व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती है–

1. स्वाभिमानी

महेस स्वाभिमानी व्यक्तित्व का स्वामी है। वह शिकार के लिए आए अंग्रेजों के साथ आई स्त्रियों की सहायतार्थ आगे आता है। लेकिन जब नीली साड़ी वाली स्त्री कहती है कि क्या कोई मज़दूर मिल सकता है? तो वह ठसक से कहता है, "हम लोग सरकारी गैंग के आदमी हैं।" उसके इन शब्दों से स्पष्ट पता चलता है कि वह अपने को मज़दूर न मान कर सरकारी व्यक्ति मानता है जिसमें उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्व के दर्शन होते है।

2. सैलानी स्त्रियों के प्रति विशेष आसक्ति

महेस सैलानी स्त्रियों को देख फौरन उनकी तरफ आकर्षित हो जाता है वह काम करते हुए भी चोर निगाह से उनसे आँखें मिलाने की कोशिश करता है और जब नीली साड़ी वाली स्त्री उससे मदद मांगती है तो वह झट से उसका समान उठा लेता है और उसकी सुकुमरता को देखते हुए उससे पानी वाली बोतल भी माँग लेता है। वह इन शहरी स्त्रियों के प्रति विशेष रूप से आसक्त होता है। इसलिए वह अपने आप को रोक नहीं पाता। उसे उनके साथ बातें करने में विशेष आनन्द की अनुभूति होती थी जैसे कि प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट हो जाता है, "पर अब भी, जब वह सैलानी लोगों को झील की ओर जाते देखता और उनके साथ कोई सुन्दर औरत होती, तो वह अपने को रोक न पाता, पीछे–पीछे चला ही जाता और चाहता कि वह औरत उससे बात करे।" उसके हृदय में यह नारी आकर्षण इतना बना रहता है कि वह सारा–सारा दिन उनके पीछे घूमता रहता था। उसके देर से घर आने पर पार्वती भी उससे कई प्रकार के प्रश्न करती है पर वह काम का बहाना कर जाता है।

3. परंपराओं को तोड़ने वाला

महेस निडर स्वभाव एवं परंपराओं की परवाह न करने वाले नायक हैं। समाज में मान्यता है कि बड़ी उम्र का लड़का अपने से छोटी उम्र की लड़की से ही विवाह करता है और विधवा का विवाह विधुर से एवं अविवाहित का विवाह अविवाहित से होता है परन्तु महेस इन सब परंपराओं के बंधन को तोड़कर अपने से बड़ी एवं विधवा पारवती से विवाह करवाता है कहानी के प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट हो जाता है "यों पार्वती से दस साल छोटा था महेस, पर पार्वती की मौत के बाद वह उससे दस बरस बड़ा लगने लगा।"

परंपरा के अनुसार सभी व्यक्ति अच्छे कर्म करते हैं जैसे मंदिर का निर्माण, धर्मशाला इत्यादि बनवाना। महेस की पत्नी भी अच्छे कर्म करने के लिए मंदिर एवं धर्मशाला का निर्माण करवाना चाहती थी परन्तु महेस इन सब की परवाह न करते हुए, मंदिर एवं धर्मशाला के लिए एकत्रित किए पैसो से नीली झील को खरीद लेता है। कहानी के प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट हो जाता है, "पार्वती की याद उसे फिर आई और नीलामी वाले दिन उसने तीन हज़ार की बोली लगाकर चबूतरे के पासवाली जमीन नहीं, दलदली नीली झील खरीद ली।" और वह पक्षियों के लिए मंदिर तथा धरमशाला निर्माण को भी तिलांजलि दे देता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महेस परंपरा की लीक पर चलने वाला नहीं था वह वही करता था जो उसे पसंद था। वह परंपराओं की परवाह नहीं करता है।

4. लापरवाह

वह लापरवाह स्वभाव का मालिक है वह किसी की बात की तरफ ध्यान नहीं देता है उसे जो अच्छा लगता है वह वही करता है वह अंग्रेज औरतों के पीछे जाता है। दूसरे मजदूरों द्वारा उसे भला बुरा कहने पर भी वह उनकी परवाह किए बिना स्त्रियों की मदद करने जाता है। पंडिताइन से विवाह कर लेने पर लोग तरह–तरह की बातें करते हैं पर वह परवाह नहीं करता है। पूरी कहानी में वह पंडिताइन की देख–रेख और उसके प्रेम में इतना भावविभोर रहता है। ऐसा लगता है कि उसे किसी से कोई मतलब नहीं है। वह सिर्फ उसके साथ जीना चाहता है। कहानी के निम्न वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है, "किसी का कहना था कि जवान देखकर पण्डिताइन ने फांस लिया और कोई कहता था कि महेस रूपया पैसा देखकर ढरक गया......लेकिन महेस ने किसी की परवाह नहीं की।"

अंत में पंडिताइन की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए मंदिर एवं धर्मशाला बनाने के लिए लोगों से पैसे तो एकत्रित करता है परन्तु उन पैसों से वह झील को खरीद लेता है। लोगों द्वारा उसे धोखेबाज इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जाता है लेकिन वह किसी को कोई उत्तर न देकर अपने में मस्त रहता है।

5. आदर्श प्रेमी

वह अपनी पत्नी पार्वती से प्रेम करता है उसके कहने पर कलमें बड़ी करवा लेता है, चोटी में मोटी गांठ बांधता है एवं मेले में जाने के लिए बैलों की एक गोई और छोटा सा रब्बा भी खरीद लेता है ताकि अपनी पत्नी को शान से मेले में लेजाए और उसकी सुख–सुविधा का भी ध्यान रखता था। महेस जब भी हाफिज़ जी की दुकान पर जाता था तो पार्वती के लिए कुछ–न–कुछ लेकर ही जाता था जैसे कि पार्वती को फोटो फ्रेम दिखाते हुए महेस कहता है "इसमें मियां बीवी की तस्वीर लगती है। बड़े घरों में लोग इसे रखते हैं। तीसरे ही दिन उसने पार्वती को तैयार कराया, सारे गहने उसे पहनने को मज़बूर किया और खूब

तेल लगाकर रामा फोटोग्राफर की दुकान पर जा पहुँचा।" और फोटो को फ्रेम में लगाकर वह ऐसे स्थान पर लगाता है जहाँ घर आते–जाते अपनी पत्नी को देख सके।

वह अंत तक स्वीकार करता है कि जैसा उसका ख्याल पारबती रख सकती है वैसा कोई अन्य नहीं रख सकता है उसके स्वयं के शब्दों में, "पार्वती के बराबर कोई मेरा ख्याल करे तो सोचू भी..... नहीं, तो भी न सोचूं। गलत बात बोल गया। ..... बेकार का मखौल मत किया करो। अब बूढ़ा हो चला।" पत्नी की मृत्यु के बाद वह दूसरा विवाह करवाने की मनाही कर देता है और उसके विरह का प्रभाव उसके शरीर पर दिखाई देने लगता है। वह कुछ ही समय में बूढ़ा दिखाई देने लगता है।

महेस की पत्नी पार्वती अपने पैसे से मंदिर और धर्मशाला बनवाना चाहती थी वह महेस को कहती है कि तुम मंदिर एवं धर्मशाला बनवाने के लिए पैसे और मिस्त्री का प्रबंध करो। फिर वह साथ वाली ज़मीन खरीदने के लिए कहती है ताकि वहां पर धर्मशाला बनाई जा सके। जिससे धर्म कर्म का कार्य हो जाएगा। पार्वती की मृत्यु के पश्चात् महेस के जीवन में एक ही लक्ष्य रहता है कि पत्नी की इच्छानुसार मंदिर और धर्मशाला का निर्माण करना। वह लोगों से पैसे इकट्ठे करना शुरू कर देता है। महेस के स्वयं के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है, "बस, यही एक काम करना है हाफिज़ जी! किसी तरह मन्दिर और एक छोटी–सी ध ारमशाला बन जाए, तो मन को शान्ति मिले। पार्वती यही कहती–कहती मरी थी।''

6. परिवर्तनशील हृदय

महेस का हृदय परिवर्तनशील है। पत्नी पार्वती के कहने पर भी वह किसी को उधार दिए पैसे वसूलने नहीं जाता। पत्नी की मृत्यु उसे झकझोर कर रख देती है वह उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए लोगों को उधार दिए पैसे वसूलने जाता है और वह इतना ज्यादा कठोर बन जाता है कि किसी के दुःख दर्द को भी नहीं समझता है। जगन नाई के घर पर पैसे के लिए महेस धरना लगा कर बैठ जाता है तो उसकी औरत के शब्दों में महेस की कठोरता के दर्शन होते है जो इस प्रकार बोलती है, ''पण्डित, तुम तो इतने जालिम हो कि किसी की पत नहीं देखते!...... पार्वती चाची मुँह से चाहे जितना बिगड़े, पर आदमी की मरजाद और इज्जत का तो ख्याल करती थी.......।"

उसके इस परिवर्तित व्यवहार को देखकर लोग तब आराम की सांस लेते हैं जब वह कुछ दिनों के लिए पत्थर देखने बाहर चला जाता है।

7. संवेदनशील

महेस एक संवेदनशील व्यक्ति है वह अपनी पत्नी तथा पक्षियों की चीखों से उदास असंवेदित हो जाता है। पार्वती को अस्पताल में दर्द से कराहते नहीं देख पाता है जब पार्वती अपने अंतिम समय में महेसा

को कहती है कि मंदिर जरूर बनवा देना तो महेसा की स्थिति प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट हो जाती है, "मन्दिर! सोचकर ही महेसा का कलेजा फट गया था। आखिरी आस थी उसे, चीखकर बोला था, ऐसा मत कहो पार्वती! बच्चा मर गया तो क्या हुआ, तू तो जीती–जागती है।"

पार्वती अंतिम समय में आंसू बहा रही थी जो महेस से देखे नहीं जाते है। पार्वती की मृत्यु का दुःख उसे अंदर से झकझोर देता है और लोगों द्वारा उसकी स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया जाता है, "बस्ती के आदमियों का यही कहना था कि महेस पगला गया। जो आदमी आदमी का ख्याल नहीं करता, वह पागल नहीं तो और क्या है ? आदमी के दुःख–दर्द को जो नहीं समझता, उसे और क्या कहा जाए ? महेस, वह मुक्त और निश्चित महेस, एकदम बदल गया था।" उसके संवेदनशील स्वभाव का पता तब भी चलता है जब वह पक्षियों का शिकार होते हुए देखकर द्रवित होता है उसे सैलानियों का आना भी अच्छा नहीं लगता है उनके कंधे पर बंदूक देखकर वह उन्मत हो जाता है।

अंग्रजों द्वारा घायल पक्षी की चीखों में उसे पारबती की चीखें सुनाई देती हैं उसके स्वयं के शब्दों में, "झील पर शिकार खेलने के लिए आदमियों की बहुत–सी टोलियां इस बीच आई और गई, और अपने घर पर बैठे या बस्ती में घूमते हुए उसने जब–जब चीत्कार सुने और साहब शिकारियों को नरम परवाली चिड़ियों को लटकाए ले जाते देखा, तब–तब उसे पार्वती की याद आई बेतरह। उसकी हालत भी तो उस सारस के जोड़े की तरह ही थी.....।"

8. पक्षी–प्रेमी

पूरी कहानी महेस के पक्षी प्रेम और पर्यावरण सुरक्षा के कथ्य को लेकर रची गई है। उसका पक्षी प्रेम देखते ही बनता है। घायल पक्षी को देखकर उसके आंसू आ जाते हैं। उसे पक्षियों के बोलने से ही उनकी खुशी, डर और सहम जाने का पता चल जाता है। वह पक्षियों के संबंध में प्रत्येक प्रकार का ज्ञान रखता है उसे झील पर आने वाले प्रत्येक पक्षी का ज्ञान है। सैलानी जब चिड़िया को देख सांप बोलते हैं तो महेसा हँस पड़ता है और उनको इस प्रकार जवाब देता है, "सभी कौतूहल से देखने लगे। महेसा खिलखिलाकर हंस पड़ा। कैसे समझाए इन साहबों को, वे इतना भी नहीं जानते! वह सिर्फ नीली साड़ी–वाली को ही बताना चाहता था। एकदम बोला, पनिया सांप नहीं है, एक चिड़िया है वह।''

महेस को इस बात का भी ज्ञान है कि कौन सी चिड़िया कब झील पर आती है और कब वापिस जाती है जब पार्वती कहती है कि आजकल मैं नई–नई चिड़िया देखती हूँ वह पता नहीं कहाँ से आ जाती है तो महेस के उत्तर से उसके पक्षी ज्ञान का प्रमाण मिल जाता है, "ये चिड़िया मेहमान हैं..... कार्तिक खतम होते आती है और फागुन–चैत तक चली जाती है।" उसे केवल पक्षियों की ही नहीं उनके अण्डों का भी

ज्ञान है। उनकी देखभाल कैसे की जाए वह इसका भी ज्ञान रखता है। उसे हर एक पक्षी के अण्डे की पहचान है वह पार्वती को पक्षियों के अण्डे दिखाते हुए इस तरह बता रहा है, "देख पार्वती, यह वाक का अण्डा है, यह सारस का और यह सोना–पतारी का! महेस एक–एक अण्डा उठाकर दिखाने लगा।"

मौसमानुसार कब पक्षी आते हैं और कब जाते हैं। उसके इस कथन से पता चलता है– "फागुन आते–आते मेहमान पक्षी उड़ गए सवनहंस चले गए, सफेद सुरखाब अपने पुराने घरों में लौट गए। सुअर, संद, करकर्रा और सरप–पच्छी भी चले गए।..... झील बहुत सूनी हो गई थी, पर महेस पांडे को विश्वास था कि ये फिर हमेशा की तरफ अपने झुण्डों के साथ कातिक–अगहन तक वापस आएंगे।" उसे मौसम आने पर पक्षियों के आने की प्रतीक्षा रहती है इसलिए वह दिन में झील के दो–दो चक्कर लगाता है। सैलानी जब पक्षियों का शिकार करने आते हैं तो उनकी सुरक्षा के लिए झील ही खरीद लेता है और झील के बाहर पेड़ पर बोर्ड लगवाता है जिस पर लिखवा देता है, "यहां शिकार करना मना है और नीचे की पंक्ति थी, दस्तखत नीली झील का मालिक, महेस पांडे।"

इस प्रकार उसको पक्षियों के संबंध में सम्पूर्ण ज्ञान था।

10. मार्गदर्शक

पूरी कहानी में वह मार्गदर्शक के रूप में दिखाई देता है वह बाहर से आए सैलानियों को मार्ग दिखाते हुए झील तक छोड़ने जाता है वह नीली साड़ी वाली औरत के साथ आए सभी सैलानियों के साथ–साथ चलता है परन्तु जब वह गलत रास्ते पर जाने लगते हैं तो महेसा उन्हें इस प्रकार सही रास्ता दिखाता है, "...... उसे बोलने का फिर मौका मिला, गलत रास्ते पर मुड़ते देख वह लपककर नीली साड़ी वाली के पास पहुँचा और एकदम उनके अज्ञान पर जैसे चीख पड़ा, आप लोगों को रास्ता नहीं मालूम, हमारे साथ आइए। इधर से दलदल पड़ेगा।''

वह एक अच्छे मार्गदर्शक की तरह उन्हें सही रास्ते का ज्ञान तो देता ही है उसके साथ ही झील की प्रकृति और हर मौसम में आने–जाने वाले पक्षियों का परिचय भी करवाता है। उसे जब पता चलता है कि सैलानी आए हैं तो वह कोई भी काम छोड़कर उनके साथ चल पड़ता है और उन्हें सचेत करने के साथ–साथ कई सूचनाओं से परिचित करवाता है।

अंततः कहा जा सकता है कि महेसा पक्षी प्रेमी, पत्नी प्रेमी, स्वाभिमानी, संवेदनशील इत्यादि विशेषताओं से युक्त है वह पार्वती और अपने बच्चे की रक्षा करने में असमर्थ रहता है परन्तु पक्षियों की रक्षा के लिए झील को ही खरीद लेता है। वह अपने आप में मस्त रहता है। वह किसी की परवाह न कर स्वयं को अच्छे लगने वाले कार्य करता है। उसे उम्मीद है कि कातिक तक वह पक्षी पुनः झील पर आएंगे क्योंकि फागुन आने के कारण वह मेहमान पक्षी वापिस लौट गए थे।

पार्वती

'नीली झील' कहानी की नायिका है। वह महेस से पुनर्विवाह करती है। विवाह के पश्चात् वह अपने पत्नी–धर्म को बखूबी निभाती भी है। गर्भवती होने पर चिंतित दिखाई देती है कि घर पर एवं अस्पताल में उसकी देखभाल कौन करेगा। वह संवेदनशील है जब उससे सोनापतारी का अण्डा टूट जाता है तो वह आशंकित हो जाती है। पेट में बच्चा मरने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके चरित्र में निम्नलिखित बिंदु दिखाई पड़ते हैं–

1. पतिव्रता

पार्वती एक पतिव्रता नारी है वह अपने पति का पूरा सम्मान करती है। वह अपने पति का पूरी तरह से ख्याल रखती है एवं उसकी प्रत्येक बात को प्रसन्नतापूर्वक मानती है। जब महेसा आधी रात को घर लौटता है तो पार्वती को उसकी चिंता सताती है इसलिए वह उससे देर से आने के बारे में पूछती है, "तो वह सीधेपन से कह देता है, जंगल तक गया था।'' यही नहीं जब वह कहीं से देर बाद आता है या कोई अन्य कार्य के लिए इधर–उधर चला जाता है तो वह उसके लिए ही सोचती है उसकी सुख–सुविधाओं का भी ध्यान रखती है। एक बार महेस दो दिन का कहकर चार दिन तक नहीं आता है तो पार्वती उसकी कुशलता की मन्नत मांगती है जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है– ''दीवार पर सगनौती की लकीरें बनी देखकर उसे फिर कुछ याद आया... जब एक बार वह दो दिन के लिए कहकर चार दिन बाद लौट आया था, शायद तभी पार्वती ने गेरू से यह सगनौती उठाई होगी।'' इस प्रकार पार्वती जितना समय जिंदा रहती है वह जो कुछ भी करती है केवल अपने पति के लिए ही करती है क्योंकि महेस के बिना उसका कोई नहीं था। वह अपना पतिव्रता धर्म पूर्णता से निभाती है।

2. साहसी

वह परंपराओं को न मान कर साहस करते हुए महेस से पुनर्विवाह करती है। वह लोगों की बातों की परवाह नहीं करती है कहानी के प्रस्तुत शब्दों से इस बात की पुष्टि होती है, "विधवा पण्डिताइन ने उससे शादी कर ली थी। लोगों ने तरह–तरह की बातें कही...... किसी का कहना था कि जवान देखकर पण्डिताइन ने फांस लिया और कोई कहता था कि महेस रूपया–पैसा देखकर ढरक गया......।" पर पार्वती पर इन बातों का कोई असर नहीं होता। वह किसी की परवाह न करते हुए महेस के साथ प्रसन्नतापूर्वक जीवन का निर्वाह करती है।

3. सहायक

पार्वती के पास गांव के दूसरे लोगों के मुकाबले अधिक धन था। गांव के जिन लोगों को धन की ज़रूरत होती थी वह धन देकर उनकी सहायता करती थी। पार्वती के महेस को बोले प्रस्तुत शब्दों से पता चलता है, "रूपया बहुत फैल गया है, वसूल नहीं होता, तुम ज़रा लोगों को डांटो–डपटो।"

जगन नाई की पत्नी के प्रस्तुत शब्दों से भी पता चलता है जो वह कर्ज वसूली करने आए महेस से कहती है, "पार्वती चाची मुँह से चाहे जितना बिगड़े, पर आदमी की मरजाद और इज्जत का तो ख्याल करती थी.....।"

वह दूसरों को उधार तो देती थी पर उन्हें पूरा मान–सम्मान भी देती थी। वह उधार वापिस लेने के लिए किसी से क्रूरता भरा व्यवहार नहीं करती थी। वह लोगों की समय असमय जरूरत पूरी करती थी इसलिए सारे गाँव वाले भी उसका मान–सम्मान करते थे चाहे पीठ पीछे कितनी भी बातें करते थे। निम्नलिखित पंक्तियों से इस बात की पुष्टि होती है– ''पार्वती रूपये का लेन देन करती और सबकी चोटी अपने पाँव के नीचे रखती। बस्ती में कौन ऐसा था, जिसे वक्त बेवक्त चार पैसे की जरूरत नहीं पड़ती।''

4. धार्मिक वृत्ति वाली

वह एक पण्डिताइन थी इसलिए परमात्मा में विश्वास रखती थी और पूजा पाठ अथवा किसी धार्मिक कृत्य के लिए परंपराओं को भी साथ लेकर चलती है। वह परंपरागत देवी पूजा में विश्वास रखती है। उस क्षेत्र में देवियों की पूजा हेतु मेंहदी और महावर लगाने की प्रथा थी जिसका प्रस्तुत उदाहरण से पता चलता है, "एक दिन देवियों की पूजा के लिए जब पार्वती ने महावर लगाया।"

वह गांव में मंदिर बनवाने की इच्छा रखती है और साथ ही एक धर्मशाला का निर्माण करवाना चाहती है ताकि यात्रियों को रहने की सुविधा मिल सके। इन कृत्यों के प्रति उसकी भावाभिव्यक्ति इस प्रकार है– "अच्छा सुनो! मेरा मन है कि कुछ रुपया लगाके यहां चबूतरे पर एक मंदिर बनवा दिया जाए...... और बन सके तो मुसाफिरों के लिए दो कोठरियां भी बन जाएं। हारे–थके लोगों को आराम मिलेगा और कुछ रूपया धरम के कारज में लग जाएगा।'' उसे विश्वास है कि जब तक मंदिर रहेगा तो लोगों से आशीर्वाद ही मिलेगी इसलिए अस्पताल में उसके अंतिम शब्द भी मंदिर निर्माण से ही सम्बन्धित थे जैसे– "पार्वती की सांसें धीमी पड़ती जा रही थीं, वह एकदम निंश्चित लग रही थी, और उसने महेसा को पास बुलाकर कहा था, अब मन्दिर ज़रूर बनवा देना, पार्वती मन्दिर।"

5. संवेदनशील

पार्वती एक पतिव्रता होने के साथ–साथ संवेदनशील भी है। वह न तो किसी को कष्ट देती है और न ही किसी का अनिष्ट होते देख सकती है। जब महेस उसे पक्षियों के अंडे दिखाता है तो सोनापतारी का अण्डा वह पार्वती के हाथ में पकड़ा देता है जो उसके हाथ से गिर कर टूट जाता है जिस पर वह भयभीत हो जाती है जिसका पता प्रस्तुत शब्दों से चलता है, "महेस एक–एक अण्डा उठाकर दिखाने लगा। वैसे तो पार्वती नहीं छूती, पर उसने सोनापतारी का अण्डा हाथ में ले ही लिया। घुमाकर देखते ही हाथ से छूटकर

वह गिर पड़ा और टूट गया, तो पार्वती के मुंह से चीख निकल गई, ''हाय दइया! ग ग ग पारबती के चेहरे पर काले बादल–से छा गए थे, उसका दिल धक्–से रह गया था'' पशु–पक्षियों के प्रति उसके हृदय में संवेदनशील भाव भरे थे।

6. स्पष्टवक्ता एवं आशंकित

पार्वती किसी भी स्थिति में हर बात को स्पष्ट कह देती है। महेसा को उदास देख उसे लगता है कि महेस उससे विवाह करवा कर पछता रहा है वह महेस से स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि, "आज सोच–सोच के बड़ा दुख हुआ। ...... अपने सुख की खातिर हमने तुम्हें खराब कर दिया। पार्वती की आँखों में पनीलापन था, पछतावा तो होता होगा, सच–सच बताना!" पार्वती को निराधार आशंकाएं भी घेरे रहती हैं और वह सदैव नकारात्मक सोचती है फिर उसका परिणाम भी वैसा ही होता है। हाथ से अण्डा छूट जाने पर वह एकदम भयभीत हो जाती है और कहती है ''असगुन हो गया'' तथा वह अपने भविष्य के लिए आशंकित हो उठती है। जब वह गर्भवती होती है तो तब भी अपने गर्भ को लेकर चिंतित रहती है।

इस तरह पार्वती एक अच्छी पत्नी व प्रेमिका होने के साथ–साथ एक भली स्त्री है। वह सुख–दुःख में लोगों की मदद धन से करती है उसका संवेदनशील हृदय सदैव आशंकित रहता है। धार्मिक वृत्ति होने के कारण वह ईश्वर के प्रति आस्था रखती है और मन्दिर बनवाकर समाज को अपना योगदान देना चाहती है।

12.3 प्रस्तुत कहानियों का शिल्प–विधान

12.3.1 शिल्प : अर्थ एवं अभिप्राय

'शिल्प' का अर्थ हैः हस्तकला, हाथ की कारीगरी, किसी कथाकार या रचनाकार द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किए जाने वाली भावाभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग है जो शैली से अधिक व्यापक माना जाता है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ है– निर्माण अथवा गढ़न के तत्व अर्थात शिल्प कर्म एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें एक विशेष प्रकार के कौशल की आवश्यकता होती है। शिल्प एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा रचनाकार रचना की कथा को आगे बढ़ाता है और किसी घटना, पात्र, संवाद, वातावरण का निर्माण एवं चित्रण करते हुए जीवन के किसी आदर्श रूप पर प्रकाश डालता है। ओम प्रकाश शर्मा के अनुसार, ''शिल्प विधि भी है और विधान भी। शिल्प के अंतर्गत वे सभी उपाय विधियाँ, प्रविधियाँ, तरीके क्रियाएं– प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं जिनके द्वारा कलाकार कलात्मक सौंदर्य को सिद्ध करता है'' दूसरे शब्दों में साहित्य में भाषा पर अवलम्बित कला– रूप को ही 'शिल्प' का नाम दिया गया है। इसके अंतर्गत साहित्यकार अपनी कल्पना, संवेदना तथा अनुभूति को शब्दों के कुशल प्रयोग से प्रस्तुत करता है। वस्तुतः शिल्प ही किसी रचना की सफलता–असफलता का मानदंड है। यह वह साधन है जिसके द्वारा रचनाकार अपने विषय की

खोज जाँच–पड़ताल और विकास करता है। कमलेश्वर ने लगभग 200 से अधिक कहानियाँ लिखीं हैं और हर कहानी को कथ्यात्मक विचित्रता के साथ–साथ शिल्पगत विशिष्टता प्रदान की है। शिल्प कमलेश्वर की कहानियों का सशक्त पहलू है। उसकी कहानियों की शिल्पगत विविधता तथा शैली की नवीनता कमलेश्वर की विशिष्ट कला का संकेत करती है। उन्होंने अपनी कहानी कला को शिल्प के सौंदर्य के माध्यम से निखारा है। उन्होंने शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग किए हैं। दोहरा कथा शिल्प कमलेश्वर की देन है। राजा निरबंसिया दुहरे कथात्मक शिल्प को लेकर लिखी गई कहानी है तो 'खोई हुई दिशाएं' मनःस्थिति पर प्रकाश डालने वाली कहानी को मनोविश्लेषणात्मक शिल्प में गढ़ा है जबकि 'नीली झील' नामानुरूप काव्यात्मक शिल्प की प्रस्तुति है। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक का प्रयोग भी रचनाकार ने कहानी की कथा के अनुसार किया है। आगे कमलेश्वर की उक्त तीनों कहानियों के शिल्प पर प्रकाश डाला जा रहा है–

12.3.2 'खोई हुई दिशाएं' कहानी का शैल्पिक विधान

'खोई हुई दिशाएं' कमलेश्वर द्वारा रचित दूसरे दौर की कहानियों में एक सशक्त कहानी है। कस्बे से आया चन्दर दिल्ली नामक शहर की भीड़ में अकेला है। उसके मन में नगरीय जीवन से उत्पन्न असंतुष्टि की छटपटाहट है। उसका अकेलापन, उसकी पहचान की समस्या उसमें वितृष्णा के भाव भर देती है। इसलिए इस कहानी में मनः स्थिति का सूक्ष्म अंकन हुआ है। इस कहानी को कमलेश्वर ने मनोविश्लेषणात्मक शिल्प में गढा है। और मनःस्थिति के स्पष्टीकरण के लिए वर्णनात्मक संवादात्मक तथा पूर्वदीप्ति शिल्प की सहायता ली है। कहानी की शैल्पिक संरचना निम्नलिखित है–

1. वर्णनात्मक शिल्प

वर्णनात्मक शिल्प में घटनाओं, पात्रों इत्यादि का वर्णन विस्तृत रूप में किया जाता है। इसमें किसी विशेष समस्या को उठाया जाता जो कहानी के आस–पास घूमती है। उस समस्या पर विस्तृत रूप से विचार किया जाता है। घटनाओं, पात्रों, संवादों को बढ़ा–चढ़ा कर वर्णित किया जाता है। कमलेश्वर कृत 'खोई हुई दिशाएं' कहानी में चन्दर के माध्यम से अकेलेपन से संत्रस्त व्यक्ति के जीवन पर प्रकाश डाला है। वह बड़े शहर में रहते हुए भी अपने आप को अकेला पाता है। वह इतना अधिक व्यथित है कि वह घर भी नहीं जाना चाहता और घर में पड़ोसियों की ताक–झांक को भी पसंद नहीं करता है। रचनाकार ने उसकी घर पहुँचने के पहले वह घर परिवेश के विषय में क्या सोचता है इसका वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है– ''घर पर निर्मला इन्तज़ार कर रही होगी। वहां पहुंचकर भी पहले मेहमान की तरह कुर्सी पर बैठना होगा, क्योंकि बिस्तर पर कमरे का पूरा सामान सजा होगा और वह हीटर पर खाना पका रही होगी। उन्मुक्त होकर वह

हवा के झोंके की तरह कमरे में घुस भी नहीं सकता और न उसे बाहों में लेकर प्यार कर सकता है, क्योंकि गुप्ताजी अभी मिल से लौटे नहीं होंगे और मिसेज़ गुप्ता बेकार में बैठी गप लड़ा रही होंगी या किसी स्वेटर की बुनाई सीख रही होंगी।''

चन्दर टी–हाउस में भी अपना समय व्यतीत करता है। रचनाकार ने टी–हाउस का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है– ''टी–हाउस में बेपनाह शोर है। खोखली हंसी के ठहाके हैं और दीवार पर एक घड़ी है जो हमेशा वक्त से आगे चलती है। तीन रास्ते बाहर से आने और जाने के लिए हैं और चौथा रास्ता बाथरूम जाता है। बाथरूम के पाट्स में फिनाइल की गोलियां पड़ी हैं और गैलरी में एक शीशा लगा हुआ है। हर वह आदमी जो बाथरूम जाता है, उस शीशे में अपना मुंह देखकर लौटता है।'' इस प्रकार स्थलों एवं घटनाओं के वर्णन के द्वारा सारा वास्तविक परिदृश्य पाठकों को प्रभावित करता है।

2. मनोविश्लेषणात्मक शिल्प

मनोविश्लेषणात्मक शिल्प कहानी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस विधि में रचनाकार विषय–वस्तु विचारों को विशेष रूप से वर्णित करता है। वह पात्रों के इर्द–गिर्द का वर्णन करते हुए उसके आंतरिक विचारों, व्यथा, हर्ष, संघर्ष, तनाव, कुण्ठा, चिंता, आशंकाओं इत्यादि को वर्णित कर कथा में रोचकता उत्पन्न करता है। यह सम्पूर्ण विश्लेषण मन पर आधारित होने के कारण मनोविश्लेषण अध्ययन से भी जाना जाता है। कमलेश्वर की अधिकतर कहानियों के केन्द्र में मनःस्थिति है। इस कहानी में उन्होंने चन्दर की मनःस्थिति से पाठकों को परिचित करवाया है। चन्दर जो कि अकेलेपन से जूझ रहा है वह अकेलेपन को दूर करने के लिए जहां भी जाता है वहां से रचनाकार निराश लौटता है फिर वह अपने भावों को व्यक्त न कर अंदर ही अंदर घुटता रहता है।

रचनाकार ने 'मानसिक स्थिति' की चरमसीमा को चन्दर के अकेलेपन की अभिव्यक्ति की है। चन्दर जब कस्बे को छोड़कर शहर आ जाता तो अनुभव करने लगता है कि वह यहां मात्र अकेला है। उसकी मानसिकता और अकेलेपन का वर्णन इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है– ''इस शहर में आकर चन्दर को तीन वर्ष हो गये हैं। कस्बाई संस्कृति और संस्कारों पर उसका व्यक्तित्व विकसित हुआ है। इसी कारण वह हर स्थान पर परिचित की आँखें ढूंढता है। कृत्रिमता और औपचारिकता से उसे बेहद चिढ़ है। परन्तु जिस दिल्ली शहर में आया है वहां इन दो के सिवा तीसरी स्थिति का सामना ही नहीं होता। चन्दर इतने बड़े शहर में एकदम अकेला पड़ गया है। आसपास से सैंकड़ों लोग गुजरते हैं पर कोई नहीं पहचानता। हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरों को नकारता या झूठे दर्प में डूबा हुआ गुजर जाता है।'' वास्तव में इस कहानी में चन्दर का अकेलापन तब और भी बढ़ने लगता है जब उसे थोड़ी उम्मीद

होती है कि कोई तो उसे पहचानता है जैसे– ऑटोरिक्शा वाला सरदार, टी–हाउस का अजनबी और शहर का मित्र पर उनके व्यवहार में अत्यधिक कृत्रिमता और औपचारिकता तथा कटुता उसे अजनबी बना देता है। टी हाउस का वातावरण जिसमें आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अजनबी है और अजनबी बनकर ही रह जाता है। किसी को देखने में कोई मतलब नहीं है चन्दर का मन और भारी हो जाता है। ''अकेलेपन का नागपाश और भी कस जाता है।

चन्दर को इस शहर में आए तीन वर्ष हो गये हैं तीन सालों में किसी भी प्रकार का कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। वह सोचता है– ''इन तीन सालों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जो उसका अपना हो, जिसकी कचोट अभी तक हो, खुशी या दर्द अब तक मौजूद हो।'' चन्दर को लगता है कि शहर की इस भीड़–भाड़ में वह अपने को भूलता जा रहा है। वह अपने से मिलना चाहता है इसलिए वह सोचता है, ''एक अरसा हो गया। एक जमाना गुजर गया, वह खुद अपने से नहीं मिल पाया।'' उसने अपनी डायरी के हर शुक्रवार के आगे नोट किया कि ''खुद से मिलना है। शाम सात बजे से नौ बजे तक।'' परंतु ''न जाने क्यों वह अपने से मिलने से घबराता है।'' उसकी घबराहट छटपटाहट उसके अंतर्मन की स्थिति का बोध करवाती है जिससे पता चलता है कि चन्दर अपने भीतरी अंश को टटोल रहा है। क्योंकि वह जीवन की सभी दिशाओं को खोता जा रहा है। चन्दर शहर की प्रकृति में अपनापन ढूंढता है पर उसमें भी उसे एक विचित्र खालीपन का एहसास होता है। वह अनुभव करता है– ''तनहा खड़े पेड़ों और उसके नीचे सिमटते अंधेरे में अजीब–खालीपन है। तनहाई ही सही, पर उसमें अपनापन तो है।'' इस प्रकार विचित्र अनुभव और अकेलेपन के भाव को लेकर घर आता है तो अपनी पत्नी को देखकर उसे लगता है कि वह अकेला नहीं है अजनबी और तनहा नहीं है। वह शारीरिक सुख की प्राप्ति करता है और बाद में फिर से अपने को अकेला अनुभव करने लगता है जैसे– ''और चन्दर फिर अपने को बेहद अकेला महसूस करता है। कमरे की खामोशी और सूनेपन से उसे डर सा लगता है।'' उसे लगता है कि अन्य सभी दिशाओं के खो चुकने पर आज पत्नी को भी वह खो रहा है इसलिए वह निर्मला को गहरी नींद से उठाकर पागल की तरह पूछता है– ''क्या तुम मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो निर्मल उसकी आँखें उसके चेहरे पर कुछ खोजती रह जाती हैं।'' इस प्रकार कमलेश्वर ने मनोविश्लेषण शिल्प के द्वारा चन्दर की पूरी मनःस्थिति पाठकों के समक्ष रख दी है जो सभी दिशाओं से पहचान की उम्मीद करता हुआ अकेलेपन से जूझता रहता है।

3. पूर्व दीप्ति शिल्प

इस विधि के माध्यम से रचनाकार कथा को प्रवाहित करने के लिए पात्रों को अतीत से जोड़कर वर्णित करता है जिससे कथा का प्रवाह बना रहता है इस सारी प्रक्रिया में कथा पात्रों के मन में ही चलती हैं इस शिल्प का संबंध बाह्य जगत् से नाममात्र का होता है अर्थात् इस विधि के माध्यम से रचनाकर पात्रों

की मनःस्थिति, आंतरिक भावों को व्यक्त करता है। कमलेश्वर ने इस विधि का प्रयोग करते हुए चन्दर के आंतरिक भावों एवं मनःस्थिति का वर्णन कस्बे और शहर के संदर्भ में किया है। उसके शहर इलाहाबाद में सभी एक दूसरे को जानते थे और हमेशा एक दूसरे को बुलाते हैं, चंदर की इलाहाबाद के प्रति या वहां के लोगों के प्रति मनःस्थिति को रचनाकार ने इस प्रकार वर्णित किया है, ''और तब उसे अपना वह शहर याद आता है, जहां से तीन साल पहले वह चला आया था– गंगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो नज़रों में पहचान की एक झलक तैर जाती थी।''

चन्दर जो कि विवाह के पश्चात् भी मन में अपनी प्रेमिका की यादों को बसाए बैठा है। वह अपने बीते दिनों की स्मृतियों को सजग करते हुए उसके साथ बिताए लम्हों को इस प्रकार याद करता है– ''इन्द्रा ने मुस्कुराते हुए चार बरस पहले की तरह चिढ़ाने के अन्दाज़ में बयान किया था, चन्दर को दूध से चिढ़ है और कॉफी इन्हें धुआं पीने की तरह लगती है, चाय में अगर दूसरा चम्मच चीनी डाल दी गई तो इनका गला खराब हो जाएगा, कहकर वह खिलखिलाकर हंस दी थी और इस बात से उसने पिछली बातों की याद ताज़ी कर दी थी...।''

4. संवादात्मक शिल्प

'खोई हुई दिशाओं' में संवादात्मक शिल्प का प्रयोग रचनाकार ने चन्दर की मनःस्थिति को मुखरित करने के लिए ही किया है ताकि भीड़ भरी इस राजधानी में उसके अकेलेपन की पीड़ा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सके। जैसे कि चन्दर को जब उसका मित्र आनंद मिलता है तो आनंद चन्दर के पैसों से ही कॉफी पीना चाहता है। इस संदर्भ में वह चन्दर से कहता है–

''किधर से आ रहे हो? डायरी जेब में डालते हुए वह पूछता है। आज तो यूं ही फंस गए, आओ एक प्याला कॉफी हो जाए। आनन्द कहता है, फिर एक क्षण रूककर वह दूसरी बात सुझाता है, या और कुछ... चन्दर इसका मतलब समझकर न कर देता है। वह ज़ोर देता है, चलो फिर आज तो हो ही जाए, क्या रखा है इस ज़िदगी में? कहते हुए वह झूठी हंसी हंसता है और फिर धीरे से हाथ दबाकर पूछता है, प्लीज़ इफ़ यू डोण्ट माइण्ड, कुछ पैसे हैं? उसके कहने में कोई हिचक नहीं है और न ही उसे शरम आती है। बड़ी सीधी–सी बात है, पैसे कम हैं, अच्छा पार्टनर, मैं अभी इन्तज़ाम करके आया, वह विश्वास को गहराता हुआ कहता है, यहीं रूकना, चले मत जाना, और वह जाता है तो फिर नहीं आता।''

रचनाकार ने दिल्ली जैसे बड़े शहर में पहचान की समस्या को वर्णित किया है वहां कोई एक दूसरे को नहीं पहचानता है वहां पर पड़ोस में रहते व्यक्ति भी एक दूसरे के लिए अनजान होते हैं। चन्दर अपनी पहचान के लिए छटपटाता है। जब कैफे में बैठे हुए अनजान व्यक्ति चन्दर की तरफ अपनेपन की नज़रों

से देखता है तो वह आशा से भर जाता है परन्तु उस व्यक्ति के कुछ बोलते ही वह निराश हो जाता है जैसे कि शब्दों से पता चलता है, ''चन्दर को अपनी ओर देखते हुए देख वह साथ वाला दोस्त कुछ कहने को होता है, पर जैसे उसे कुछ याद नहीं आता, फिर अपने को संभालकर उसने चन्दर से पूछा, आप... आप तो शायद कॉमर्स मिनिस्ट्री में हैं। मुझे याद पड़ता है कि... कहते हुए वह रूक जाता है। वह आदमी आगे अटकलें भिड़ाने की कोशिश नहीं करता, सीधे–सीधे इस अनजान सम्बन्ध को मज़बूत बनाते हुए कहता है, ऑल राइट पार्टनर, फिर कभी मुलाकात होगी और सिगरेट सुलगाता हुआ उठ जाता है।''

चन्दर पहचान पाने के लिए तड़पता है वह चाहता है कि इतनी बड़ी आबादी में कम से कम कोई तो उसे जानता हो जिस पर वह गर्व महसूस कर सके, जिसे वह अपना कह सके और जो उसे गहराई से जाने। आटो रिक्शे वाले के देखने के नज़रिए से चन्दर को भ्रम हो जाता है कि वह उसे जानता है क्योंकि चन्दर उसके रिक्शे पर कई बार आया था परन्तु जब आटो वाला अधिक पैसों की मांग करता है तो पल भर में ही उसका भ्रम चकनाचूर हो जाता है जो कि इस प्रसंग शब्दों से पता चलता है, ''हमेशा चार आने लगते हैं सरदार जी! चन्दर पहचान जताता हुआ कहता है, पर सरदार की आंखों में पहचान की परछाई तक नहीं है। वह फिर कहता है, सरदार जी, आपके फटफट पर ही बीसों बार चार आने देकर आया हूँ।'' ''किसे होरने लए होणगे चार आने... असी ते छै आने तो घट नहीं लेंदे बादशाहो! सरदार इस बार पंजाबी में बोला था और उसकी हथेली फैली हुई थी।''

इस प्रकार 'खोई हुई दिशाएं' कहानी की कथा चन्दर की पूर्व स्मृतियों के आधार पर ही विकसित होती है। तभी तो पाठक चन्दर की वर्तमान मानसिकता का विश्लेषण कर सकता है।

12.3.3 'नीली झील' कहानी का शैल्पिक विधान

कमलेश्वर की 'नीली झील' कहानी झील और महेस के इर्द–गिर्द ही घूमती है। इस कहानी में कहानीकार तीस साल पहले की बात सुनाता है। पूरी कथा क्रमानुसार चलती है। आज से तीस साल पहले झील से बस्ती तक का रास्ता बनाने आए मजदूरों में महेसा भी एक मजदूर था। सैलानी महिलाओं के प्रति उसका विशेष आकर्षण था इसलिए उन्हें देखते ही वह उनके साथ–साथ चलने, उनके साथ बातचीत करने, उनके सौन्दर्य में एक विशेष रूप की तृप्ति अनुभव करता था। वह नीली साड़ी वाली सैलानी स्त्री के प्रति विशेष रूप से आकर्षित होता है उसे नीली साड़ी, उसकी नीली आंखों और नीली झील में समानता दिखाई देती है। रचनाकार ने झील पर पक्षियों, वृक्षों का सूक्ष्म वर्णन इस प्रकार किया है, "हलकी–हलकी हवा झील की ओर से आ रही थी और छाया में कुछ सर्दी भी थी। झील के पानी के भीतर बादल तैर रहे थे और नरकुल धीरे–धीरे कांप रहे थे। ... दूर से जिधर पानी उथला था, देवहंसो, मुर्गाबियों और पतारी के झुंडों

के चुगने की और पंख फड़फड़ाने की आवाजें आ रही थीं। देवहंस शायद सिवार खा रहे थे और मुर्गाबी घोघे या केकड़े खोजने में मशगूल थे। पेड़ों पर चिड़ियां चहक रही थी।"

महेस अपने से दस साल बड़ी विधवा से विवाह करता है। लोग दोनों के संबंध में बातें बनाते हैं परन्तु वह दोनों पति–पत्नी किसी की परवाह न करते हुए खुशी–खुशी जीवन व्यतीत करते हैं। पार्वती के गर्भवती होने पर बच्चा पेट में ही मर जाता है और इसी कारण पार्वती की भी मृत्यु हो जाती है। तत्पश्चात् महेस पार्वती की यादों में खोया रहता है। अंत में वह पत्नी की इच्छा पूर्ण करने के लिए मंदिर एवं धर्मशाला को बनाने के लिए पैसे एकत्रित करता तो है परन्तु पक्षी प्रेम के कारण वह उन पैसों से झील खरीद लेता है और उसके बाहर एक तख्ती लगवा देता है जिस पर वह लिखवाता है, "यहां शिकार करना मना है। और नीचे की पंक्ति थी, दस्तखत नीली झील का मालिक, महेस पांडे।" कहानीकार ने इस कथा को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे कथा में रोचकता एवं प्रवाहमयता आई है। इस कहानी के विकास में कमलेश्वर ने मुख्यता वर्णनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक एवं बिम्बात्मक शिल्प का सहारा लिया है। जिस पर आगे विचार किया जा रहा है–

1. वर्णनात्मक शिल्प

वर्णनात्मक शिल्प के अंतर्गत रचनाकार कथा विकास के लिए कई प्रसंगों, घटनाओं, स्थानों तथा जीवन के पक्षों का विस्तृत वर्णन करता चलता है। प्रस्तुत कहानी में कमलेश्वर ने झील, पक्षियों एवं महेसा के जीवन के कुछ क्षणों का विस्तृत वर्णन किया है। महेस अपने से अधिक आयु वाली विधवा से विवाह करता है एवं उसकी इच्छानुसार अपने में परिवर्तन लाता है तथा पारबती की सुख सुविधा के लिए बैलों की जोड़ी खरीदता है। कथाकार ने महेस पाँडे में आए परिवर्तन और उसकी जिम्मेदारी का वर्णन इस प्रकार किया है, ''पार्वती के कहने से उसने कलमें बड़ी–बड़ी रखवाई थीं, चोटी में मोटी सी गांठ बांधता था और मूंछे छोटी करवा ली थीं। मेले–तमाशे पर जाने के लिए बैलों की एक गोई और छोटा सा रब्बा भी खरीद लाया था। बैलों को खूब सजाकर रखता था। उनके गलों में चालीस घुंघरूओं की माला थी और सींगों पर पालिश। रब्बे की छत के लिए रंगीन झालर पार्वती ने सी थी और गछियां वह दरज़ी से बनवा लाया था। पहियों के ऊपर रथ की तरह हाथ लगवाया था और सन की नहीं, सूत की रंगीन डोरियों से किनारे बुनवाए थे।''

इसी तरह फोटो फ्रेम में फोटो लगाने के लिए महेसा के कहने पर पारबती सज–धज कर फोटो करवाने उसके साथ जाती है। कहानीकार ने फोटो खिंचवाने के दृश्य का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है। ''साथ–साथ बैठते हुए उसने पार्वती के सर का पल्ला कानों के पीछे कर लिया और अपनी कमीज़ की जेब में सतरंगा रेशमी रूमाल रख लिया। अपने गले का ताबीज़ भी खींचकर ऊपर कमीज़ पर निकाल

लिया, ताकि तस्वीर में सब कुछ दिखाई पड़े। अपने पीछे बाग का पर्दा लगवाया, जिसमें दो चिड़िया चोंच में चोंच मिलाए बैठी थीं। पार्वती को भी वह पर्दा पसन्द आया था।''

इस प्रकार कहानीकार ने इस कहानी की हर एक घटना को बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से पेश किया है।

2. मनोविश्लेषणात्मक शिल्प

कहानी रचना में मनोविश्लेषणात्मक शिल्प का महत्वपूर्ण योगदान है। इस कहानी में कमलेश्वर ने महेस उसके मज़दूर साथी एवं उसकी पत्नी पंडिताइन की मनःस्थिति का यथार्थांकन किया है। महेस का पक्षी प्रेम और पक्षियों के लिए चिंतित होना और पक्षियों के लिए उसके मन में व्याप्त भय, क्रोध, प्रेम के भावों का सफल विश्लेषण हुआ है। कहानी के शुरू में ही महेसा की आदतों को देख उसके मजदूर साथियों के मन में उठने वाले ईर्ष्या भाव को रचनाकार ने इस प्रकार वर्णित किया है, "इस साले को मेठ से कहकर निकलवाया जाए! मेम जान पाती तो चमड़ी उतर जाती।... साला आसक बनता है!"

महेस का पक्षियों के प्रति विशेष प्रेम था वह अंग्रेजों द्वारा मारे गये पक्षियों को देख कर त्रस्त होता है। गोली की आवाज़ सुनते ही एक विशेष उदासीनता उसे घेर लेती है। उसकी इस मनः स्थिति का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है– "उधर बंदूक चली थी और गोली की टूटती हुई आवाज बादलों में गूंज गई थी। और उसके बाद पक्षियों का कातर शोर! मन पर चोट सी लगी थी। उसका मन उदास हो आया था। एक क्षण ठिठककर उसने पीछे देखा, दलदल खामोश था और ऊपर से उड़कर भागती हुई चिड़ियों की भयातुर आवाज़ को शालीनता से पीता जा रहा था।'' इस प्रकार जब सैलानी शिकार करते हैं तो वह उन्हें रोक तो नहीं पाता है पर इन पक्षियों का रक्षा का विचार उसे चैन नहीं लेने देता इसलिए रात को सोते समय भी पक्षियों के नरम, कोमल परों की सरसराहट उसे महसूस होती है। उसकी रोज़ की सुबह झील पर ही बीतती है। जब शिकारी शिकार करते हैं तो वह एकदम उचाट हो जाता है और उस स्थान से भाग आता है पर फिर भी उसे शान्ति कहीं नहीं मिलती।

दूसरी ओर पार्वती अपने से दस वर्ष छोटे महेस से विवाह तो कर लेती है पर महेस के लापरवाही वाले व्यवहार को देखकर पछताती है क्योंकि वह सोचती है कि एक उम्र के बाद ही व्यक्ति जिम्मेदारी उठाता है। महेस की उम्र उसके लिए अभी छोटी थी। इसलिए वह उसे कहती भी है कि बहुत लड़कपन है तुममें। वह महेस को मन्दिर बनवाने के लिए कहती है तो वह उसे पूछता है कि मन्दिर बनाना ज़रूरी है वह उसके कहे वाक्यों का अर्थ लगाती हुई पार्वती की मनः स्थिति लेखक ने स्पष्ट की है– ''पार्वती समझ गई थी कि उसके मन की बात यह नहीं है। महेस की आँखों में अभी जो सूनापन देखा था वह कुछ ओर

ही कह रहा था। पार्वती उदास हो जाती है कि शायद वह उससे शादी करके पश्चाताप तो नहीं कर रहा है।'' वह महेस से अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति इन शब्दों में करती है– "आज सोच–सोचके बड़ा दुःख हुआ। .... अपने सुख की खातिर हमने तुम्हें खराब कर दिया। पार्वती की आंखों में पनीलापन था, पछतावा तो होता होगा, सच–सच बताना।"

महेस जब पार्वती को पक्षियों के अण्डे दिखाता है तो पार्वती के हाथ से सोनापतारी का अंडा गिर कर टूट जाता है तो वह भयभीत हो जाती है। वह एक दम अपने भविष्य के लिए आशंकित हो जाती है। उसके चेहरे पर निराशा के भाव स्पष्ट झलकने लगते हैं जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है– "पर पार्वती के चेहरे पर काले बादल–से छा गए थे, उसका दिल धक्–से रह गया था, बहुत धीमे स्वर में बोली, असगुन हो गया और आंचल में मुंह छिपाकर रो पड़ी।" अतः यह कमलेश्वर की उत्कृष्ट कहानीकला ही है कि वह बहुत सी बातें केवल पात्रों के मनोभावों के द्वारा ही कह जाते हैं।

3. काव्यात्मक शिल्प

काव्यात्मक शिल्प के अंतर्गत कहानी या मनोभाव को काव्य भाषा में कलात्मकता प्रदान की जाती है। काव्य शिल्प कथा में सौंदर्य की वृद्धि करता है। मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इस शिल्प के द्वारा सहजता से की जाती है। 'नीली झील' कहानी कमलेश्वर में इस शिल्प का नवीन प्रयोग किया है। प्रकृति का सौंदर्य और महेस पांडे की सौंदर्यप्रियता का वर्णन इस शिल्प में हुआ है। पक्षियों के साथ उसका लगाव को बड़े काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है– ''मानसरोवर और कैलास से आए देवहंसों को, जो गंधर्वों के देश से आए थे प्रवास के लिए .... केवल और पवित्र पक्षी!... हल्की किरणों में सोनापतारी के स्वर्ण–पंख चमचमा उठे। उसका मन उदासी से भर गया। इन पक्षियों से क्या नाता जोड़ना।'' कथाकार ने मेम की आँखों के सौंदर्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है– ''होय मोमिया तेरी अंखियां बड़ों जुल्म ढायो री...'' इसी प्रकार जलती हुई आग में पेड़ों का सौन्दर्य भी देखते ही बनता है– ''पेड़ों की पत्तियां आग की दमक में तांबे की तरह लग रही थीं और उनके काले, पयोटेदार तने अजगरों की तरह झिलमिला रहे थे। आसमान सीप की पीठ की तरह धुंधला और काला था।'' जलमंजरी तथा दलदल में पैदा होने वाली लताओं का वर्णन इस प्रकार है– ''जलमंजरी के पास ही दलदल शुरू हो जाता था। पानी में तारों की तरह विधी हुई थी और गांठों के पास नन्हें–नन्हीं जड़ें मछली के उजले पंखों की तरह धीरे–ध ीरे कांप रही थीं।'' इस प्रकार रचनाकार ने विभिन्न उपमाओं के द्वारा अपनी अनुभूति को सफल अभिव्यक्ति दी है। कथ्य की विशिष्टता के कारण ही इसका सृजन कविता और कहानी के धरातल पर हुआ है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– ''राजा निरबंसिया की तरह कमलेश्वर इस कहानी में नये माध

यम की आजमाइश करना चाहते हैं। पहली की रचना प्रक्रिया कहानी में कहानी है और दूसरी का सृजन कविता और कहानी के दो धरातलों पर किया गया है।'' वास्तव में इस कहानी में उभर आई काव्यात्मकता पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है।

4. बिम्बात्मक शिल्प

बिम्ब जिसे अंग्रेजी में 'इमेज' कहा जाता है। उसका उपयोग छाया, प्रति छाया, अनुकृति आदि के रूप में होता है। बिम्ब वह चेतन स्मृतियां है जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के प्रभाव में उस विचार को सम्पूर्ण या अंशिका रूप में प्रस्तुत करती है जिसके माध्यम से भावों को अभिव्यक्ति मिलती है। दूसरी ओर रचना को पढ़कर पाठक के मस्तिष्क में बनने वाले चित्र भी बिम्ब कहलाते हैं। प्रस्तुत कहानी में बिम्बात्मक शिल्प का प्रयोग हुआ है। महेस पार्वती को मेम से कम नहीं मानता है और जब पार्वती हंसती है तो उसके सफेद दांतों को देख महेस की आंखों के आगे जो बिम्ब बनता है उसका वर्णन रचनाकार ने इस प्रकार किया है, "और हंसती पार्वती के उजले दांतों को देखकर उसका मन खिल गया। पार्वती के दांत ठीक वैसे ही थे, जैसे उसने कभी देखे थे, हंस के पंखों की तरह धुले हुए। तथा पर्वतों से आए मेहमान पक्षियों के सफेद और सेमल की रूई से सजीले पंख और पार्वती के सफेद दांत।''

पार्वती की मृत्यु के समय उसके नीले पड़ चुके शरीर में भी महेस को चांदनी में दिखाई देने वाली पार्वती दिखाई देती है। जैसे– "और महेस को पार्वती का हलका नीलापन लिए शरीर ठीक वैसा ही लगा था, जैसा कि उस दिन चांदनी में उसने देखा था।"

महेस पक्षियों से प्रेम करता है जब सैलानी पक्षियों का शिकार करते है और मरे हुए पक्षियों को उठाकर ले जाते हुए महेस देखता है तो महेस की आँखों के आगे पार्वती के शव का दृश्य घूम जाता है और वह सोचता है– "ये सवनहंस अब आए है, चार–पांच महीने रहकर पार्वती की तरह चले जाएंगे, या फिर किसी शिकारी का शिकार हो जाएंगे, जैसे पार्वती हो गई। इनके धूसर पंख खून की लकीरों से रंग जाएंगे, और इनके परों को पकड़कर शिकारी ऐसे लटका ले जाएगा जैसे मुर्दा पार्वती को अस्पताल के भंगी पलंग से उठाकर उसे सूने बरामदे में ले जाए थे।" इस प्रकार सफल बिम्ब योजना के माध्यम से यह कहानी और भी प्रभावशाली बन पाई। कहानी का शीर्षक 'नीली झील' भी बिम्बात्मक शीर्षक है जैसे ''गौर से देखने पर ऊँचे–ऊँचे पेड़ों के बीच में से एक बहुत बड़ा शीशा झलकता दिखाई पड़ता है।'' तथा ''कित्ती खूबसूरत है मेम! इसकी आँखें नीली झील की तरह लगती हैं'' इस प्रकार नीली झील, नीली आँखें और नीली साड़ी वाली औरत इन सभी का वर्णन उस झील की भव्यता, सुन्दरता और स्वच्छता की ओर संकेत करता है।

अतः शैल्पिक दृष्टि में 'नीली–झील' कहानी की संरचना में मनोविश्लेषणात्मक और बिम्बात्मक शिल्प से सुसज्जित कहानी के विभिन्न प्रसंगों का काव्यात्मक वर्णन है।

12.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. काव्यात्मक शिल्प का प्रयोग किस कहानी में हुआ है?

2. 'खोई हुई दिशाएँ' कहानी के पात्र 'चन्दर' का चरित्र स्पष्ट करें।

3. 'महेस पांडे' के चरित्र की विशेषताएँ बताईए।

4. 'नीली झील' कहानी की 'पार्वती' के चरित्र पर प्रकाश डालें।

12.5 संदर्भ पुस्तकें

1. कमलेश्वर, मेरी प्रिय कहानियां, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, 1972.
2. सूर्यनारायण मा. रणसुभे, कहानीकार कमलेश्वर संदर्भ और प्रकृति, जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 1977.

———

'खोई हुई दिशाएं' और 'नीली झील' कहानी की मूल संवेदना

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 संवेदना का अर्थ एवं अभिप्राय

13.3 'खोई हुई दिशाएं' कहानी की मूल संवेदना

13.4 'नीली झील' कहानी की मूल संवेदना

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययन उपरान्त आप

- संवेदना का अर्थ समझ सकेंगे।
- 'खोई हुई दिशाएं' कहानी में चन्दर कैसे खो जाता है इसे समझ सकेंगे।
- 'नीली झील' कहानी में पक्षी प्रेम के भाव को समझ सकेंगे।

13.2 संवेदना का अर्थ एवं अभिप्राय

संवेदना शब्द 'सम्' उपसर्ग 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है– समान भाव से, बराबरी से जानना या महसूस किया जाना। संवेदना मूलतः मनोविज्ञान का शब्द है इसकी अनुभूति आन्तरिक होती है।

यह ज्ञान–प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है जिसमें स्वयं और पर दोनों की समान अनुभूति होती है। दूसरे के सुख में सुख तथा दु'ख में दु'ख का अनुभव करना ही संवेदना है। जो व्यक्ति जितना सहृदय होगा, उसमें संवेदना का जागरण उतनी ही प्रबलता से होगा। यह मानव की मानवीयता अथवा मनुष्यता को जागृत और परिष्कृत करती है।

रचना की मूल संवेदना सहृदय पाठक को रचनाकार की अभिव्यक्ति के मूल उद्देश्य से तदाकार करती है और वह पात्र, स्थिति तथा घटना के प्रति संवेदित होता है। वास्तव में संवेदना ऐसा भाव अथवा हृदय संवाद है जिसके द्वारा पाठक रचनाकार के भाव से जुड़ते भांपते अथवा परखते हैं।

कमलेश्वर की आलोच्य तीन कहानियों में मूल संवेदना कहीं पात्र, कहीं परिस्थितियां तो कहीं स्थान के साथ जुड़ती हैं। इन कहानियों में संवेदना के स्वरूप पर आगे विचार किया जा रहा है–

13.3 'खोई हुई दिशाएं' कहानी की मूल संवेदना

'खोई हुई दिशाएं' कमलेश्वर द्वारा रचित दूसरे दौर की कहानी है। इसकी रचना कथाकार ने इलाहाबाद से दिल्ली आने पर सन् 1959–60 में की। इस कहानी की मूल संवेदना अकेलेपन की पीड़ा और पहचान की समस्या है। इस पूरी कहानी में चन्दर अपनी पहचान पाने के लिए तड़पता रहता है। रचनाकार ने बड़े शहरों में कस्बे से आने वाले आम आदमी की स्थिति को चित्रित किया है कि उसे वहां पर कोई नहीं पहचानता है और मनुष्यों की भीड़ में भी वह अकेला है। इस कहानी की मूल संवेदना के निम्नलिखित बिन्दुओं को स्पष्ट किया जा रहा है–

1. पहचान खोने की विवशता का वर्णन

पहचान की मांग हर व्यक्ति की जीवित रहने का कारण है। व्यक्ति की यह मानसिक भूख भी है। रचनाकार ने व्यक्ति की पहचान की पीड़ा को बड़े ही सटीक ढंग से वर्णित किया है। बड़े शहरों में एक कस्बे से आने वाला व्यक्ति अपनी पहचान के लिए भटक रहा है पर हर स्थान पर पसरा हुआ परायापन उसे त्रस्त करता है।

कहानी का नायक चंदर इलाहाबाद से दिल्ली आया है उसे तीन बरस हो गये हैं इस शहर में आए हुए। वह कस्बों की संस्कृति में पला बढ़ा है। इसलिए वह परिचित आँखों की तलाश में है। बस स्टैण्ड, पार्क चौराहे, कैफे सड़क पर जहां तक कि अपने घर में वह अपनी पहचान को महत्व देता है। दिल्ली की सड़कों पर घूम कर जब वह कैफे में आता है एक अजनबी द्वारा पुकारे जाने पर एक पल के लिए उसे पहचान की आशा होती है परन्तु दूसरे ही पल टूट जाती है जैसे कि प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट है– ''अपने साथ बैठे हुए अनजान दोस्त की तरफ गहरी नज़रों से देखता है और सोचता है, अजनबी ही सही, पर इसने पहचाना

तो। इतनी पहचान भी बड़ा सहारा देती है... चन्दर को अपनी तरफ देखते हुए देख वह साथवाला दोस्त कुछ कहने को होता है, पर जैसे उसे कुछ याद नहीं आता, फिर अपने को संभालकर उसने चन्दर से पूछा, आप. .. आप तो कामर्स मिनिस्ट्री में हैं, मुझे याद पड़ता है कि ... कहते हुए वह रूक जाता है। चन्दर का पूरा शरीर झनझना उठता है और एक घूंट में बची हुई कॉफी पीकर वह बड़े संयत स्वर में जवाब देता है, नहीं, मैं कॉमर्स मिनिस्ट्री में कभी नहीं था...।''

चन्दर वहां से दुःखी होकर चला जाता है तो रिक्शे वाले द्वारा पहचान भरी नज़रों से देखने पर उसकी आशा फिर से बंध जाती है कि शुक्र है कि कोई तो जानता है और अगले ही पल जब रिक्शे वाला अधिक पैसे की मांग करता है तो उसकी उम्मीद चकना चूर हो जाती है वहां से निराश होकर चन्दर अपनी प्रेमिका इन्द्रा का स्मरण करता है जो अब दिल्ली में रहती है। वह सोचता है कि वह तो मुझे जानती है परन्तु चाय देते समय इन्द्रा उससे पूछती है कि कितने चम्मच चीनी डालूं तो वह भी उसे अजनबी लगती है जैसे कि कहानी के प्रस्तुत शब्दों से पता चलता है– ''और एक झटके से सब कुछ बिखर गया। उसका गला सूखने–सा लगा और शरीर फिर थकान से भारी हो गया। माथे पर पसीना आ गया। फिर भी उसने पहचान का रिश्ता जोड़ने की एक नाकाम कोशिश की और बोला, ''दो चम्मच''। और उसे लगा कि अभी इन्द्रा को सब कुछ याद आ जाएगा और वह कहेगी कि दो चम्मच चीनी से अब गला खराब नहीं होता?''

पर ऐसा कुछ नहीं होता। वह वहाँ से भी भाग जाता है। इसी प्रकार डाकखाना, बैंक तथा अन्य किसी भी सार्वजनिक स्थानों पर लोग तो मिलते हैं पर उनका व्यवहार कृत्रिम और यंत्रवत है उसे कहीं भी इलाहाबाद के समान पहचान की सुगन्ध नहीं आती है। वह केवल अपनत्व पाना चाहता है। वह अपनापन जो लोगों से, सड़कों से और वातावरण से मिलता है जिससे व्यक्ति की पहचान बनती है पर दिल्ली में कोई भी तो ऐसा नहीं है। सभी एक दूसरे को जाने–पहचाने बिना अपने–अपने कार्य में व्यस्त हैं। पूरी कहानी में चन्दर दिल्ली जैसे शहर में अपनी पहचान पाने के लिए छटपटाता है और अंततः इतना बेचैन हो जाता है कि वह अपनी पत्नी से भी यही प्रश्न पूछता है ''मुझे पहचानती हो निर्मला?'' और उसकी आँखें उसके चेहरे पर पहचान ढूंढती रह जाती हैं।

2. अकेलेपन की पीड़ा का वर्णन

शहरी संस्कृति ने हमें अकेलेपन का तोहफा दिया है। शहर में व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है। वह यहां कहीं भी जाता है अपने आप को अकेला ही पाता है। कहानी का नायक चन्दर अकेलेपन की पीड़ा से संत्रस्त है। वह बस स्टॉप पर भीड़ में खड़ा है वहां सब एक दूसरे की तरफ अजनबी निगाहों से देख रहे हैं। समय और बस के संबंध में एक दूसरे से पूछने की हिम्मत नहीं होती है कहानी के प्रस्तुत शब्दों से पता चलता है– ''रीगल बस स्टॉप के नीम के पेड़ों से धीरे–धीरे पत्तियां झड़ रही हैं। बसें जूं–जूं करती आती

हैं– एक क्षण ठिठकती हैं– एक ओर से सवारियों को उगलती हैं और दूसरी से निगलकर आगे बढ़ जाती है। चौराहे पर बत्तियां लगी हैं। बत्तियों की आंखें लाल–पीली हो रही हैं। आस–पास से सैंकड़ों लोग गुज़रते हैं पर कोई उसे नहीं पहचानता। हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरों को नकारता या झूठे दर्प डूबा हुआ गुजर जाता है।''

वह पार्क में जाता है वहां पर बैंच लगे हैं, लोग बैठे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, सभी अपने आप में मस्त हैं कोई किसी की तरफ ध्यान नहीं दे रहा है चन्दर वहां पार्क में भी अकेलेपन को अनुभव करता है उसके प्रस्तुत शब्दों से स्पष्ट है, ''तनहा खड़े पेडों और उसके नीचे सिमटते अंधेरे में अजीब–सा खालीपन है।'' इस प्रकार कस्बे से आया चन्दर हर दिशा में मन की छटपटाहट को लेकर घूम रहा है। अपनेपन से दूर होकर उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। संपूर्ण कहानी में अकेलेपन की अनुभूति ही प्रखर है और यह अकेलापन चन्दर को कहीं भी टिकने नहीं देता। एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना रुके भागता जाता है। दिनभर के सारे अनुभवों के कटु सत्य का सामना करते हुए बेहद अकेलेपन के एहसास को लेकर घर आता है तो घर की वस्तुओं और पत्नी के बीच अपने को पाकर उसे लगता है कि ''वह अकेला नहीं हैं। अजनबी और तनहा नहीं है। सामने वाला गुलदस्ता उसका अपना है पड़े हुए कपड़े उसके अपने हैं, उनकी सुगंध वह पहचानता है।'' और फिर शारीरिक सुख की प्राप्ति के बाद फिर वह पत्नी के होते हुए भी अपने आप को अकेला पाता है वह जिस अपनेपन को पत्नी में ढूंढता है वह उसे पत्नी में नहीं मिलता है ''और चन्दर फिर अपने को बेहद अकेला महसूस करता है, कमरे की खामोशी और सूनेपन से उसे डर लगता है। वह निर्मला के कन्धे पर हाथ रखता है, चाहता है कि उसकी करवट बदल दे, पर उसकी अंगुलियां बेजान होकर रह जाती है।'' और बार–बार के स्पर्श से भी जब निर्मला जागती नहीं तब अचानक उसे लगता है कि शायद निर्मला भी उसे पहचानती न हो। ''चन्दर सुन्न सा रह जाता है... क्या वह उसके स्पर्श को नहीं पहचानती है?'' इस प्रकार अकेलेपन की त्रासदायक स्थितियों का वर्णन हुआ है जिनमें से गुज़रते हुए चन्दर भयभीत सा रहता है।

3. कस्बे और शहरी जीवन का अंतर स्पष्ट करना

ग्रामीण कस्बों में अपनेपन के भाव मिलते हैं और वही राजधानी में सभी एक दूसरे से अजनबियों की तरह व्यवहार करते हैं। ग्रामीण कस्बों में दूर–दूर तक व्यक्ति की पहचान होती है और राजधानी में व्यक्ति की पहचान उसके घर के आगे लगी नंबर प्लेट से होती है।

रचनाकार ने इस कहानी के द्वारा ग्रामीण कस्बों और राजधानी के अंतर को स्पष्ट किया है। चन्दर राजधानी में रहते हुए तालमेल नहीं बना पाता है वह वहां के वातावरण एवं लोगों से परिचय बनाना चाहता है परन्तु कस्बे में मिलने वाला अनजान भी पहचान बढ़ाकर ही आगे निकलते हैं जबकि शहरों में पहचानने

वाला व्यक्ति भी समय न होने पर आँखें बचाकर निकल जाता है। बात–बात पर चन्दर को अपना शहर याद आता है। कथाकार ने ग्रामीण और शहरी वातावरण के अंतर को निम्नलिखित में स्पष्ट किया है– ''और तब उसे अपना वह शहर याद आता है, जहां से तीन साल पहले वह चला आया था– गंगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो नज़रों में पहचान की एक झलक तैर जाती थी और यह राजधानी! जहां सब अपना है, अपने देश का है... पर कुछ भी अपना नहीं है, अपने देश का नहीं है तमाम सड़के हैं जिन पर वह जा सकता है, लेकिन वे सड़कें कहीं नहीं पहुंचाती। उन सड़कों के किनारे घर हैं, बस्तियां हैं, पर किसी भी घर में वह नहीं जा सकता। उन घरों के बाहर फाटक हैं, जिन पर कुत्तों से सावधान रहने की चेतावनी है, फूल तोड़ने की मनाही है और घण्टी बजाकर इंतज़ार करने की मज़बूरी है।'' लेखक ने यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि गांवों और कस्बों में हर स्थान पर अपनापन होता है प्रत्येक व्यक्ति परिचित न होते हुए भी परिचय का संकेत देता है परन्तु शहरों में परिचित भी अपरिचित हो जाता है। शहरों ने मनुष्य के स्नेह और अपनत्व को समाप्त कर दिया है।

इस प्रकार 'खोई हुई दिशाएं' कहानी में कस्बे से आए संवेदनशील युवक चन्दर के मन की छटपटाहट को शब्दबद्ध किया गया है। शहरों में बढ़ती हुई संवेदनहीनता के कारण वह स्वयं को कटा हुआ पाता है और उसे सब कुछ निरर्थक लगने लगता है। पूरी कहानी एक संतप्त मनःस्थिति को लेकर चलती है जिसमें अकेलेपन की अनुभूति ही प्रमुख है। अपने दूसरे दौर की कहानियों के संबंध में कमलेश्वर ने लिखा है– ''व्यक्ति के दारूण और विसंगत संदर्भों को समय के परिप्रेक्ष्य में समझने का' प्रयत्न इस दौर में हुआ है और चन्दर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को उसके दारूण और विसंगत संदर्भों में पहचानने का प्रयास है जिसमें कथाकार को पूर्ण सफलता मिली है।

13.4 'नीली झील' कहानी की मूल संवेदना

'नीली झील' पहले दौर में लिखी गई अन्तिम कहानी है। यह कहानी मानवीय संवेदना को व्यक्त करती है। प्रकृति और पर्यावरण का महत्व बताती हुई यह कहानी पक्षियों से जुड़े मानव मोह को व्यक्त करती है। इसलिए सारी कहानी पक्षियों के इर्द–गिर्द ही घूमती है। इस कहानी का नायक महेसा एक मज़दूर हैं। अशिक्षित है और कानपुर से मिल की नौकरी छोड़कर किसी शहर से थोड़ी दूरी पर स्थित 'नीली झील' की ओर जाने वाले रास्ते पर मज़दूरी करता है। सौंदर्य के प्रति उसकी अनाम सी भूख है। उसे नीला रंग प्रिय है इसलिए नीली झील, नीली साड़ी वाली मैम की ओर आकृष्ट हो जाता है। वह विधवा पंडिताइन से विवाह करवाता है और उसकी मृत्यु के बाद भी उसकी यादों में खोया रहता है। झील पर आए हुए अंग्रेज सैलानियों को पक्षियों का शिकार खेलता देख द्रवित हो जाता है वह पक्षियों को बचाने के लिए झील को ही खरीद लेता है इस कहानी की मूल संवेदना को निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

1. पक्षियों के प्रति संवेदना व्यक्त करना

रचनाकार ने पक्षियों की प्रजातियों के प्रति चिंता व्यक्त की है। वातावरण में सामंजस्य को बनाये रखने के लिए मानव के साथ–साथ पक्षियों का होना भी आवश्यक है। पक्षी मानव के लिए कई हानिकारक जीवों को आहार बनाकर व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करते हैं इसलिए सम्पूर्ण मानव जाति की सुरक्षा के लिए पक्षी भी प्रकृति का एक अनिवार्य हिस्सा है। आधुनिक मानव अपनी प्रसन्नता और शौक के लिए पक्षियों का शिकार कर उनकी कई प्रजातियों को ही समाप्त कर रहा है। इस कहानी की मूल संवेदना पक्षियों का संरक्षण और पक्षी प्रेम पर आधारित है।

कहानी नायक महेसा पांडे का पक्षियों के साथ विशेष प्रेम है। वह पक्षियों की आवाज़ से पक्षियों को पहचानता है और उनकी ध्वनि से वह उनके सुख–दुख को भी जान जाता है। सारा–सारा दिन वह नीली झील पर व्यतीत करता है क्योंकि विशेष ऋतु में विशेष पक्षी इस झील का मेहमान बनते हैं इसलिए पक्षियों का आकर्षण उसे हर समय उसकी ओर खींचता है पर यह झील अपने प्राकृतिक सौंदर्य और पक्षियों की आवास स्थली होने के कारण सैलानियों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। वह इस स्थान पर आकर पक्षियों का शिकार करते हैं। अतः महेसा सैलानियों द्वारा पक्षियों का शिकार करने पर उदासीन हो जाता है। वह नहीं चाहता कि सैलानी इनका शिकार करें। वह पक्षियों को पालने का शौक रखता है इसलिए वह अपनी पत्नी पारबती से चोरी पक्षियों को पालता है। उनके अण्डे भी छुपा कर रखता है। पारबती को दिखाता हुआ कहता है– ''देख पारबती, यह वाक का अण्डा है, यह सारस का और यह सोनापतारी का। महेसा एक–एक अण्डा उठाकर दिखाने लगा।'' वह पक्षियों के संबंध में हर बात का ज्ञान रखता है। जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है, ''आजकल नई–नई चिड़ियां बहुत दिखाई पड़ती हैं, ये चिड़ियां मेहमान हैं... कार्तिक खत्म होते आती हैं और फागुन चैत तक चली जाती हैं।'' पक्षियों का शोर सुनकर उसका मन बहक जाता है। वह एकदम उन्मत होकर उनकी ध्वनि की तरफ खींचा हुआ चला जाता है। वह सोचता है इन पक्षियों को मारने से क्या फायदा है। उसे तो बंद पिंजरे में पक्षियों का पालना भी अच्छा नहीं लगता। वह कितनी–कितनी देर इन पक्षियों को निहारता रहता। जब सैलानी शिकार करते हैं तो एकदम निराश हो जाता है उस पर इसका क्या प्रभाव होता है निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है– ''...फिर एक भयंकर धड़ाके की आवाज़ से वह चौंक उठा। बाईं ओर दलदल से सारसनी की तुरही सी तेज़ चीख आई और गूंजती रही। वह बार–बार चीख रही थी और सारस अकुलाया–सा कुछ ऊपर चक्कर काट रहा था। कभी दलदल में उतर कर चीखता कभी लम्बे–लम्बे डग भरकर इधर–उधर लपकता और वैसी ही तेज आवाज़ में चीखने लगता।'' सारसनी को गोली लगने पर सारस व्याकुल होकर शायद सहायता के लिए पुकारता है। महेश पांडे की आंखों में अश्रु आ जाते हैं जहां तक कि पक्षियों की आवाज़ दिनभर उसे विचलित करती रहती है। ''रात भर उस अकेले घर में उसे बार–बार वही तेज़ आवाज़ सुनाई पड़ती रही।''

उस झील पर सवनहंस पक्षी कार्तिक के अंत में आते हैं और फाल्गुन मास तक फिर वे उड़कर पहाड़ों की ओर चले जाते हैं। महेसा उनके साथ अपना अजीब रिश्ता महसूस करता है उसे लगता है कि शायद ये भी शिकारियों की गोली का शिकार हो जाएंगे। उसे उनकी शिकार में पारबती का अन्त दिखाई देता है। वह मायूसी से सोचते हैं– "फिर सवनहंसों का एक झुंड अपने राग का स्वर मिलाता हुआ झील के दूसरे किनारे पर उतर पड़ा और दो–चार हंस गेहूं और चने के खेत में घुसकर अंकुर खाने लगे। गर्दन उठा–उठाकर वे ऐसे देख रहे थे, जैसे अजनबी हो, और सचमुच वे अजनबी ही है। महेस पांडे का मन न जाने क्यों भर आया! ये सवनहंस अब आए हैं, चार–पांच महीने रहकर पारबती की तरह चले जाएंगे, या फिर किसी शिकार का शिकार हो जाएंगे, जैसे पारबती हो गई। इनके धूसर पंख खून की लकीरों से टंक जाएंगे, और इनके परों को पकड़कर शिकारी ऐसे लटका ले जाएगा जैसे मुर्दा पारबती को अस्पताल के भंगी पलंग से उठाकर उस सूने बरामदे में ले आए थे।"

वह पक्षियों को बचाने के लिए कहानी के अंत में उस नीली झील को ही खरीद लेता है यहां पर सैलानी शिकार खेलने आते है और झील के बाहर बोर्ड लगवा देता है। जिस पर उसने लिखा था, ''यहां शिकार करना मना है। 'और नीचे की पंक्ति थी, 'दस्तखत नीली झील का मालिक, महेस पांडे।" इस प्रकार महेस पांडे द्वारा झील को ही खरीद लेना पक्षियों की सुरक्षा का आधुनिक प्रयास है।

2. अकेलेपन की पीड़ा का वर्णन करना

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में अकेलेपन को कई रूपों में चित्रित किया है। प्रस्तुत कहानी में पंडिताइन की मृत्यु के बाद महेसा अकेलेपन की एक विचित्र पीड़ा से गुज़रता है। अकेला तो वह विवाह से पहले भी था तब तो उसका अकेलापन फक्खड़ था उसे कोई चिंता नहीं थी। पर अब वह विधुर है और पारबती का पैसा भी उसके पास है। पर वह पारबती के बिना अपने आप को अधूरा मानता है। उसके अकेलेपन की पीड़ा को लेखक ने निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रित किया है– ''सूने घर में महेसा आठ–आठ आंसू रोता और उसे पारबती की एक–एक बात याद आती ... चीज़ें देखता तो आँखों में आंसू भर जाते.. . घर का सूनापन अब उसे काटने को दौड़ता।'' घर का अकेलापन वह सहन नहीं कर पाता है। लोगों ने दूसरी शादी का सुझाव दिया पर वह पारबती की याद में ही जीवन जीना चाहता है। उसका सारा–सारा दिन झील के किनारे कटने लगा। उसे अब इस बात की फिक्र भी थी कि पारबती की अन्तिम इच्छा पूरी की जाए। इसके लिए वह क्रूरता से लोगों से पैसे वसूल करता। फिर वह पारबती के बाद इतना अकेला पड़ जाता है कि उसकी मृत्यु के तीन वर्षों बाद ही वह बूढ़ा लगने लग जाता है। कथाकार लिखता है– ''आदमी बूढ़ा नहीं होता, वक्त उसे बूढ़ा बना जाता है।'' वह इस उधेड़बुन में रहता है कि पारबती मंदिर बनाया जाए या पक्षियों को संरक्षण दिया जाए और अंत में जब वह मन्दिर के पैसों से दलदली नीली झील

खरीद लेता है तो लोग कहते हैं इसका दिमाग खराब हो गया है। झील में पक्षियों की सुरक्षा में उसका अकेलापन कटने लगता है।

3. नारी स्वातन्त्र्य पर बल देना

रचनाकार ने इस कहानी के माध्यम से सामाजिक परंपराओं में बंधी हुई स्त्री को उन परंपराओं को त्याग कर स्वयं के लिए निर्णय लेते हुए दर्शाया है। इस कहानी की नायिका पारबती जो विधवा है वह किसी की परवाह किए बिना स्वतन्त्र रूप से यह फैसला करती है कि वह पुनर्विवाह करेगी और वह महेसा से विवाह करती है जो कि आयु में उससे दस वर्ष छोटा है। कहानी के प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट है, "झील तक वह सड़क तो पूरी नहीं बन पाई, पर महेसा गैंग से बिछुड़ गया, विधवा पण्डिताइन ने उससे शादी कर ली थी। लोगों ने तरह–तरह की बातें कहीं....... किसी का कहना था कि जवान देखकर पण्डिताइन ने फांस लिया और कोई कहता था कि महेसा रूपया–पैसा देखक ढरक गया......।" पंडिताइन न केवल विवाह करती है अपितु वह समाज में प्रचलित इस धारणा का भी खंडन करती है कि पुरुष की आयु स्त्री से बड़ी होनी चाहिए। भारतीय समाज में नारी की स्थिति विदेशी स्त्री के मुकाबले बहुत पिछड़ी हुई है। पिछली शताब्दी तक नारी अपने पति के साथ कंधा मिलाकर नहीं चल सकती थी। वह पुरुष से चार कदम पीछे ही रही। इस कहानी में सैलानी जब स्त्री पुरुष इकट्ठे आते हैं तो ग्रामीणों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और पुरुष भी अपनी स्त्री के साथ चलने में अपनी शान समझने लगा। महेसा भी पंडिताइन को साथ चलने के लिए कहता है जैसे कि उदाहरण से पता चलता है–

"राह में साथ चलते महेसा से पारबती पण्डिताइन कहती, तुम्हें तो ज़रा भी सऊर नहीं है! मरद घरवाली के आगे–आगे चलता है, साथ नहीं! लोग क्या कहेंगे? ...... आगे चलो! और सर पर साफा बांधे महेसा कहता, बड़ी सरम आय गई है! सहर में मेम लोग इसी माफिक चलती हैं, बल्कि बांह में हाथ फंसाके!"

इस प्रकार रचनाकार ने इस कहानी में नारी को सशक्त दिखाकर उसे प्रेरित किया है।

निष्कर्षतः इस कहानी की मूल संवेदना पक्षियों के संरक्षण के साथ जुड़ी है। महेस पक्षियों से प्रेम के कारण मंदिर एवं धर्मशाला के लिए एकत्रित किए धन से नीली झील को खरीद लेता है। इसके साथ ही लेखक ग्रामीणों के प्रति भी विशेष श्रद्धा रखता है इसलिए कहानी में ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि गांव में गरीबी का राज था और ग्रामीण अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सूद पर पैसे लेते हैं। पारबती का समय–असमय पैसों से लोगों की सहायता करना इसी ओर संकेत करता है। दूसरी ओर रचनाकार ने पंडिताइन का महेसा के साथ विवाह करवाकर पुनर्विवाह को प्रोत्साहित

किया है। इसके माध्यम से कथाकार ने एक स्वस्थ समाज की ओर भी संकेत किया है। पति–पत्नी के संबंधों की प्रगाढ़ता चित्रित करते हुए महेस पांडे की पत्नी विरह से भी अधिक उसका पक्षियों के लिए समर्पण बताया है।

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कर्ज़दार व्यक्ति की मनोव्यथा का चित्रण कीजिए।

____

____

____

____

2. कमलेश्वर के नारी संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

3. 'खोई हुई दिशाएँ' के संदर्भ में अकेलेपन की पीड़ा पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

4. 'नीली झील' कहानी के आधार पर पक्षी–प्रेम पर नोट लिखें।

____

____

____

____

13.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'खोई हुई दिशाएं' कहानी के आधार पर कस्बे और शहरी जीवन का अंतर स्पष्ट करें।
2. 'संवेदना' शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. 'नीली झील' में महेस पांडे का विवाह किसके साथ होता है?

– – – – –

कृष्णा सोबती का नारी मनोविज्ञान

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 कृष्णा सोबती का नारी – मनोविज्ञान

14.4 कठिन शब्द

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.6 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- कृष्णा सोबती की कहानियों के बारे में जानेंगे।
- नारी मनोविज्ञान के सन्दर्भ में कृष्णा सोबती की कहानियाँ पर चर्चा हुई है।
- कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के मन के विभिन्न द्वन्द्वों का चरित्रांकन किया है।

14.2 प्रस्तावना

कृष्णा सोबती नारी–मन की अत्यंत कुशल चितेरी हैं। कृष्णा सोबती को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने पहली बार कहानी के माध्यम से नारी–मन को पूरी ईमानदारी और यथार्थ में चित्रित किया,

पूरी प्रामाणिकता के साथ। उनसे पूर्व की कहानी में अधिकांशतः नारी को पुरुष के नजरिए से ही चित्रित किया गया है किन्तु 'नयी कहानी' में अन्य बहुत–सी विशिष्टताओं के साथ यह विशेषता भी लक्षित की जा सकती है कि यहाँ प्रथम बार हाड़–माँस की नारी का अवतरण होता है, काल्पनिकता के आदर्शवादी संसार से पूर्णतया मुक्त होकर। कहानी की यह विशेषता मुख्यतः कृष्णा सोबती के कहानी–लेखन से ही अपना स्वरूप प्राप्त करती है।

14.3 कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी–मनोविज्ञान

'बादलों के घेरे' उनकी प्रारंभिक कहानियों का संकलन है किन्तु इसके बाद अभी अपनी बहुचर्चित कहानी 'मित्रो मरजानी' के द्वारा तो उन्होंने पुरुष शासित समाज में नारी के लिए बनायी गयी प्रेम विवाह, यौनेच्छा, आदि से सम्बंधित नैतिक मान्यताओं एवं मर्यादा को तार–तार करके रख दिया और नारी को आजादी से साँस लेने की सामर्थ्य प्रदान की। यह उनका बहुत बड़ा योगदान नारी स्वातंत्र्य और नारी को सामजिक प्रतिष्ठा दिलाने की दृष्टि से है। अपने इस प्रारम्भिक–संग्रह की कई कहानियों में उन्होंने नारी का सूक्ष्म चरित्रांकन कर उसकी विभिन्न मनोदशाओं को लक्षित किया है। इस संदर्भ में हमारा ध्यान सबसे पहले 'दादी अम्मा' कहानी पर जाता है। कहानी परिवार की मालकिन, घर की वयोवृद्धा मेहराँ के गिर्द बुनी गयी है जो उम्र के आखिरी पड़ाव और चला–चलूँ की बेला में अपने अतीत से स्मृति–वन में उलझी अपनी पूरी जिंदगी का जायजा लेती है। वह अपने पाँच बच्चों को उम्र भर की कमाई के रूप में देखती है। मेहरा को वे दिन नहीं भूलते जब वह छः बरस तक भी माँ नहीं बन पायी थी। उस समय उसकी जो मनोदशा थी, उसका बहुत प्रामाणिक चित्रण लेखिका ने किया है। उसे लगा 'पति के प्यार की छाया में लिपटे – लिपटे भी उसमें कुछ व्यर्थ हो गया है, असमर्थ हो गया है।' कभी उसे लगता कि इस घर की देहरी में प्रवेश करते ही उसके ससुर ने जो आशीष उसे फलने–फूलने का दिया था, वह व्यर्थ चला गया है।

जब पहली बार उसे पता चलता है कि वह माँ बनने वाली है तो उसकी उस समय की मनोदशा कृष्णा सोबती बहुत कुशलता से चित्रित करती हैं, "उसने अंधियारें में एक बार सोये हुए पति की ओर देखा था और अपने से लजा कर अपने हाथों से आँखें ढाँप ली थीं। बंद पलकों के अंदर से दो चमकती आँखें थी, दो नन्हें–नन्हें हाथ थे, दो पाँव थे। सुबह उठ कर किसी मीठी शिथिलता में घिरे–घिरे अंगड़ाई ली थी। आज उसका मन भरा है। तन भरा है।" आगे मेहरा अतीत में लौट कर उन स्थितियों पर विचार करती है जिसमें सास–बहू के संबंधों की दो–दो पीढ़ियाँ किस प्रकार एक–दूसरे से अपना व्यवहार हर पीढ़ी में वही रखती हैं जो उनकी सास ने उनके साथ किया था। इस क्रम में यह भूलते हुए कि सास भी कभी बहू थी। इसमें बदला हुआ जमाना और अतीत होता जमाना दोनों पर मेहराँ एक नारी की दृष्टि से विचार करती है।

मेहराँ को इस बात का ऐतराज है कि किस प्रकार उसकी सास बाल–बच्चे वाले पोते पर बिगड़ रही है और पोता उसे उपेक्षा भाव दे रहा है। उसे जो उत्तर सुनने को मिलता है, वह हर पीढ़ी की औरत का उत्तर है, ''क्यों नहीं बहू, अब तो बेटों को कुछ कहने के लिए तुमसे पूछना होगा। यह बेटे तुम्हारे हैं,

घर – बार तुम्हारा है, हुक्म हासिल तुम्हारा है।'' सास और बहू के बीच चला यह संवाद नारी के सनातन स्वभाव का परिचायक बनता है। सास का बेटे को पाल–पोस कर बड़ा करने और अब इसकी एक न सुनने की व्यथा हर माँ की है। जब बेटे और बहू को किसी भी प्रकार अपने वश में नहीं कर पाने की विवशता नारी अपने में पाती है तो कहीं एकमात्र उत्तर उसके पास बचा रह जाता है जो मेहरां की सास उसे सुनाती है, ''बहू, यह सब तुम्हारे सामने आयेगा ! तुमने जो मेरा जीना दूभर कर दिया है, तुम्हारी तीनों बहुएँ भी तुम्हें इसी तरह समझेंगी, क्यों नहीं, जरूर समझेंगी।'' इन्हीं स्मृतियों के वन में भटकती मेहरां अपनी पिछली और अगली पीढ़ियों के व्यवहार पर जायजा लेती हुई नारी–मन का परिचय देती है। दादा–दादी के रूप में मेहरां जिस गति को पहुँचती है और जिस प्रकार एक कोठरी के छोटे से आकार में उसकी दुनिया सिमट जाती है, ''दूर कमरों में बहुओं की मीठी–मीठी दबी–दबी हँसी वैसे ही चलती रहती है। बेटियाँ खुले – खुले खिलखिलाती हैं। बेटों के कदमों की भारी आवाज़ कमरे तक आ कर रह जाती है और दादी अम्मा और पास पड़े दादा में जैसे बीत गए वर्षों की दूरी झूलती रहती है।'' इसी प्रकार कहानी में नारी को आभूषणों के प्रति ललक, परिवार में चलते मीठे–खट्टे झगड़े–तकरार, पति के बिछुड़ जाने पर स्त्री का अपना अकेलापन, भरे–पूरे घर के बीच भी एक तरह की वीरानगी, आदि अनेक स्थितियों को नारी मनोविज्ञान की दृष्टि से चित्रित कर लेखिका ने चरित्र–चित्रण पर अपनी पूरी पकड़ का परिचय दिया है।

'बहनें कहानी में भी नारी–मनोविज्ञान का बहुत कुशल अंकन कृष्णा सोबती ने किया है। बड़ी बहन के लड़के के विवाह में शामिल होने दोनों बहनें–मंझली और छोटी आयी हुई हैं। मंझली के कोई संतान नहीं है, इसको ले कर लेखिका ने नारी की मनःस्थिति को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। अपने बेटे के विवाह की उछाह–भरी स्थिति में बड़ी बहन को देख मंझली अपने यहाँ ऐसा कुछ न हो पाने की स्थिति से क्षण–भर को आहत होती है, फिर कैसे यह बात का रुख दूसरी ओर मोड़ अपने को संभालती है, इस मनःस्थिति का चित्रण बहुत कुशलता से किया गया है। इसका एक पक्ष यह भी है कि किसी प्रकार मंझली तो अपने इस गम को भूलने की कोशिश भी करती है किन्तु बड़ी की सास उसे किसी न किसी प्रसंग में उसके इस जख्म को और हरा कर देती है, भले ही इस सबमें उनकी कुशल–क्षेम जानने का बहाना क्यों न लिपटा हुआ हो। 'बड़ी' सास को इस ओर से बरजती है तो सास को जो अनुभूति होती है, उसका भी चित्रण कुशलता से

किया गया है। सास सोचती है, ''कभी जमाना था, सास की इन आंखों के सामने बड़ी का सिर न उठता था। पर आज–आज बुढ़िया की आँखों में नहीं, बड़ी के चेहरे पर उस अधिकार का बोध है। अब वह स्वयं सास बनने जा रही है, तो किसी से क्यों डरेगी? सास ने पल भर में बहू की आँखों में छाये इस नये अधिकार को देखा।'' (कृष्णा सोबती अपनी नौवें दशक में लिखी कहानी 'ऐ लड़की' में भी इसी बात को रेखांकित करती कहती है कि वह बहू ही क्या जो अपनी सास को अधिकार की इस दौड़ में पछाड़ न दे सके। यही तो जमाने की सनातन रीति है।) 'मंझली' बड़ी बहन के बेटे धर्म को देख कर जिस प्रकार लाड़–चाव करती है और उसका मन रखने के लिए 'बड़ी' जिस प्रकार बेटे को आदेश देती है, वह भी कहानी का बड़ा मार्मिक प्रसंग है। विवाह के नेग–चारों और रीतियों में किस प्रकार बड़ी और सास सहानुभूतिवश मंझली को बार–बार उसकी संतानहीन स्थिति का बोध देती हैं, उसका चित्रण भी बहुत सूक्ष्मता से कर लेखिका ने नारी–मनोविज्ञान का परिचय दिया है, सास कहती है, मंझली, तुम्हारा सुख भगवान से देखा नहीं गया। अब तो यही है बेटी, सुख, किसी बच्चे को पाल–पोस कर बड़ा करो। वह तुम्हें अपना समझे, तुम उसके मुँह की ओर देखो। बेटी, सुख में सब अपने हैं, पर उम्र भर कौन किसका साथ देता है?'' इसी प्रकार किसी तरह हंसते–रोते विवाह संपन्न हो जाता है तो बड़ी बहन सोचने लगती है कि हम तीनों कितनी अलग–अलग हैं – एक ही माँ से जन्म ले कर, एक ही तरह पल–बढ़ कर भी तीनों किस प्रकार एक–दूसरे से अलग हो गयी थीं, ''वे तो जैसे एक ही घर–आंगन से उठ कर अलग–अलग किनारे जा लगी हैं।'' इस प्रकार कहानी बहुत ही मार्मिक रूप में नारी–मन को खोलती है।

'बदली बरस गयी' की कल्याणी के माध्यम से नारी मन की थाह एक और ही रूप में ली गयी है। आश्रम की कठोर व्यवस्था में पल–बढ़ कर भी कल्याणी का मन अपनी स्वतंत्रता के लिए तरसता है। वह अपनी माँ का साध्वी का जीवन देखती है तो अनेक प्रश्न उसे मथते हैं कि माँ क्यों इस प्रकार का कठोर जीवन व्यतीत करती है। क्यों वह अपने घर–बार को छोड़ कर यहाँ पड़ी है किन्तु ''माँ मोह के पानी को छोड़ कर भगवत्–आनंद में मग्न थी। और उसके अतीत के, घर गृहस्थी के सब बंधन, तन–मन के रस सब उससे विलग हो कर एक कल्याणी में मण्डित हो गये थे।'' किन्तु कल्याणी का युवा मन और तन एक स्वतंत्रता की कामना में छटपटाते हैं। आखिर एक दिन वह निर्णय ले लेती है कि यह सब आश्रम का ताम–झाम, नियम–अनुशासन उससे नहीं निभ पायेगा इसलिए वह आश्रम के अधिष्ठाता महाराज से कह देती है, ''महाराज, अब इस आश्रम में मैं नहीं रहूँगी।'' वस्तुतः अब तक जो मानसिक संघर्ष उसमें बदली की तरह घुमड़ रहा था, इस निर्णय से मानो वह बदली के समान बरस कर हल्की हो गयी। उसकी माँ गौरी साध्वी भी सोचती रह जाती है कि साधन और संयम के इन लंबे वर्षों में क्या उसके मन पर भी ऐसी ही

काली बदली घिरती चली आ रही थी।'' कहानी का निष्कर्ष यही है कि आयु से पूर्व लिया संन्यास नारी के लिए कष्टकर अनुभव ही सिद्ध होता है। 'गुलाबजल गंडेरिया' कहानी का संदेश भी यही है कि तन की उपेक्षा मन को शांति नहीं दे सकती। इसीलिए धन्नो अपने अंतिम समय तक बिहारी सेठ के लड़के को भूल नहीं पाती है।

'कुछ नहीं–कोई नहीं' नारी मन को अभिव्यक्ति देने वाली ऐसी समर्थ कहानी है जो आज भी अपना सानी नहीं रखती। इस कहानी में नारी की व्यथा को इस कोण से उठाया गया है कि पति–परित्यकता नारी भले ही दूसरे की प्रेमिका और उसके घर–गृहस्थी की मालकिन बन बैठी किन्तु प्रेमी के बच्चे उसे कुछ नहीं समझते, भले ही वह उन्हें कितना ही प्यार सम्मान दे। 1955 ई० में लिखी गयी यह कहानी आज भी हमें आकर्षण में बाँधती है, इस कथ्य पर बहुत कम कहानियाँ इस कोण से आयी हैं। अपने प्रेमी आनंद को गंभीर रोग ग्रस्त अवस्था में अपने बच्चों से मिलने की झलक को देख, शिवा को अहसास होता है कि इस गृहस्थी में उसकी क्या स्थिति है ? आनंद जिन बच्चों से मिलना चाहते हैं, वे उसके अपने नहीं हैं, केवल आनंद के हैं–यह बोध ही उसे कितना सालता और छीलता है। बेटा विन्नी (विनय) और बेटी मीनू अपने पिता की मृत्यु के बाद उससे जो उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते हैं, किसी भी निर्णय में उसे शामिल नहीं करना चाहते, इससे शिवा कट कर रह जाती है। वह घर छोड़ने का निर्णय लेती है किन्तु जाने से पहले अपने मन को अपने पूर्व पति रूप से पत्र के माध्यम से खोलती है। पत्र ही कहानी का वितान खड़ा कर यह बताता है कि किस प्रकार वह इतने अच्छे पति के होते हुए आनंद की मित्रता में पड़ गयी। अपनी करनी और अनहोनी सी घटना को स्मरण में ला वह अपनी मनोदशा के पल–पल को खोलती है। आज उसे अपना पहला घर और पति छोड़ने का दुख भीतर ही भीतर कचोट रहा है। उसे अपने किए पर पछतावा है, ''अनहोनी पर पछता रही हूँ, पछताती हूँ, अपने उन दुर्भाग्य के क्षणों को जिनमें तन को ढीला छोड़ बहुत–कुछ टूक–टूक कर दिया। रूप, जान गयी हूँ, जो प्रियजनों का, अपनों का परदा उघाड़ अपने मन की ओट ढूंढ लेता है, उसकी ओट ओट नहीं होती। .... होता तो आनंद की बिछुरती आँखें एक संग जिये मेरे और अपने उस तन–मन के मोह को तुच्छ करके न मानती।'' जब आनंद 'अपने बच्चों को देखना चाहता हूँ', की बात रखते हैं तो शिवा का ध्यान आता है कि वह किस प्रकार अपने बच्चों के लिए घर छोड़ते हुए कलपी थी, ''रूप, तुमसे अलग हो जाने के बाद उस क्षण पहली बार अपने और तुम्हारे बच्चों के लिए मैं दर्द भर–भर कर रोयी थी, रोयी थी अपनी गोद के लिए जिसमें माँ की कोई प्रतिष्ठा बची नहीं रह गयी।'' शिवा की व्यथा का दूसरा कोण यह है कि जब उसने तुम्हारे संग घर बसा ही लिया था तो इस निघर में मैं क्या लेने आ गयी थी।'' शिवा के इस कथन में बेचारगी भी है, वह यह सोच–सोच कर परेशान है कि एक दिन उसे अपनी यह मनोदशा अपने पूर्व पति रूप को ही बतानी पड़ेगी।

मृत्यु से पूर्व आनंद के बुलवाने पर उसके दोनों बच्चे विनय और मीनू आये हैं किन्तु वे कहीं भी अपने घर में शिवा की उपस्थिति को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। वे पग–पग पर उसे एक उपेक्षा भाव देते हैं। दोनों बच्चों को जब वह दिलासा देती है और अपनत्व दिखाती है तो वे और दूर हो जाते हैं। पिता और उन दोनों बच्चों के बीच उसे अपनी उपस्थिति उस डॉक्टर की लगती है जो सिर्फ मरीज को देखने आया है। उससे उसका कोई रिश्ता–नाता नहीं होता। इसी मनःस्थिति में उसे वे सब स्थितियाँ याद आती हैं जिनमें वह अपना घर और पति छोड़ आयी थी। प्रेमी आनंद की बांहों में शिवा को देख कर रूप की स्वाभाविक प्रतिक्रिया, राम को सोते समय रूप के साथ बिस्तर पर होने के बावजूद आनंद को पुकारता तन–मन, इन सबका बहुत ही मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण कहानीकार ने किया है। जब अंतिम बार वह तालियों का गुच्छा घर सेवक बूढ़े ठाकुर को थमाती है तो यह प्रश्न उसे अव्यवस्थित कर देता है, ''इस घर की संभाल ठाकुर को सौंपती हूँ, पर अपनी संभाल.....?'' आनंद के साथ होटल में बितायी पहली रात और उसके बाद बितायी कितनी ही रातों की यह अनुभूति एक नारी–कलम ही दे सकती थी, उस रात के बाद बहुत–सी रातें आती चली गयीं। आती चलीं गयी उस दिन तक, जब एक–एक करके मैंने जाना कि अपने तन पर आगे तो है ! एक ही जड़ सौ पात खिलाती है। लड़का बड़ा होगा, घर–बाहर भरेंगे, भाग लगेंगे।'' उसे संतोष है कि बड़ा हो कर सरदारा उसकी हर बात मानता है। अमरो किसी से भी यह सुनने को तैयार नहीं कि उसका लड़का किसी गलत सोहबत में है या कोई गलत काम करता है। उसकी कहनी और व्यवहार दोनों में ही मातृ–हृदय की स्वाभाविक वृत्ति का चित्रण है कि उसे अपने पुत्र में कुछ भी तो बुरा नहीं दिखता। सिपाही और थानेदार को जो वह अपने तेवर दिखाती है, उसमें भी उसके नारी–सुलभ स्वभाव का ही परिचय मिलता है। अमरो की बोली–बानी में भी उसके चरित्र की स्वाभाविकता झलकती है।

कृष्णा सोबती की प्रसिद्ध कहानी 'सिक्का बदल गया' का मुख्य कथ्य विभाजन के समय की त्रासदी को चित्रित करना है किन्तु यहाँ भी शाहनी का चरित्रांकन जिस रूप में हुआ है, वह एक प्रतिष्ठित और संभ्रांत जमींदार के घर की मालकिन के अनुरूप है। उसके हृदय में एक दयालु और ममतामयी नारी बैठी है जो हमेशा गैरों से, घर के नौकर–चाकरों से, स्नेहपगा व्यवहार करती है। कृष्णा सोबती की अन्य सभी कहानियों, यथा 'आजादी शम्मोजान की', 'एक दिन', 'नफीसा', 'दो राहें आदि में भी नारी–मनोविज्ञान का अत्यंत यथार्थ चित्रण हुआ है। वस्तुतः कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी–मनोविज्ञान का अत्यंत सूक्ष्म और प्रामाणिक अंकन हुआ है।

14.4 कठिन शब्द

(1) चरित्रांकन

(2) विभाजन

(3) मनोविज्ञान

(4) स्वाभाविकता

(5) प्रामाणिक

(6) अंकन

(7) मार्मिकता

(8) अधिष्ठाता

(9) प्रतिक्रिया

(10) अनुभूति

14.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर बात हुई है, स्पष्ट करें।

2. 'सिक्का बदल गया' कहानी में यूं तो विभाजन की त्रासदी का चित्रण हुआ है परन्तु लेखिका अपने नारी पात्रों के माध्यम से नारी मनोविज्ञान का अत्यन्त यथार्थ चित्रण करती है, युक्ति – युक्त उत्तर दीजिए।

3. 'बदली बरस गयी' और 'कुछ नहीं – कोई नहीं' कहानियाँ नारी मन की विभिन्न परतों को खोलती हैं, इस सन्दर्भ में चर्चा कीजिए।

14.6 पठनीय पुस्तकें

1. बादलों के घेरे – कृष्णा सोबती
2. नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति – डॉ० देवी शंकर अवस्थी
3. हिन्दी कहानी में जैविक मूल्य – डॉ० रमेश चन्द्र लवानिया
4. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
5. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ – डॉ० उर्मिला गुप्ता
6. साठोत्तर महिला कहानीकार – डॉ० मधु संधु
7. वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन – डॉ० साधना अग्रवाल
8. हिन्दी कहानी आठवां दशक – सरबजीत
9. नयी कहानी विघटन और विसंगति – डॉ० रामकली सराफ
10. हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ – सुरेन्द्र चौधरी
11. समकालीन हिन्दी कहानी में पीढ़ियों का अन्तराल – डॉ0 सरजू प्रसाद मिश्र
12. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी – विकास और मूल्यांकन – डॉ० सोमनाथ कौल

– – – – –

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

15.0 रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्द

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.7 पठनीय पुस्तकें

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- कृष्णा सोबती की कहानियों की मूल संवेदना क्या है।
- कृष्णा सोबती की कहानियों में मानवीय सम्बन्धों के बदलते स्वरूप का चित्रण हुआ है।
- देश विभाजन की त्रासद स्थितियों में मानवीय परिवेश और उसकी पीड़ा से अवगत होंगे।

15.2 प्रस्तावना

संवेदना शब्द 'सम्' उपसर्ग 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है– समान भाव से, बराबरी से

जानना या महसूस किया जाना। संवेदना मूलतः मनोविज्ञान का शब्द है इसकी अनुभूति आन्तरिक होती है। यह ज्ञान–प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है, जिसमें स्वयं और पर दोनों की समान अनुभूति अर्थात् दूसरे के सुख में सुख तथा दुःख में दुःख का अनुभव करना ही संवेदना है। जो व्यक्ति जितना सहृदय होगा, उसमें संवेदना का जागरण उतनी ही प्रबलता से होगा। यह मानव की मानवीयता अथवा मनुष्यता को जागृत और परिष्कृत करती है।

रचना की मूल संवेदना सहृदय पाठक को रचनाकार की अभिव्यक्ति के मूल उद्देश्य से तदाकार करती है और वह पात्र, स्थिति तथा घटना के प्रति संवेदित होता है। वास्तव में संवेदना ऐसा भाव अथवा हृदय–संवाद है जिसमें हम रचनाकार के भाव से जुड़ते, भाँपते अथवा परखते हैं।

15.3 निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

'बादलों के घेरे' कृष्णा सोबती द्वारा रचित कहानी संग्रह 1980 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल चौबीस कहानियाँ हैं और सभी कहानियाँ सुख–दुःख के भावों से ऐसी ओत–प्रोत हैं कि पाठक की संवेदना कहीं न कहीं रचनाकार के साथ जाकर तदाकार हो जाती हैं यही इस रचना का वैशिष्ट्य भी हैं और उद्देश्य भी। पाठ्यक्रम में निम्नलिखित कहानियाँ हैं जिनकी मूल संवेदना पर आगे विचार किया जा रहा है–

1. बदली बरस गयी
2. सिक्का बदल गया

बदली बरस गई

'बदली बरस गई' कहानी में मुख्य पात्र कल्याणी है। कल्याणी की माँ गौरी एक विधवा औरत है और उसके पति की मृत्यु के बाद सास के कटु व्यवहार से तंग आकर गौरी साध्वी बन जाती है। अतः कल्याणी को लेकर आश्रम में महाराज की शरण में चली जाती है जब गौरी आश्रम में जाती है। तो उसके लम्बे बाल काट दिए जाते हैं और पहनने को एक धोती दी जाती है। कल्याणी अभी बालावस्था में ही थी जब उसकी माँ उसे आश्रम में ले आई लेकिन जैसे–जैसे कल्याणी की उम्र बढ़ती जाती है शारीरिक विकास के साथ–साथ उसके मन की जिज्ञासाएँ बढ़ने लगती हैं कल्याणी ने जो बचपन में थोड़ी–बहुत बाहर की दुनिया देखी थी उसके प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है और वह एक दिन अपनी साध्वी माँ से कहती है कि उसे आश्रम में नहीं रहना तो साध्वी उसे बाहर जाने की आज्ञा न देकर महाराज के कक्ष की सफाई का कार्य सौंप देती है, अतः उपवास और भजन द्वारा अपने मन को शान्त करने का उपाए बताती है। इन कार्यों को करते हुए भी जब उसका मन नहीं लगता वह माँ से कहती है–

"साध्वी माँ, आश्रम में मन नहीं लगता

''उपवास करो।''

क्या होगा उपवास कर

''शान्ति मिलेगी।''

''नहीं, साध्वी माँ'' कल्याणी ने प्रतिवाद करना चाहा।

''इसे भजन में लगाओ।"

कल्याणी पर गौरी साध्वी के उपदेश का कोई प्रभाव नहीं होता और वह समय पाकर महाराज के समक्ष अपनी बात रखती है। महाराज कल्याणी की बातों को शान्ति से सुनते हैं और उसे आश्रम से जाने की अनुमति दे देते हैं। उस समय कल्याणी अपनी माँ से कहती है कि अब वह अपना घर बसाएगी। प्रस्तुत कहानी की मूल संवेदना को हम निम्नलिखित शीर्षकों में देख सकते हैं–

1. विधवा के प्रति परिवारजनों का उपेक्षणीय व्यवहार–

गौरी के विधवा हो जाने पर उसका परिवार उसकी इच्छाओं एवं उसके अस्तित्व का मान न रखकर उसकी उपेक्षा करता है। उसकी सास एवं जेठानी उसे कटु वचनों से प्रताड़ित करती है। उनके उलाहनों से तंग आकर वह घर छोड़ने का ही निर्णय कर लेती है और अपने घर–परिवार से कटकर साध्वी बन जाती है। उसकी सास बहू को तो जाने ही देती है पोती को संभालने का भी कोई उत्साह नहीं दिखाती।

2. बाल मनःस्थिति का चित्रण–

इस कहानी के माध्यम से कृष्णा सोबती ने उस साधारण बाल मनोविज्ञान का वर्णन किया है जिन्हें बाल्यावस्था में ही सन्यास ग्रहण करने के लिए बाध्य किया जाता है। लेकिन जो बालक समाज के नीति–नियमों, रीति–रिवाजों को ही नहीं जानता वह स्वयं को किन वासनाओं और इच्छाओं से निर्लिप्त करेगा। इसलिए होना ये चाहिए कि बालक को सही शिक्षा देते हुए उसे समाज के सभी आचारों–विचारों से गुजरने देना चाहिए। उसके पश्चात् यदि वह सन्यास लेना चाहे तो यह उसका स्वयं का निर्णय होना चाहिए। आश्रम के महाराज इस बात से परिचित थे इसीलिए वह कल्याणी को आश्रम से बाहर जाने की अनुमति दे देते हैं। इस कहानी के माध्यम से कृष्णा सोबती यह संदेश देने का प्रयास कर रही है कि बचपन में बच्चों को माता–पिता के उचित संरक्षण की आवश्कता होती है लेकिन युवावस्था में उन्हें निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।

3. बदलते हुए सामाजिक संदर्भ/संबंध–

इस कहानी के माध्यम से कृष्णा सोबती ने परिवर्तित हो रहे सामाजिक मूल्यों की ओर भी ध्यानाकर्षण किया है। हमारे समाज में पहले नारी रक्षा का कार्यभार पूरा समाज उठाता था जबकि इस कथा में तो परिवार भी इस दायित्व से मुक्ति की इच्छा करता है इसलिए घर की बहू को परिवार का परित्याग करना पड़ता है। उसके चले जाने के बाद भी उसके परिवार वाले यह जानने का प्रयास नहीं करते कि वह कहाँ है और किस स्थिति में है?

4. आश्रम व्यवस्था का चित्रण करना–

इस कथा के द्वारा रचनाकार ने आधुनिक युगीन आश्रम प्रणाली पर भी प्रकाश डाला है। समाज का हिस्सा होते हुए भी इनका एक अपना समाज है। गौरी जैसे परित्यक्त एवं दुखी लोगों के लिए यह आवास का काम देते हैं। आश्रमों में रहने वाले साधुओं के ठाट–बाट की ओर भी लेखिका ने संकेत किए हैं कि किस प्रकार उनके भक्त उनकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखते हैं।

5. नारी स्वातन्त्र्य–

वास्तव में इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने नारी स्वातन्त्र्य पर प्रकाश डाला है पहले गौरी ने विधवा हो जाने पर स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लिया और उसने आश्रम में जीवन यापन का चयन किया और दूसरी ओर 'उसकी पुत्री कल्याणी ने इसी नारी स्वातन्त्र्य का प्रयोग करते हुए पुनः पारिवारिक जीवन जीने का चयन किया है। अतः दोनों का साहस सराहनीय एवं नारी चेतना का उदाहरण है।

इस प्रकार नारी स्वातंत्र्य की समर्थक यह कहानी गौरी और कल्याणी के निर्णयों से परिचित करवाती हुई सामाजिक–दायित्व–मुक्ति का घोषणा पत्र भी है।

सिक्का बदल गया

'सिक्का बदल गया' कहानी कृष्णा सोबती द्वारा रचित 'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह की एक उत्कृष्ट रचना है। जुलाई, 1948 में लिखी गई इस कहानी में 1947 के देश–विभाजन के मार्मिक प्रसंगों एवं देश विभाजन की मानवीय पीड़ा का गहराई से चित्रण हुआ है। विभाजन की त्रासदी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालना ही इस कहानी के मूल संवेदित स्वर हैं।

1. **भारत–पाक विभाजन की त्रासदी का वर्णन–** विभाजन के समय अपना देश, अपना घर–बार छोड़ने की पीड़ा से गुज़रते मानवीय छटपटाहट की अभिव्यक्ति हुई है। लेखिका ने 65–70 वर्ष की शाहनी को केन्द्र में रखकर मानवीय स्तर पर अत्यन्त हृदय विदारक घटना को आधार बनाया है।

शाहनी कहानी की नायिका अविभाजित कश्मीर के समीप चिनाब नदी के किनारे बसे गाँव में बड़ी सी हवेली में अकेली रहती है। उसका बेटा कहीं बाहर है और पति की मृत्यु हो चुकी है। वह सैंकड़ों मीलों तक फैले खेतों की मालकिन है। कहानी का आरंभ तनाव की उस परिस्थिति से होता है जिसे शाहनी दरिया के तट पर महसूस करती है जहां पर वो पिछले पचास वर्षों से स्नान करती आ रही है। उसे इस बात की खबर मिल चुकी है कि विभाजन के इच्छुक आतताइयों ने रात को उसके पड़ोसी गांव (कल्लूवाल) पर धावा बोला है। वह मंत्रणा के लिए शेरे और हुसैना को बुलाती है। शेरे का पालन–पोषण उसकी मां की मृत्यु के पश्चात् शाहनी की हवेली में ही हुआ है पर वह वर्ग गत भेदभाव रखता है। शाहनी शेरे से जब कहती है कि ''आज शाह जी होते तो कुछ बीच बचाव करते।'' लेकिन अंतः वैमनस्य के कारण वह ऐसा नहीं सोच पाता क्योंकि उसे तो विभाजन करवाना ही है इसलिए वह सोचता है– ''आज शाह जी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह होके रहेगा– क्यों न हो? प्रतिहिंसा की आग उसकी आँखों में उतर आई क्योंकि वह सोचता है कि हमारे ही भाई–बहनों से सूद लेकर शाह जी सोने की बोरियां तोला करते थे। पर शाहनी के उस पर एहसान हैं इसलिए वह शाहनी को सचेत करना चाहते हुए भी प्रतिहिंसा के भाव से जलता है। पास के जलालपुर गाँव में आग लगी है शेरा को इसकी पूर्व सूचना थी कि शाहनी के सारे नाते रिश्तेदार भी वहीं पर हैं। इस प्रकार शाहनी के माध्यम से लेखिका ने विभाजन के मर्मान्तक दर्द को व्यक्त किया है।

2. बदलते मानवीय संबंधों का चित्रण–

'सिक्का बदल गया' कहानी देश विभाजन की त्रासदी की मुँह बोलती तस्वीर है। विभाजन पूर्व हिन्दू–मुस्लिम दोनों का प्रेम–सौहार्द इतना अधिक था कि लगता ही नहीं था कि यह सब इस प्रकार बदल जाएगा। पर इस राजनीतिक घटना ने सब कुछ अलग–थलग कर दिया। शाहनी जो सारे गाँव को अपना मानती है। शेरे को उसने पाल–पोस कर बड़ा किया है अतः वह उसके बेटे तुल्य है। आज वह भी विभाजन की इस आग में हाथ सेंक कर शाहनी के प्रति द्वेष भाव रखता है। ''**सारा गाँव है उसकी असामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है।**'' शाहनी के प्रस्थान के समय सभी बड़ी–बूढ़ियाँ चाहे रो पड़ती हैं पर इस प्रकार एक पैंसठ–सत्तर वर्ष की विधवा वृद्धा को उसके घर–बार से निकाल कर अलग कर देना हिंदू–मुस्लिम के भेदभाव को छोड़ मानवीय संबंधों की एक करूण त्रासदी है। दाऊद खां के शब्द तो उस समय शाहनी द्वारा किए गये सारे उपकारों की कृतघ्नता को एक ही पंक्ति में कह देते हैं– ''**शाहनी, मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते! वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है।**''

दूसरी ओर लेखिका ने इस ओर भी संकेत किया है कि विभाजन के समय दिल दहला देने वाली घटनाओं और नृशंस हत्याओं के बाद भी कहीं न कहीं मानवीयता के दर्शन हो जाते हैं।

3. साम्प्रदायिकता के दंश का चित्रण–

प्रस्तुत कहानी में विभाजन के समय सांप्रदायिक दंगों को आधार बनाकर परस्पर हत्याओं और लूटपाट तथा आगजनी की घटनाओं का उल्लेख भी किया गया है। सांप्रदायिकता के आधार पर घटने वाली घटनाओं का प्रभाव न केवल सम्प्रदाय विशेष अपितु सम्पूर्ण मानवता पर पड़ता है। यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि जब शाहनी को मालूम है कि कल रात गाँव में पड़ोसी गाँव कुल्लूवाल के लोग आए थे और कुछ लूटपाट की योजना बनी थी, जिसमें शेरा भी शामिल था। इसी सांप्रदायिकता के कारण शेरा तीस चालीस हत्याएं कर चुका है। यहां तक कि इसी भाव से ग्रसित वह शाहनी की हत्या की योजना भी बनाता है। पर शाहनी के ममत्व को याद कर वह विचलित हो जाता है।

4. अलगाव की यंत्रणा का चित्रण–

अलगाव इस कहानी के केन्द्र में है। विभाजन की त्रासदी मानवों में अलगाव पैदा करती है। कोई भी व्यक्ति जो अपनी पुश्तैनी परंपरा के साथ जुड़ा है उसे अचानक वहां से अलग कर अपरिचित जगह में भेजने के लिए विवश करना अपने–आप में एक त्रासदी है। शाहनी को यह अलगाव न केवल सांस्कृतिक स्तर पर ही उखाड़ता है बल्कि उसके जीवन के प्रमुख आर्थिक आधार को भी उससे छीन लेता है। इसलिए चलते समय जब दाऊद उसे कुछ संपत्ति साथ रखने की सलाह देता है तो वह कहती है– ''नहीं बच्चा, मुझे इस घर से'' शाहनी का गला रूँध गया– ''नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी। सोना चाँदी। बच्चा सब तुम लोगों के लिए है।'' अलगाव का शिकार बनी शाहनी पचास वर्ष के अत्यन्त मानवीय लगाव भरे जीवन को कुछ घंटों में ही बर्बर मानसिक हिंसा से भयंकर पीड़ा के साथ मोह मुक्त होकर झेलती है।

वास्तव में देश विभाजन की त्रासद स्थितियों के मानवीय परिवेश और उसकी पीड़ा का चित्रण करना ही इस कहानी का मूल है।

15.4 सारांश

अतः स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित कथाकार कृष्णा सोबती नारी मन की अति कुशल चितेरी है। अपनी कहानियों में उन्होंने पात्रों के माध्यम से नारी जीवन को पूरी ईमानदारी और उनका यथार्थ रूप चित्रित किया है। 1980 में प्रकाशित कृष्णा सोबती का कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह में प्रकाशित कहानियों को पढ़ते हुए पाठक की संवेदना कहीं न कहीं रचनाकार के साथ जाकर तादात्मय स्थापित करती है। ये कहानियाँ मानव जीवन के सुख–दुख से ओत–प्रोत हैं।

15.5 कठिन शब्द

1. त्रासद
2. पीड़ा
3. संपत्ति
4. सांस्कृतिक
5. मानवीय सम्बन्ध
6. मर्मान्तक
7. साम्प्रदायिकता
8. दंश
9. यंत्रणा
10. त्रासदी
11. वैमनस्य

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

15.7 पठनीय पुस्तकें

1. बादलों के घेरे – कृष्णा सोबती
2. नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति – डॉ० देवी शंकर अवस्थी

3. हिन्दी कहानी में जैविक मूल्य – डॉ० रमेश चन्द्र लवानिया
4. हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
5. स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ – डॉ० उर्मिला गुप्ता
6. साठोत्तर महिला कहानीकार – डॉ० मधु संधु
7. वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन – डॉ० साधना अग्रवाल
8. हिन्दी कहानी आठवां दशक – सरबजीत
9. नयी कहानी विघटन और विसंगति – डॉ० रामकली सराफ
10. हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ – सुरेन्द्र चौधरी
11. समकालीन हिन्दी कहानी में पीढ़ियों का अन्तराल – डॉ० सरजू प्रसाद मिश्र
12. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी – विकास और मूल्यांकन – डॉ० सोमनाथ कौल

– – – – –

M.A. HINDI	Lesson No. 16
Course Code : HIN-302	Semester-III

निर्धारित कहानियों का शिल्प एवं चरित्र चित्रण

16.0 रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 कहानियों का शिल्प

16.4 चरित्र चित्रण

16.5 सारांश

16.6 कठिन शब्द

16.7 अध्यासार्थ प्रश्न

16.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- कहानियों में पात्रों के माध्यम से सजीवता स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति हुई है इससे अवगत होंगे।
- विभाजन की त्रासदी में पिसती नारी की पीड़ा को जानेंगे।

16.2 प्रस्तावना

कृष्णा सोबती नयी कहानी–दौर की एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं जिनकी कथा–शैली ने 'नयी

कहानी' को एक नयी रंगत और एक खुलापन दिया। नारी हृदय को पूर्ण उन्मुक्त भाव से प्रकट करने में उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा और महिला लेखन को एक नया मुहावरा प्रदान किया। किसी भी विधा में उसकी विषय–वस्तु उसके शिल्प और शैली का परिचालन करती हैं। वस्तुतः विषय वस्तु और शिल्प को बहुत दूर तक अलगाया भी नहीं जा सकता, केवल अध्ययन की दृष्टि से या कहें छात्रों को समझाने की दृष्टि से दोनों का पृथक्–पृथक् अध्ययन अपेक्षित है। इस विश्लेषण में शैली के साथ–साथ कहानियों के कथ्य को भी ध्यान में रखना अवश्यक होगा।

कहानी की कथावस्तु किसी भी प्रकार की क्यों न हो, वह किसी न किसी पात्र पर आधारित रहती है। कहानी में पात्रों की संख्या जितनी कम हो उतनी ही अच्छी मानी जाती है। कहानी के पात्रों में सजीवता, स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति, मूलभाव तथा घटना के प्रति अनुकूलता रहनी चाहिए।

16.3 कहानियों का शिल्प

कृष्णा सोबती की कहानियों में एक रोमानी भाव–बोध 'बादलों के घेरे' की कहानियों में सर्वत्र दिखाई देता है। नयी कहानी में अनेक कहानीकारों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। कृष्णा सोबती अपनी इसी प्रवृत्ति से परिचलित अपनी कहानियों का प्रारंभ वातावरण–चित्रण से करती हैं। प्रकृति का चित्रण बड़ी रोमानी शैली में प्रायः सभी कहानियों के प्रारंभ में देखा जा सकता है। 'बादलों के घेरे' कहानी में भुवालों सेनेटोरियम का वातावरण चित्रित करते हुए ये शब्द देखिए–"सामने पहाड़ के रूखे हरियाले में रामगढ़ जाती हुई पगडंडी मेरी बाँह पर उभरी लम्बी नस की तरह चमकती है। पहाड़ी हवाएँ मेरी उखड़ी–उखड़ी साँस की तरह कभी तेज़, कभी हौले इस खिड़की से टकराती है।" 'दादी अम्मा' कहानी के प्रांरभ का प्रकृति–चित्रण और भी अधिक रोमानी शैली का है। बहार फिर आ गयी। बसन्त की हल्की हवाएं पतझड़ के पीले ओठों को चुपके से चूम गयीं। जाड़े के सिकुड़े–सिकुड़े पंख फड़फड़ाये और सर्दी दूर हो गयी। आँगन मे पीपल के पेड़ पर नये पात खिल–खिल आये।" 'अभी उसी दिन ही तो' कहानी का प्रांरभ भी ऐसा ही है, जाड़े में डूबी–डूबी अंधियारी साँस ! आकाश के परदे पर बादलों के बनते–मिटते चित्र फैल रहे थे–ठिठुरती हवाएँ जा–जाकर लौटती आ रही थीं, आँगन का पुराना पीपल का पेड़ खड़–खड़ा डोल रहा था।" 'दोहरी साँझ' कहानी का प्रांरभ यह है, "साँझ दोहरी होने को आयी। सूरज की डूबती–डूबती छाया ऊँचे गुम्बद पर घिर आयी। खण्डरों में खड़े पके पत्तों के पेड़ एक से खड़खड़ाते और धरती पर बिखर गये। चबूतरे पर हवा थिरकती रही। जंगले में पथरीली जाली जैसे अपनी ही कारीगरी में जकड़ी रही। मिट्टी और साँझ की छाया से लिपट–लिपट साँझ की उदासी सिबुकती रही।" इस प्रकार कुछ अन्य कहानियों में प्रकृति का चित्रण इसी रूप में देखा जा सकता है। इन चित्रों में कभी मानवीयकरण कर प्रकृति को पूर्ण जीवंत किया

गया है, कहीं विरोधाभास का प्रयेग कर पात्र की मनः स्थिति का स्पष्टीकरण है तो कहीं यह प्रकृति उपमान बन जाती है। प्रकृति के इन सूक्ष्म विवरणों में एक प्रकार की काव्यात्मक संवेदना सर्वत्र विद्यमान रहती है।

कथानक के चयन में कृष्णा सोबती ने सर्वत्र एक ताज़गी का परिचय दिया है। 'नयी कहानी' में 'मित्रों मरजानी' जैसी 'बोल्ड' रचना दे कर उन्होंने पंजाब की मिट्टी से एक ऐसा जीवन पात्र हिन्दी कथा में दिया जो अपना सानी नहीं रखता। नारी के लिए बनाए गए पृथक् नैतिक मापदण्डों, मूल्यों और मान्यताओं को खुल कर चुनौती देती यह कहानी हिन्दी कहानी में नारी को पहली बार खुल कर साँस लेने की इजाज़त देती है। वह छुई–मुई भी नहीं है कि पुरुषों के साये से भी घबराए। यह नयी स्त्री–चेतना उनकी कहानियों में एक खास खूबी है। नारी को उसकी स्वतंत्रता और संपन्न व्यक्तित्व का बोध उनकी अधिकांश कहानियाँ देती है। नारी की यह 'बोल्डनेस' प्रेम, यौन और व्यक्तिगत सम्बन्धों को ले कर ही नहीं है, जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उनकी यह दबंगई स्पष्टतः लक्षित की जा सकती है। 'सिक्का बदल गया' की शाहनी पुरखों की मान–मर्यादा की रक्षक है इसीलिए वह इतना निर्भीक और दबंग निर्णय अपने पुरखों की हवेली छोड़ते हुए लेती है कि वह अपनी रियासत के सामने किसी प्रकार भी छोटी न पड़े" जी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है, उनके सामने वह छोटी न होगी।" 'कुछ नहीं–कोई नहीं' की शिवा के सामने यही संकट है कि वह अपने प्रेमी आनंद के परिवार में उनके बच्चों के सामने उपेक्षिता और छोटी बन कर नहीं रहना चाहती, इस उम्र में वह घर छोड़ने का विकल्प चुनती है। वह पुरुष की उस मानसिकता को चुनौती देती है जिसके तहत वह "एक घर से निकाल तुम दूसरे घर का अधिकार नहीं देना चाहते।" वस्तुतः कृष्णा सोबती की इन कहानियों में एक नये किस्म की आधुनिक नारी अपना स्वरूप ग्रहण कर रही है।

कृष्णा सोबती की कहानियों में अतीत और व्यतीत होती नारी की व्यथा भी कथ्य को एक नया कोण देती है। उनकी कई कहानियों में वह नारी आयी है जो बहू से सास और सास से दादी मां की भूमिका में जाते–जाते किस प्रकार पीढ़ियों के अतंराल का अनुभव करती है। 'दादी अम्मा' पीढ़ियों के इस अतंराल को चित्रित करती एक सशक्त कहानी है। मेहराँ को वे दिन नहीं भूलते जब वह ब्याह के बाद इस घर में आयी थी। किस प्रकार उसे देर में संतान हुई, किस प्रकार वह बेटे बहुओं वाली हुई और फिर कैसे अपनी वृद्धावस्था को पहुँची। 'बहनें' कहानी में भी सास की पीड़ा है कि बड़ी ने कैसे–कैसे उसके सारे अधिकार अपने बना लिए हैं। इन कहानियों में स्मृति–स्मृतियों का प्रयोग कृष्णा सोबती कुशलता से करके बार–बार अपने पात्रों को अतीत में लौटा लाती है। सास का पद संकलन किसी भी बहू के लिए बड़ी उपलब्धि है, सास को उसके गौरवपूर्ण आसन से खारिज करने का सनातन सिलसिला कृष्णा सोबती की कहानियों में कुशलता से अभिव्यंजित हुआ है," नाते की बहनों ने मन–माँगे उपहार लिये, बहू को गहने–कपड़े भेंट दिये

अैर बड़ी ने इतने वर्ष सास की अधिकारपूर्ण छाया के नीचे रह कर आज सास का पद संभाल लिया"–(बहनें)! ऐसे चित्रण उनकी कहानियों की खास शैली हैं, जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, वे इस पद पर बहू के अधिकार का कथन अवश्य करती हैं। 'ऐ लड़की' कहानी तक में उनकी प्रवृत्ति देखी जा सकती है, "वह औरत क्या जो बेटे की माँ को न पछाड़ सके।" "घरवाले के तन–मन पर मिल्कियत की मोहर लगाती है औरत। उसे लगानी पड़ती है। नहीं तो उसका अपना सुख–चैन भंग" (ऐ लड़की) इस प्रकार यह जीवन–अनुभव उनकी कहानियों की एक शैली का रूप ले लेता है।

कहानी का आकार–बड़ा या छोटा कभी कृष्णा सोबती के यहाँ बाधक नहीं रहा। उन्होंने खूब लंबी कहानियाँ भी लिखीं जिन्हें लोगों ने भ्रमवश लघु उपन्यास की संज्ञा भी दी यथा–'मित्रो मरजानी' और 'ऐ लड़की' और कभी 'गुलाब जल गंडेरिया' जैसी छोटे आकार वाली या 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा जैसी मात्र बामुश्किल डेढ़ पृष्ठ की बिल्कुल छोटी–सी कहानी भी उनके यहाँ है। वस्तुतः वे कहानी में आकार की अपेक्षा तीव्र प्रभावान्विति पर बल देती हैं।

कृष्णा सोबती अपनी कहानियों में पात्रों की आकृति, वेश–भूषा, रहन–सहन का भी बहुत जीवंत चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। "सिरहाने पर पड़ा दादा का सिर बिल्कुल सफ़ेद था। बंद आँखों से लगी झुर्रियां ही झुर्रियां थीं। एक सूखी बाँह कंबल पर सिकुड़ी–सी पड़ी थी–"'दादी अम्मा' कहानी में दादा का यह चित्र कितना प्राणवान बन उठा है। 'कलगी' में सुल्लखी के पति का यह जीवंत चित्र भी दर्शनीय है एक–एक शब्द अपने पात्र की रेखाओं–नैन– नक्शों को साक्षात् करता," मजबूत घोड़े पर बैठा सवार मखमली झोला और चमचमाता कमरबंद, कमरबंद से लटकी तलवार की सुनहली मूठ, चौड़ी छाती, अकड़े हुए कन्धे, तीखे नक्श–नैन, सिर पर केसरी साफा और लहरों–सी झलक मारती माथे पर लगी कलगी। यही तो वह बहादुर सरदार है जो क्षण–भर पहले सुल्लखी से विदा ले कर नीचे उतरा है। यही तो है सुल्लखी के सिर का धनी जिसका चौड़ा वक्ष और बलिष्ठ बाहें देख कर उसकी मीठी देह पर से तूफान गुजर जाता है।" इस प्रकार अपने पात्रों को रंग–रूप और रेखाओं से प्रस्तुत करना उनकी खास शैली है।

कृष्णा जी की कहानियों में देश–काल और वातावरण का चित्रण बहुत कुशलता से हुआ है। इस चित्रण की विशेषता यह है कि इसमें पंजाबियत, पंजाबी संस्कृति, विशेष रूप से उस भू–भाग के पंजाबियों की संस्कृति जो आज पाकिस्तान में है। इनके पात्रों की बोली–बानी, वेश–भूषा–सब से वहीं की रंगत देखने को मिलती है। वहाँ के तीज–त्योहार, शादी–ब्याह के रीति–रिवाज़, नेग–चार और अन्य लोकाचार, आभूषण आदि सभी कहानीकार की चेतना पर छाये रहते हैं, अक्सर मिलते ही वह इनकी अभिव्यक्ति सहज भाव से कर देती है। 'सिक्का बदल गया' में चिनाब में वर्षों से नहाती चली आती शाहनी है, उनका 'अम्मा वाला' कुआं है, दूर–दूर तक फैले खेत हैं, पुरखों की ऊँची हवेली है, कुल्लूवाल के जार हैं, आरेवाली कनाली के

साथ हुसैना हैः 'कलगी' में सुल्लखी की कुरते पर अटकी जंजीर है, पट्ट की ओढनी है, 'गठे हुए वक्ष को उभार देने वाला' किसी अशुभ स्याही का काला पड़ गया कत्थई कुर्ता है, उसके मुखड़े पर चमकने वाली कीमती लौंग है, 'बहनें' कहानी में 'सगुणो की लाल ओढ़नी' में सजी बड़ी बहन है, बड़ी के गले में चमकता हार और झोली में सगुण के दिये रुपये हैं, और हैं विवाह की कई–कई रस्म–रीति रिवाज, "कपड़े आये और जोड़े बंटने लगे। सेहरा गूंथने वाली मालिन, नाई, धोबी, साईस, नये–पुराने नौकर सभी को कपड़े और रुपये। दूल्हे पर आशीर्वाद बरस रहें हैं और दूल्हे की माँ जात–बिरादरी के सामने सिर ऊँचा किये खड़ी है।" इस प्रकार अनेक–अनेक रूपों में यहाँ लोक–संस्कृति के दर्शन होते हैं। पंजाब के गाँवों के भोजन का दृश्य 'जिगरु की बात' कहानी में सरदारे की माँ के इस व्यवहार में देखा जा सकता है," थाली देखकर मन भर आया, कटोरी में अब भी थोड़ा सा घी शक्कर पड़ा था जाने कब बेटे को अपने हाथ से रोटी खिलायेगी।" वेश–भूषा में क्या कुछ पहना–ओढ़ा जाता है, इसका परिचय भी इसी कहानी में इस रूप में देखा जा सकता है," मालिक मेहर करें लाल पर, यह वक्त तो उसके सगुण मनाने का है। सही–सलामत घर आये बच्चा. .... कल ही उसके कपड़े चीरे धुला–रंगा कर रक्खूंगी ....। (पंजाब में पगड़ियों और परनों को रंगवाने का विशेष प्रचलन है)। यहीं उसके हवा में सूखते 'लाबी साफ़ा' का परिचय मिलता है।

पंजाबियत, पंजाबी संस्कृति के इस चित्रण में कृष्णा सोबती ने अपनी भाषा–शैली का भी विशेष योग लिया है। इसलिए उनके पात्रों के संवादों में एक पंजाबी रंगत और अदा तथा अदाकारी है। इस भाषा के कुछ उदाहरणों से कथन की पुष्टि होगी–

–"आज का दिन धन्य है बेटी ! मेरी धर्म ब्याहने गया है ! भगवान की छाँह हो उस पर ! मौसियों को भी कम खुशी नहीं ! बहनों का नाता ही ऐसा होता है, बेटी !"

–"तुम्हें आग लगे चन्ना।"

–"शाहनी, मन में मैल न लाना ! कुछ कर सको तो उठा न रखते !"

–"रमन बच्ची के सिर पर हाथ रखे कहता है," नहीं–नहीं, कोई डर नहीं–तुम हमारा सगा के माफिक है.....।"

इस प्रकार वातावरण और देशकाल कृष्णा सोबती की कहानियों में भाषा के माध्यम से भी खनकता है।

कृष्णा सोबती की भाषा में एक विशेष प्रकार की ताज़गी और कविता के लय है। विशेषतः ऐसा उनकी प्रारंभिक दौर की कहानियों में हुआ है जो 'बादलों के घेरे' में संकलित हैं। काव्यात्मक बिम्ब एक रोमानी–बोध देते हुए भाषा को एक लय प्रदान करते हैं। कथन की पुष्टि में 'बादलों के घेरे' कहानी से

यह अंश देखा जा सकता है," हल्की–सी हँसी.... और बाहें खुल जातीं। आँखें खुल जाती और गृहस्थी पर सुबह हो आती। फूलों की महक में नाश्ता लगता। धुले–ताजे कपड़ों में लिपट कर गृहस्थी की मालकिन अधिकार–भरे संयम से सामने बैठ–रात के सपने साकार कर देती।" प्रेम आदि का चित्रण करते यह भाषा और भी तरल हो भावों की अभिव्यक्ति में सक्षम होती है, सूक्ष्मता से मन की पर्तों को खोलती है। मंदिर सा यह वातावरण भाषा के माध्यम से ही साक्षात् हो उठता है, "बल्ब के नीले प्रकाश में दो अधखुली थकी–थकी पलकें जरा सी उठती हैं और बाँह के घेरे–तले सोये शिशु को देखकर मेरे चेहरे पर ठहर जाती हैं। जैसे कहती हों–तुम्हारे आलिंगन को तुम्हारा ही तन दे कर सजीव कर दिया है। मैं उठता हूँ, ठण्डे मस्तक को अधरों से छू कर यह सोचते–सोचते उठता हूँ कि जो प्यार तन में जगता है, तन से उपजता है, वही देह पाकर दुनिया में जी भी आता है।" इस सधी हुई भाषा के अभाव में यह पूरा प्रसंग मांसल और स्थूल हो उठता है। भाषा पर पूरा अधिकार और पकड़ मनोभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति में सहायक हुआ है। पात्रों के रंग–रूप, नैन–नक्श को कागज़ पर चित्रात्मक रूप देने में भी इस भाषा का ही सहयोग रहा है। वे अपने पात्रों की इस भाषा के द्वारा हमारे सामने साक्षात कर देती हैं, यह इनकी भाषा की बहुत बड़ी शक्ति है। न गुल था, न चमन था, कहानी में नादिरा दस्तूर का यह वर्णन द्रष्टव्य है," नादिरा दस्तूर ! अधगोरी गर्दन में चमकते मोतियों का हार उसके साथ–साथ बीत गये समय की तीन–चार रेखाएँ, काले केशों में रूपहले रूखे तागों की चमक, अधमैले रंग की देह पर सफेद और गुलाबी पाउडर की तह–नादिरा दस्तूर ! बड़ी–बड़ी सुंदर आँखें। ...... और बिजली के प्रकाश में स्वच्छ शैय्या पर फैली नादिरा दस्तूर के भरे गठन के मध्य में से ऊपर उठी हुई लेस का फीता और उंगलियों में लाल नग की अंगूठी..... लाल नग की अंगूठी के साथ–साथ उंगलियों में थमा सिगरेट भी था।" पात्र का यह सारा विवरण पूरी रंग–रेखाओं में शब्दों के द्वारा ही संभव हुआ है। एक–एक शब्द चुना हुआ, 'अधगोरी' और 'अधमैले रंग' का अपना ही बिम्ब दे कर लेखिका ने अपनी भाषा की क्षमता की प्रतीति दी है। कभी–कभी यह शब्द चयन इतना पूरा और एक–एक शब्द एक चीख बन कर इस रूप में चेतना पर उभरता है कि देर तक बजता रहता है–'दो राहें: दो बांहे' कहानी के अंत में 'सब कहाँ हैं? की आवृत्ति से एक अनुगूंज पैदा की गयी है। इसी प्रकार शब्दों की चीख का अहसास देखिए–

"लौट आयी है।

अकेली ! अकेली ! अकेली !"

शब्द–चयन की ऐसी कलाकारिता कृष्णा सोबती की कहानियों में स्थान–स्थान पर देखी जा सकती है।

अपनी प्रारभिक कहानियों में कृष्णा सोबती ने पत्र–शैली का भी भरपूर प्रयोग किया है। कभी ये पत्र कहानी के बीच में आये हैं और कभी पूरी कहानी ही पत्र रूप में लिखी गयी है। 'कुछ नहीं–कोई नहीं' कहानी पूरी की पूरी अपने पूर्व पति 'रूप' को एक पत्र के रूप में कही गयी है। 'पहाड़ों के साये तले' कहानी 'सुषी' कई पत्रों के रूप में बुनी गयी है। 'दो राहें : दो बाहें' कहानी में शोभन दा को मीनल का पत्र है। इस प्रकार उन्होंने पत्र–शैली का प्रयोग किया है।

यद्यपि कृष्णा सोबती की अधिकांश कहानियों की कथा–वक्ता (नैरेटर) स्त्री ही है किन्तु एक कहानी 'बादलों के घेरे' का कथा–वक्ता–नैरेटर पुल्लिंग में अपनी बात कहता है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों का चरित्र–चित्र

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल पात्रों के सम्बन्ध में कहते हैं –"पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश, विदेश जहां के भी हों, उनकी सृष्टि में केवल एक शर्त होनी चाहिए, उनकी पार्थविकता और स्वाभाविकता में हमें किसी प्रकार का सन्देह न हो।''

कहानी में जिनके सम्बन्ध में कथा कही जाती है, वे कहानी के पात्र होते हैं। उनमें से मुख्य पात्र को कहानी का नायक कहते हैं। कहानी में जिस प्रकार के पात्रों को चित्रित किया गया है, उसे चरित्र–चित्रण कहते हैं। इसी में कहानी का लक्ष्य या उद्देश्य निहित रहता है।

'बदली बरस गई' में कल्याणी का चरित्र–चित्रण

कल्याणी 'बदली बरस गई' कहानी की मुख्य पात्र है। पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् वह बचपन में ही अपनी मां के साथ आश्रम में आ जाती है। उसकी मां साध्वी बन जाती है और वह भी आश्रम में रहते हुए आश्रम की सभी मर्यादाओं का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगती है पर जब वह बड़ी होती है तो सुनहरे स्वप्न देखती है और उज्ज्वल भविष्य की चाह में स्वतंत्र जीवन जीने का निर्णय लेती है। इसी संदर्भ में उसके चरित्र के विभिन्न पक्ष पाठकों को प्रभावित करते हैं जिन्हें निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है।

मातृस्नेह से परिपूर्ण

कल्याणी अपनी माँ के प्रति स्नेही भावना से परिपूर्ण है। समाज की रूढ़िगत परम्पराओं से त्रस्त अपनी माँ को देखकर बेटी को अपनी माँ के प्रति दया और करूणा की भावना पैदा होती है। छोटी उम्र होने के कारण वह माँ के दर्द को तो नहीं जान पाई पर मां को रोते देख वह व्यथित हो उठती है और सोचती है– "माँ के आंसुओं में कैसा दर्द था और क्यों दर्द था यह सुधि कल्याणी

को तब क्योंकर होती पर फिर माँ के हाथ से अपनी उँगलियाँ छुआकर कल्याणी ने सोचा था कि माँ दादी अम्मा की फटकारों के लिए रोती है और रोती है अपने लम्बे बालों के लिए।"

उस समय कल्याणी का कोमल हृदय माँ की वेदना को भले समझ नहीं पाया हो लेकिन माँ के आँसुओं ने उसे पिघला दिया था।

माता–पिता एवं परिवार के प्रेम से वंचित

जबकि कल्याणी का जन्म एक खुशहाल परिवार में हुआ लेकिन पिता की मृत्यु के पश्चात् उसे अपनी माँ के साथ आश्रम भेज दिया गया जिसके कारण वह अपने पारिवारिक स्नेह से वंचित हो गई थी पर माँ के साध्वी बनने पर उसे मातृस्नेह से भी हाथ धोने पड़े। "माँ की आंखों के सामने थी, पर नहीं थी। माँ देखकर भी देखती नहीं। बेटी के साथ जो अपनापन था वह बेटी से छिटककर मोह ममता से दूर जा पड़ा था।"

कर्त्तव्यनिष्ठ

कल्याणी कत्तर्व्यनिष्ठ एवं आज्ञाकारी युवती है। वह अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को मारकर अपनी माँ के कहने पर आश्रम के नियमों का पालन करती है। "यह आश्रम का नियम है जिसका पालन कल्याणी ने हमेशा किया है। वह आज भी करेगी – रात के बाद उसकी आँखों में प्राणों की ज्योति रही तो कल भोर के बाद फिर इसी नियम में वह बँधी–बँधी चलेगी।"

अनुशासन में रहने वाली

कल्याणी अपने आपको आश्रम के नियमों में आबद्ध अनुभव करती है। वह अपना जीवन अपनी इच्छा से जीना चाहती है लेकिन आश्रम के साधारण जीवन तथा जोगिया धोती पहन कर अपनी इच्छाओं का दमन करती है। जब तक वह आश्रम में रहती है अनुशासन बनाए रखने में पूरा सहयोग देती है और अंत में अनुशासन के साथ ही आश्रम के जीवन का परित्याग कर देती है।

महत्वाकांक्षी

कल्याणी जीवन के प्रति महत्वाकांक्षी है। अन्य युवतियों की तरह वह भी रंग–बिरंगा रेशमी लहंगा चोली पहनना चाहती है। परिवार का प्रेम पाना चाहती है और शादी करवा के अपना घर बसाना चाहती है। उसकी आँखों में वह स्मृतियाँ दौड़ जाती है जब उसकी चाची उसकी बुआ के लिए रेशमी चोली तैयार कर रही होती है।" "जल्दी–जल्दी बाँहों पर हाथ फेरती तो बाँहें उसे अपनी नहीं लगती। गाढ़ की कुरती और जोगिया धोती लिपटाते–लिपटाते बुआ के रंग–बिरंगे कपड़े मन में झिलमिला जाते।"

कल्याणी जीवन के सभी भौतिक सुखों को जीना चाहती है। वह इस जोगिया धोती से ऊब चुकी थी और अपना जीवन अपनी इच्छा से जीना चाहती थी।

स्वतंत्रताभिलाषी

कल्याणी स्वतंत्र विचारधारा वाली युवती के रूप में दृष्टिगोचर होती है। वह आश्रम में बंध कर नहीं रहना चाहती। वह अपना स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहती है।

स्पष्टवादी एवं साहसी

कल्याणी स्पष्टवादी एवं साहसी युवती है। अपने हृदय की बात वह साध्वी माँ और महाराज के समक्ष बिना किसी संकोच के रख देती है। वह आश्रम को हमेशा–हमेशा के लिए छोड़कर जाने की बात को स्पष्ट रूप से माँ साध्वी और महाराज के सामने रखती हुई कहती है– ''अभ्यासवश कल्याणी महाराज के सामने झुकी, माँ के सामने झुकी और खड़ी होकर बोली, "जाती हूँ माँ – मेरे लिए अब भी समय है। आश्रम की कोठरी में कल से मेरा दम नहीं घुटेगा – अब मेरा अपना घर होगा।" कहते–कहते कल्याणी उस घर की मीठी कल्पना में बाहर हो गयी।

युवावस्था में प्रविष्ट करते ही वह भी एक युवा लड़की की तरह स्वप्न देखती है और अनुकूल परिस्थितियां न होने के कारण वह विद्रोह करती है।

अतः कहा जा सकता है कल्याणी 'बदली बरस गयी' कहानी में ऐसी पात्र है जिसके माध्यम से लेखिका ने एक युवती के मनोभावों, इच्छाओं के दमन को चित्रित किया है। वह अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं के कारण इस कहानी की प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित हुई है।

साध्वी माँ का चरित्र–चित्रण

'बदली बरस गयी' कहानी में साध्वी माँ एक महत्वपूर्ण पात्र है। वह कल्याणी की माँ है। साध्वी अपने पति की मृत्यु के बाद सास के तंग किए जाने पर घर का त्याग कर आश्रम में आ जाती है और सन्यासी जीवन ग्रहण करती है। साध्वी अपने साथ कल्याणी (जो उसकी बेटी है) को भी अपने साथ आश्रम में ले आती है और उसे भी महाराज की आज्ञाओं का पालन करने के लिए कहती है। लेकिन कल्याणी उसका विरोध करती है और आश्रम छोड़ कर चली जाती है। साध्वी माँ चाहकर भी उसे रोक नहीं पाती। साध्वी भावुक, सहनशील, धैर्यवान औरत है, उसके चरित्र की अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

रूढ़िवादी परम्पराओं की शिकार

साध्वी माँ समाज की रूढ़िवादी परम्पराओं की शिकार है। पति की मृत्यु के पश्चात् अपनी सास के बुरे व्यवहार से तंग आकर साध्वी आश्रम में महाराज की शरण में जाती है। आश्रम में वह अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं का गला घोंट कर साधारण जीवन आरम्भ करती है, तथा जोगिया वस्त्र धारण करती है। उसके लम्बे काले केश काट दिए जाते है। "दूसरे दिन जब देर गये उठकर वह कोठरी के द्वार पर आ खड़ी हुई तो माँ के तन पर गीली धोती थी – माथे पर चन्दन का टीका था और अब माँ कोठरी में लौटी तो सिर पर घने काले केश नहीं थे।"

दमित इच्छाओं से परिपूर्ण

साध्वी बन जाने के पश्चात् चाहे भक्तजनों से उसे बड़ा मान–सम्मान मिलता है पर साध्वी माँ जब नयी–नयी आश्रम में आई थी तो उसके यौवन, उसके हृदय में उल्लास एवं भौतिक वस्तुओं का आकर्षण था। वह उसे अंत तक हृदय से निकाल नहीं सकी।

मातृत्व युक्त

चाहे साध्वी माँ भौतिक आकर्षण से परे हो चुकी थी और कल्याणी को अन्य आश्रम की युवतियों की भांति समझती थी। लेकिन जब कल्याणी आश्रम छोड़कर जाने को तैयार हो जाती है तो उसका मन भर आता है। उसका मन विचलित हो उठता है। उसके वात्सल्य को लेखिका ने निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट किया है–

"महाराज कुछ बोले नहीं। साध्वी माँ कई क्षण मौन बैठी रही। बोल मुँह पर आने को थे कि व्यथा से आँखें अन्धी हो गयी। और रुके–रुके श्वास के साथ एक आहत–सी सिसकी निकल गयी।"

अनुशासन प्रिय

साध्वी माँ आश्रम के नियमों के अनुरूप अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं वह आश्रम के प्रति इतनी समर्पित होती जाती है कि उसे बाहरी दुनिया यहाँ तक कि अपनी बेटी के भावी जीवन, आवश्यकताओं के प्रति कोई ध्यान नहीं है। जब कल्याणी माँ साध्वी से दादी के घर लौटने के लिए कहती है तो माँ साध्वी मोह माया का त्याग करने की बात करती है जैसे–

"साध्वी माँ शान्त बैठी रही। वह क्यों हिलेंगी। यह मोह माया का आवरण है जो उसे कोई सुख नहीं देता। उपवास करो।"

अध्यात्मवादी

साध्वी माँ आश्रम में रहते हुए धीरे–धीरे भौतिक जीवन का त्याग कर अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होती गई। "माँ देर गये ध्यान में रहती और सुबह उसके उठने से पहले ही आसन पर होती। आश्रमनिवासी माँ के सामने झुकते – माँ आँखें खोलती, मुस्करातीं, हाथ उठाकर आशीर्वाद देती और फिर आँखें मूँद लेती।"

अब वह एक माँ न होकर साध्वी माँ बन चुकी थी। आध्यात्म में लीन साध्वी माँ हर रिश्ते नाते को पीछे छोड़ चुकी थी।

गुरु–सम्मान में निपुण

साध्वी माँ जब से आश्रम में गुरू से दीक्षा प्राप्त करती है तब से वह गुरू का पूरा मान–सम्मान करती है। उनकी ज़रूरतों का ध्यान रखती है। गुरू के उठने से पहले ही उनके कक्ष की यथा सम्भव सफाई करके हर आवश्यक सामग्री को वहां उपलब्ध करवाती है। खुद मान–सम्मान करने के साथ–साथ वह अपनी बेटी को भी इस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है।

धैर्यवान

साध्वी माँ धैर्य रखने वाली है। पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी सास व ननद आदि जब उसे बात–बेबात पर प्रताड़ित करती हैं तो वह उन्हें किसी बात का उत्तर नहीं देती। चुपचाप उनकी बातें सहन करती है। वह रोकर अपना मन हल्का कर लेती है। पर उनका विरोध नहीं करती। इसी प्रकार जब कल्याणी आश्रम छोड़ने का निर्णय लेती है तो चाहे वह व्यथित हो उठती है पर उस समय भी उसका धैर्य डोलता नहीं बल्कि स्थिर बना रहता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साध्वी माँ 'बदली बरस गयी' कहानी की ऐसी नारी पात्र है, जिसका जीवन सामाजिक थपेड़ों की चपेट में आकर एक सदगृहिणी से सन्यासिनी में बदल जाता है। ममत्व भाव से परिपूर्ण होते हुए भी वह अपने आप को संयमित करने का प्रयास करती है। अपनी इच्छाओं को दमित कर वह साधुत्व का बाणा करने में सफल होती है।

'सिक्का बदल गया' में शाहनी का चरित्र–चित्रण

शाहनी सिक्का बदल गया कहानी की मुख्य पात्र है। यह कहानी भारत–पाक विभाजन के समय के उन जगीरदारों की त्रासदी पर आधारित है जिन्हें अपनी सारी ज़मीन–जायदाद छोड़कर जाने के लिए विवश किया गया। बंटवारे की आग ने उन हिन्दू और मुस्लमान लोगों को भी अलग कर दिया जो आपसी प्रेम भाव से रहा करते थे। शाहनी ज़मीदार घराने की बहू है जो विधवा हो चुकी है विधवा होने के बाद भी शाहनी अपने पति के खेतों और अन्य जायदाद का पूरा ख्याल रखती

है और कामयाब भी होती है लेकिन भारत–पाक विभाजन के समय हिन्दू और मुसलमानों में आपसी वैमनस्य बढ़ गया और शाहनी को सरकार के आदेश अनुसार अपना घर और ज़ागीर छोड़ कैम्प में जाना पड़ा। गांव के लोग जो कि मुसलमान हैं वे भी नहीं चाहते कि शाहनी गांव छोड़कर जाये लेकिन वह शाहनी को मुस्लिमों के भय के कारण तथा सरकार के आदेश के कारण रोक भी नहीं पाते। शाहनी धनवान होते हुए भी बहुत ममतामयी, दयावान, निस्वार्थी महिला है– शाहनी के चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

धार्मिक वृत्ति वाली महिला

शाहनी धार्मिक वृत्ति की महिला थी। हिन्दू धर्म की विचार पद्धति के आधार पर सूर्य पूजा में विश्वास रखती है। इसलिए हाथ में माला और राम–नाम का जाप करती हुई प्रतिदिन चिनाब दरिया में स्नान करने जाती है और सूर्य देव को नमस्कार करती है। जैसे – श्री राम श्री राम करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया। अतः धार्मिक वृत्ति की होने के कारण ही वह सभी में ईश्वरत्व भाव देखती है।

ममतामयी

शाहनी गाँव के सभी लोगों के प्रति ममत्व की भावना रखती है और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता पड़ने पर सहायता भी करती है। शेरा जब मुसलमानों के साथ मिलकर शाहनी को मारने की योजना बनाता है तो उसे अनायास शाहनी की वह ममता याद आती है– "वह सर्दियों की रातें–कभी कभी शाहजी की डाँट खाके वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में देखता था, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध कटोरा थामे हुए, शेरे, शेरे उठ पी ले।"

वह जानती है कि सरकार के आदेश के कारण कोई व्यक्ति चाहते हुए भी उसकी सहायता नहीं करेगा तो वह जाते हुए भी गांव वालों को आशीष देकर जाती है– ''रब्ब तुम्हें सलामत रखे बच्चा खुशियाँ बख्शे।''

गांव के लोग जानते हैं कि शाहनी का हृदय बहुत बड़ा है इसलिए इस्माइल शाहनी से कहता है–

'शाहनी कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुंह से निकली आशीष झूठी नहीं हो सकती।''

वह शेरे से कहती है– ''तुम्हें भाग लगे चन्ना।''

रीति–रिवाजों को मानने वाली

शाहनी धनवान होने के साथ–साथ सामाजिक भी थी और अक्सर लोगों के विवाह आदि उत्सवों पर उन्हें शामिल हो कर आशीर्वाद के साथ–साथ उन्हें उपहार के रूप में कीमती वस्तुएँ भेंट किया करती थी। जैसे वह थानेदार दाऊद खां की मंगेतर से मिलती है तो उसे सोने के कर्नफूल मुंह दिखाई में देती है। सरकार के आदेश के अनुसार थानेदार दाऊद खां जब शाहनी को घर से कैंप में ले जाने के लिए आता

है तो उसे यह प्रसंग व्यक्त करता है– "यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मंगेतर को सोने के कर्नफूल दिये थे मुंह दिखाई में।"

और उसे बहुत दुःख भी होता है कि आज वह स्वयं उसे घर से कैम्प में ले जाने आया है।

निस्वार्थी

जब थानेदार शाहनी को घर से निकलने से पहले कुछ नकदी और सोना चाँदी साथ लेने के लिए कहता है तो शाहनी कहती है– "सोना–चांदी ! बच्चा वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक–एक जमीन में बिछा है।"

''नहीं बच्चा मुझे इस घर से नकदी प्यारी नहीं यहां की नकदी यहीं रहेगी।''

विवश

शाह जी की मृत्यु के बाद भी शाहनी अपने पति के खेतों और अन्य संपत्ति की संभाल रखने में पूर्ण कामयाब रहती है लेकिन विभाजन की आग उससे वह सब कुछ छीन लेती है। गांव में उसका बहुत सम्मान था लेकिन ज़ागीरों के साथ–साथ वह भी उसी गांव में छोड़ शाहनी को कैम्प जाना पड़ता है। गांव के जो लोग शाहनी को सलाम करते थकते नहीं थे वह सभी उससे मुख मोड़ लेते हैं। शाहनी गांव वालों की तरफ देखती है और सोचती है।

"सारा गांव जो उसके इशारे पर नाचता था कभी उसकी असामियाँ जिन्हें उसने अपने नाते–रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है।"

दाऊद सोचता है– "वही शाहनी है जिसके लिए शाहजी दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे।"

लेकिन आज वह इतनी विवश है और कोई उसकी सहायता भी नहीं कर सकता।

स्वाभिमानी

शाहनी कठिन परिस्थितियों में भी अपने संयम को नहीं खोती और गांव वालों के सामने न ही दया का हाथ फैलाती है बल्कि पूरे स्वाभिमानी के साथ घर और संपत्ति छोड़ वहां से चली जाती है– "शाहनी रो–रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी।"

साहसी

शाहनी जब हर रोज की तरह स्नान करने के लिए चिनाब दरिया के किनारे जाती है तो स्नान करने के बाद देखती है कि रेत पर पैरों के निशान बने हैं लेकिन आस–पास कोई नहीं है उसे आभास

तो हो जाता है कि वे लोग मुसलमान थे और उसे हानि पहुंचाने ही आये थे लेकिन वह घबराती नहीं और राम नाम लेते हुए गांव वापस लौट जाती है।

मिलनसार

शेरा और हुसैना उसके घर में काम करने वाले नौकर नौकरानी हैं लेकिन वह उनके साथ माँ जैसा व्यवहार करती है। शेरा को वह अपना बेटा मानती है और हुसैना को बहू– "जिगरा !" हुसैना ने मान–भरे स्वर में कहा "शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। पगली मुझे तो लड़के से बहू प्यारी है।"

कृष्णा सोबती ने शाहनी के माध्यम से ऐसी नारी का वर्णन किया है जो सर्वजन का हित चाहती है। उसे देश के विभाजन से कुछ लेना–देना नहीं है। शाहनी इस कहानी की एक ऐसी पात्र है जिसे अपनी संपत्ति से अगाध प्रेम होते हुए भी उसके प्रति अनासक्ति दिखलाती हैं।

16.5 सारांश

इस प्रकार कृष्णा सोबती अपनी विशिष्ट कथा–शैली के साथ 'नयी कहानी' में अपना स्थान बनाती हैं और आगे समकालीन कथा–दौर में भी कहानी में शैली और शिल्प के स्तर पर कितने ही नये–नये प्रयोग करती हैं।

स्पष्ट है कि कृष्णा सोबती की कहानियों के विभिन्न पात्रों के माध्यम से समाज की विभिन्न समस्याओं को उद्घाटित किया है। 'कहीं कुछ ओर' कहानी आधुनिक नारी का प्रतीक है जो अपनी भावनाओं को अपने हृदय में दबाकर अपना जीवन अपनी इच्छा से जीती हैं। 'सिक्का बदल गया' कहानी भारत पाक विभाजन के समय के उन जागीरदारों की त्रासदी पर आधारित है जिन्हें अपनी सारी जमीन–जायदाद छोड़कर जाने के लिए विवश किया गया है।

16.6 कठिन शब्द

1. विषिष्ट
2. समकालीन
3. शैली
4. शिल्प
5. प्रारंभिक
6. व्यथा
7. मान्यता
8. मापदण्ड
9. अनासक्ति
10. विभाजन
11. अगाध
12. सर्वजन
13. आभास
14. त्रासदी

15. स्वाभिमानी

16. प्रवृत्ति

17. दुर्भाग्य

18. परम्परावादी

16.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कृष्णा सोबती की कथा शैली पर प्रकाश डालें।

2. वातावरण और देशकाल कृष्णा सोबती की कहानियों में भाषा के माध्यम से खनकता है, स्पष्ट कीजिए।

3. कृष्णा सोबती की कहानियों में प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण करें।

4. साध्वी माँ 'बदली बरस गयी' की महत्वपूर्ण पात्र है, इस परिप्रेक्ष्य में साध्वी माँ का चरित्र–चित्रण करें।

5. 'सिक्का बदल गया' कहानी की शाहनी का चरित्र चित्रण करें।

– – – – –

M.A. HINDI	**Lesson No. 17**
Course Code : HIN-302	**Semester-III**

ग्रामीण चेतना के कहानीकार शिवमूर्ति

17.0 रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 ग्रामीण चेतना के कहानीकार शिवमूर्ति

17.4 निष्कर्ष

17.5 कठिन शब्द

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.7 पठनीय पुस्तकें

17.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप

- शिवमूर्ति के व्यक्तिगत जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- शिवमूर्ति के साहित्य का बोध कर सकेंगे।
- शिवमूर्ति को ग्रामीण चेतना का कहानीकार क्यों कहते हैं, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

17.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में शिवमूर्ति एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में सामने आते हैं। इन्हें ग्रामीण समाज का कथाकार कहा जाता है क्योंकि इनके पास जो अनुभव हैं वे ग्रामीण जीवन से अधिक अर्जित हुए है। एक

तरह से कहें तो गांव के जीवन को इन्होंने अधिक देखा–भोगा है। इसलिए इनके साहित्य सृजन का विकास ग्रामीण परिवेश को केन्द्र में रखकर हुआ।

17.3 ग्रामीण चेतना के कहानीकार शिवमूर्ति

लेखक जिस परिवेश में रहता है उससे प्रभावित होकर ही रचना कर्म में अग्रसर होता है। इसलिए यदि किसी लेखक के रचनाकर्म की विशेषता का ज्ञान प्राप्त करना हो, तो सर्वप्रथम उसके व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन करना आवश्यक होगा। शिवमूर्ति के रचनासंसार की विशेषता उसमें व्यक्त ग्रामीण जीवन है। इसलिए उन्हें ग्रामीण चेतना का कहानीकार भी कहा गया है। वह ग्रामीण चेतना के कहानीकार कैसे हैं इसके लिए उनके व्यक्तित्व का अध्ययन आपेक्षित है।

कहानीकार शिवमूर्ति का जन्म 11 मार्च, 1950 को जिला सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) के गाँव कुरंग में एक सीमान्त किसान परिवार में हुआ और वहीं से इन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की। बचपन में स्कूल जाना सबसे अप्रिय लगता था। इसलिए घर से भागकर अधिकतर नानी के घर जाते। जहाँ से पिता इनको मारते हुए स्कूल छोड़ आते थे। शिक्षा के कारण पिता का कठोर व्यवहार इनके भीतर पिता के लिए घृणा का भाव भी उत्पन्न करता है। छः वर्ष की आयु में इनका बाल–विवाह हुआ। बी.ए. के दौरान एक बेटी का जन्म भी हो गया। डेढ़ साल के बाद दूसरी बेटी का जन्म हुआ, तब यह स्कूल पढ़ाते थे। तीसरी बेटी के जन्म के समय यह रेलवे की नौकरी करते थे। बेटियों के जन्म ने इन्हें बहुत असुरक्षाओं से घेर लिया। बेटा न होना इनके दुख का कारण रहा। इस संदर्भ में यह पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त दिखाई देते हैं। पिता के गृहत्यागी होने के कारण इन्हें 13 वर्ष में ही घर का मुखिया बनकर आर्थिक संकट तथा असुरक्षा का सामना करना पड़ा।

आजीविका हेतु जियावन दर्जी से सिलाई सीखी, बीड़ी बनाई, कैलेंडर बेचा, बकरियाँ पाली, ट्यूशन पढ़ाई तथा मजमा लगाकर जड़ी–बूटियां बेचने जैसे कार्य की इन्हें करने पड़े। यहाँ तक कि नरेश डाकू के गिरोह में शामिल होते–होते बचे। पिता को वापिस घर लाने के प्रयास में गुरु बाबा की कुटी पर आते–जाते थे। वहीं पर इन्होंने खंजड़ी बजाना सीखा था। कुछ समय अध्यापन तथा रेलवे की नौकरी करने के उपरान्त उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग से चयनित होकर 1977 में बिक्री कर (Sales Tax) अधिकारी के रूप में स्थायी जीविकोपार्जन से जुड़े और मार्च 2010 में एडिशनल कमिशनर के पद से अवकाश प्राप्त किया।

शिवमूर्ति अपने गाँव के पहले युवक थे जो उच्च सरकारी पद पर कार्यरत हुए। इन्होंने अपनी नौकरी पूर्ण ईमानदारी से की। नौकरी के चलते इन्हें ज्यादातर ग्रामीण भट्ठों में जाँच के लिए जाना पड़ता था। क्योंकि उस समय सबसे अधिक बिक्री कर भट्ठों से ही मिलता था। इन्होंने अपने एक साक्षात्कार में बताया है कि भट्ठों के वास्तविक मालिक स्वयं गुप्त रहकर कागजों में अपने मुंशी आदि का नाम लिखवाते थे ताकि जाँच में यदि

फँसे तो स्वयं बच जाएँ, किन्तु शिवमूर्ति वास्तविक मालिक का पता लगाकर उन्हें ही कर लगाकर अपनी ईमानदारी का परिचय देते हैं। अपने पद का दुरुपयोग इन्होंने कभी नहीं किया। अपने लेखन और नौकरी को भी इन्होंने अलग–अलग रखा। न कभी लेखन के क्षेत्र में पद का सहारा लिया और न ही नौकरी में लेखन प्रतिष्ठा का रोब दिखाया। अपने साहित्य को छपवाने के लिए भी इन्हें पद का प्रयोग नहीं करना पड़ा, बल्कि शिवमूर्ति का कहना है कि प्रकाशक स्वयं मेरी कहानियां छापने के लिए मुझे आग्रह करते थे।

नौकरी के दौरान यह शहर में अधिक रहे किन्तु नगरों में रहने के उपरान्त भी मानसिक रूप से स्वयं को गाँव में अधिक पाते हैं। अतः शहरी परिवेश में रहते हुए भी गांव से जुड़े रहे। यही कारण है कि इनकी कहानियों के विषय और पात्र भी ग्रामीण क्षेत्र के ही हैं।

शिंवमूर्ति के जीवन को सार्थक बनाने में इनकी पत्नी सरिता का बहुत योगदान रहा है। इनके परिवार को पूरी तरह संभालने के साथ–साथ शिवमूर्ति को अधिकारी तथा एक अच्छा लेखक बनाने के पीछे सरिता की अहम भूमिका रही। शिवमूर्ति ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उनकी पत्नी का योगदान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रहा। साहित्य के प्रति सरिता की विशेष रुचि थी। शिवमूर्ति कहानियों के पात्र और लोकगीतों के मुखड़े भी सरिता के सहयोग से लेते हैं। शिवमूर्ति को निरन्तर लिखने के लिए वह प्रेरित करती रही हैं।

शिवमूर्ति के साहित्य का संक्षिप्त परिचय

शिवमूर्ति ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने बहुत कम लिखकर भी हिन्दी साहित्य जगत में विशेष ख्याति अर्जित की है। अब तक इनके चार उपन्यास – त्रिशूल (1995), तर्पण (2004), आखिरी छलाँग (2008), अगम बहै दरियाव (2023), दो कहानी संग्रह–केसर कस्तूरी (1991), कुच्ची का कानून (2017), एक सृजनात्मक पुस्तक – 'सृजन का रसायन' प्रकाशित हुई है। अपने कथा साहित्य में इन्होंने मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन को केन्द्र में रखा है।

'त्रिशूल' शिवमूर्ति का पहला उपन्यास है जिसमें सांप्रदायिकता तथा जातिवाद की आड़ में घृणित राजनीति करने वाली मानसिकता को सामने लाने का प्रयास किया गया है। लेखक इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि सांप्रदायिकता का विष मनुष्य के मानवीय पक्ष को समाप्त कर उसके भीतर घृणा को जागृत करने का कार्य करता है। सांप्रदायिकता की भावना मनुष्य–मनुष्य के मध्य व्यवधान उपस्थित कर हमारे समाज को विषाक्त कर देती है। उपन्यास के आरम्भ में लेखक का यह कहना कि ''कहाँ से शुरू करूं महमूद की कहानी? वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीट कर ले जा रही थी... चौराहे पर लाठियां पीट रही थी और मुहल्ले से कोई आदमी बचाने के लिए नहीं आ रहा था। या.. जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती

पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, ''बोल साले जै सिरी राम...।'' स्पष्ट करता है कि कुछ स्वार्थी लोग राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने की साजिश में, राष्ट्रवाद की आड़ लेकर धर्म–संप्रदाय के बहाने व्यक्ति का ध्रुवीकरण कर किस प्रकार समाज में वैमनस्य फैलाते हैं। उपन्यास हमारे समाज के मुख्य संकट से हमारा परिचय करवाता है। यह संकट लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण का हो, व्यक्ति का अपनी पहचान के कारण अकेले पड़ जाने का, धर्म–संप्रदाय के नाम पर व्यक्ति को प्रताड़ित करने का या फिर सांप्रदायिक उन्माद के चलते समूची मानवीयता को रौंदने का।

यह उपन्यास 6 दिसम्बर, 1992 में हुए अयोध्या मंदिर–मस्जिद विवाद की घटना पर आधारित है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र महमूद है जो कथावाचक के घर में कार्य करता है। मुसलमान महमूद का हिन्दू के घर काम करना कई प्रश्न उत्पन्न करता है। मुहल्ले के लोग उसे 'चेला' बनाकर अपना स्वार्थ साधते हैं। तत्कालीन राजनीतिक रामवादी पार्टी के शास्त्री जी महमूद को दंगे फैलाने के लिए जरिया बनाते हैं। शास्त्री का पोता अगवा कर लिया जाता है तो आरोपी महमूद को माना जाता है जबकि दंगे और महमूद के चले जाने के पश्चात् उनका पोता ननिहाल से ससुराल लौट आता है। लेखक महमूद की रक्षा का प्रयास करते हैं और महमूद भी अपने मालिक की रक्षा हेतु वहां से चला जाता है लेकिन वह अपने घर न जाकर कहाँ गया यह प्रश्न लेखक को विचलित करता है। स्वाभाविक है कि उसने कट्टरपंथी मुस्लिम गृह की शरण ली हो। इस उपन्यास का अन्य पात्र 'पाले' है जो अपने भाषणों द्वारा धार्मिक बाह्याडम्बरों पर कटाक्ष करता है। उसकी इसी भाषण देने के क्रम में हत्या कर दी जाती है। अतः लेखक इस उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट कर देते हैं कि धर्म, जाति, साम्प्रदायिकता आदि मुद्दे आज इतने गहराते जा रहे हैं कि कुछ स्वार्थी लोग अपने हित के लिए आर्थिक दृष्टि से असम्पन्न व्यक्ति को मोहरा बना रहे हैं। प्राचीन काल से विश्वबंधुत्व की भावना को लेकर चलने वाले भारत में यह साम्प्रदायिक द्वेष–भावना मानवीय भावना को समाप्त करने का प्रयास करती है जो हमारे देश के लिए संकट का विषय है।

'तर्पण' शिवमूर्ति द्वारा लिखा गया दूसरा उपन्यास है। जिसमें सदियों से शोषित उत्पीड़ित होते दलितों के प्रतिरोध व परिवर्तन को अभिव्यक्ति मिली है। यह उपन्यास में एक तरफ कई वर्षों के दुख, अभाव और शोषण का यथार्थ है तो दूसरी तरफ दलितों के संघर्ष, स्वप्न और मुक्ति चेतना की नई वास्तविकता भी है। उपन्यास में ब्राह्मण युवक चन्दर दलित युवती रजपत्ती की अस्मिता लूटने का प्रयास करता है किन्तु रजपत्ती और अन्य दलित नारियों के विरोध स्वरूप वह इस कुकृत्य में सफल नहीं हो पाता। दलित उसके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाते हैं तो पुलिस उनकी सुनवाई के लिए तैयार नहीं होती। दलितों के प्रयास से चन्दर गिरफ्तार होता है लेकिन जेल से छूटने के बाद वह दलितों की बस्ती में जाकर बंदूक से फायर करता है। जब चन्दर भाईजी को मारने की कोशिश करता है तो प्रत्युत्तर में मुन्ना उसकी नाक काट लेता है। नाक

काटने की घटना को पूरा ब्राह्मण समाज अपना अपमान समझकर बदला लेने की कसम खाते हैं लेकिन इस बार दलित भी बम, कट्टा आदि लेकर सतर्क थे, सवर्णों का जवाब उनकी भाषा में देने के लिए।

पियारे, बेटे मुन्ना का जुर्म अपने ऊपर लेकर जेल जाता है क्योंकि उसका मानना है कि जेल जाकर में इस कर्म का प्रायश्चित करना चाहता है कि उसने इतनों दिनों तक सवर्णों का अत्याचार क्यों सहा। अतः यह उपन्यास स्पष्ट करता है कि ग्रामीण समाज में पुलिस, उच्च जातियाँ आदि मिलकर दलितों का शोषण करती हैं किन्तु अब दलितों ने अपने शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठानी आरम्भ कर दी है। उनका यह साहसी प्रयास उन्हें सदियों के शोषण से मुक्ति दिलाएगा।

'आखिरी छलाँग' उपन्यास लेखक का तीसरा उपन्यास है जिसमें किसान जीवन का वर्तमान वास्तविक चित्र अंकित किया गया है। उपन्यास का मुख्य पात्र हैं – पहलवान। गाँव में उसका बहुत मान–सम्मान है। सरकार से कृषि रत्न पुरस्कार भी प्राप्त किया है। बेटा इंजनीनियरिंग में प्रवेश परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त कर शहर में इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है। शिवमूर्ति का पहलवान आधुनिक किसान है लेकिन फिर भी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। घर के तमाम खर्चें, बेटी का विवाह, बेटे की फीस व कर्ज़ का दुख उसे निरन्तर सालता है। यह उपन्यास इस सत्य को व्यक्त करता है कि तकनीकी व्यवस्था ने किसान को लाभ तो पहुँचाया है लेकिन उसकी कीमत भी वसूल की है। एक तरफ कर्ज़ चुकाने की चिंता तो दूसरी तरफ प्राकृतिक आपदा उसकी फसल को नष्ट इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर विवश करती है कि जितनी बड़ी खेती उतना बड़ा नुक्सान। उपन्यास में पहलवान संघर्षशील किसान है लेकिन 'पांडे बाबा' के माध्यम से किसान–आत्महत्या को रेखांकित भी किया है। किसानों के लिए बनी सरकारी योजनाएँ वास्तविकता में प्रायः उसकी आत्महत्या का कारण भी बन जाती हैं। ट्रैक्टर लोन में फंसने के कारण पांडे बाबा आत्महत्या करते हैं। पांडे की बरसी पर पूरे जिले के किसान एकत्रित होते हैं, जहाँ विभिन्न समस्याओं पर विचार–विमर्श होता है। यहीं आकर पहलवान का दृष्टिकोण परिवर्तित होता है तथा जीवन के प्रति उसमें लालसा जागती है और वह अपने अधिकारों के प्रति तथा सरकार की नीतियों के प्रति सजग हो उठता है। शिवमूर्ति का किसान आत्महत्या को नहीं बल्कि जीवन संघर्ष को चुनता है। इस प्रकार उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि भारतीय किसान मरना नहीं चाहता, बल्कि आखिरी साँस तक जिन्दगी जीने की लालसा लिए संघर्षरत रह सकता है।

'अगम बहै दरियाव' 2023 में प्रकाशित शिवमूर्ति का चौथा उपन्यास है। यह उपन्यास लेखक की अनुभव–सम्पदा और कथा–कौशल का शिखर है। कल्याणी नदी पर बसे बनकट गाँव की इस कथा में समस्त उत्तर भारत के किसानों व मजूदरों की व्यथा समोयी है। कृषि प्रधान इस भारत देश में एक सामान्य किसान जिसके पास सौ–दो सौ बीघा जमीन, लाइसेंसी बन्दूकें और पुलिस–फौज में नौकरी करते बेटे नहीं

हैं, अपने दुख में अकेला और असहाय एक ऐसा जीव है, जो हर ओर से शोषित हो रहा है। वह राजनीति के लिए वोट–बैंक और नौकरशाही के लिए एक दुधारू गाय है। थाने, तहसीलें, अदालतें, पटवारी, वकील, मिलें, कर्ज व खर्च, राजनीति व नौकरशाही से सब अपने स्वार्थ के लिए एक ऐसा महाजाल बुनते हैं जिसके निशाने पर सामान्य किसान ही होता है। यह उपन्यास भारतीय किसान के उसी दुख को व्यक्त करने के साथ उस साहस को भी अभिव्यक्ति देता है जिसने पीड़ित व असहाय किसान को अभी तक संघर्षमय बनाए रखा है। ग्राम जीवन के विविध रंग, छवियों और गीत–संगीत से समृद्ध इस उपन्यास में ग्रामीण लोकपक्ष को पूर्ण ईमानदारी से रेखांकित करने के साथ किसान को त्रासदी–नायक के रूप में चित्रित करता है।

'केशर कस्तूरी' इनका प्रथम कहानी संग्रह है जो 1991 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में छः कहानियाँ संकलित है–कसाईबाड़ा (1980), भरतनाट्यम (1981), सिरी उपमा जोग (1984), तिरिया चरित्तर (1987), अकाल–दण्ड (1987) तथा केशर कस्तूरी (1991)। ये कहानियाँ स्वतंत्र रूप से भी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इन कहानियों का मूल स्वर ग्रामीण समाज की विकृतियों, विषमाताओं तथा विडम्बनाओं को चित्रित करना है। 'कसाईबाड़ा' कहानी ग्राम समाज का भयावह चित्र उपस्थित करती है। इस कहानी में सनिचरी का अनशन ग्रामीण समाज में राजनीतिक प्रतिकार की एक नई घटना है। सनिचरी द्वारा किया प्रतिकार सफल तो नहीं हुआ लेकिन इसे अपने अधिकारों के प्रति सजग प्रतिरोध की चेतना का विकास माना जा सकता है। इस कहानी में ग्राम परधान और लीडर दोनों सनिचरी के साथ छल करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। परधान से निर्धन परिवारों की लड़कियों का आदर्श विवाह करवाने की आड़ में लड़कियों को देह–व्यापार के लिए बेचा है तो लीडर सनिचरी को अनशन के लिए तैयार करवा परधानी के पद को स्वयं के लिए सुनिश्चित करने की आकांक्षा रखे है। इतना ही नहीं वह सनिचरी की जमीन भी छल से अपने नाम करवा लेता है। ग्राम समाज की विषमताओं को और भी संवेदनशीलता से उद्‌घाटित करने के लिए उन्होंने दरोगा के चरित्र को रचा है। वह भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था का ऐसा अधिकारी है जो परधान और लीडर से लाभ उठाता है और सनिचरी की वेदना को समझने तथा न्याय दिलाने की अपेक्षा उसे ही अपमानित व प्रताड़ित करता है। इस तरह सनिचरी के अनशन से आरम्भ हुए यह कहानी ग्राम परधान, लीडर और दरोगा के स्वार्थी, संवेदनहीन और कुटिल रूप को सामने लाती है। सनिचरी के साथ अधरंगी इस अन्याय का विरोध कर रहा है लेकिन ग्राम में सामूहिक प्रतिरोध के अभाव के कारण वह विवश हो जाता है।

'भारतनाट्यम' कहानी ग्रामीण समाज के पढ़े–लिखे बेरोज़गार युवक की कहानी है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने मानवीय जीवन में अर्थ के महत्त्व को भी व्यक्त किया है। 'ज्ञान' जब तक बेरोज़गार था तब तक सबकी नजरों में नकारा, निकम्मा और नालायक था किन्तु नौकरी लगते ही सबकी नज़रों में वह समझदार और लायक हो गया। हमारा समाज पैसे से व्यक्ति का सम्मान करता है। जहाँ तक कि परिवार वाले

भी अपने शिक्षित बेरोज़गार बेटे को नालायक समझकर हमेशा उसे दोष देते हैं। यह कहानी आदर्शों पर चलने वाले व्यक्ति की दयनीय स्थिति को भी सामने लाती है। क्योंकि ज्ञान अपने आदर्शों के कारण ही शिक्षक तथा केंद्रीय सरकार की नौकरी नहीं कर पाया। उसके व्यक्तित्व को अधिकारियों की चापलूसी करना स्वीकार्य नहीं था इसलिए न तो उसे एक अच्छी नौकरी मिली और न ही मिली हुई नौकरी को कायम रख पाया। हालात यह हुए कि उसकी पत्नी भी दर्जी के साथ भाग गई। पत्नी के भागने के पीछे उसकी पुत्र प्राप्ति की इच्छा तथा आर्थिक अभावग्रस्ता भी है। ज्ञान से उसे तीन बेटियाँ थी और ग्रामीण समाज में पुत्र को विशेष महत्व दिया जाता है। इसलिए ज्ञान की पत्नी भी पुत्र प्राप्ति हेतु पहले तो अपने जेठ से सम्बंध बनाती है और बाद में दर्जी के साथ भाग जाती है। पुत्र की इच्छा ज्ञान को भी है। इसलिए वह पत्नी के चले जाने का विरोध नहीं करता। वह यह अवश्य सोचता है कि उसे जाना ही था तो एक दिन पहले चली जाती। ताकि वह अपने आदर्श को टूटने से बचा लेता। क्योंकि जब हर तरफ से निराशा ही मिल रही थी तो ज्ञान ने यह निश्चय किया कि वह अपने आदर्शों को भूल अनैतिक कार्य द्वारा धन अर्जित कर पत्नी की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करेगा और उसने ऐसा किया भी, लेकिन जब घर पहुँचा तो उसके जीवन का अन्तिम सबल उसकी पत्नी उसे छोड़कर अन्य व्यक्ति के साथ चली गई थी। पत्नी के चले जाने और आदर्शों के भी टूट जाने पर वह नशा करके खरबूजे के खेत में भरतनाट्यम कर अपने भीतर के क्षोभ को व्यक्त करता है। इस प्रकार लेखक ने इस कहानी में युवा वर्ग की बेरोज़गारी, नौकरी के क्षेत्र में व्याप्त अनैतिकता व चापलूसी, भ्रष्टाचार, वर्तमान में आदर्शों की निरर्थकता तथा ग्रामीण समाज में व्याप्त लिंग भेद और अर्थ के महत्व को प्रतिपादित किया है। इस कहानी का गांव विकसित तो है पर अभी की पुरानी मानसिकता से स्वतंत्र नहीं है।

'सिरी उपमा जोग' कहानी ग्रामीण स्त्री के आत्मसमर्पण व त्याग तथा ग्रामीण शिक्षित पुरुष के स्वार्थीपन व अवसादी प्रवृत्ति को स्पष्ट करती है। इस कहानी में ऐसी ग्रामीण पत्नी है जो पति की पढ़ाई के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती है। उसने पति का हौंसला बढ़ाया। समस्त परिवार की जिम्मेदारी उठाई। जहाँ तक कि खेतीबाड़ी का काम भी स्वयं सम्भाला। इतना संघर्ष उसने मात्र इसलिए किया ताकि उसका पति पढ़–लिखकर एक बड़ा अफसर बन सके। जिसमें वह सफल भी हुई किन्तु उसका पति अच्छे पद को प्राप्त करने के पश्चात गाँव, परिवार व संतान से दूर हो जाता है। क्योंकि जिस पत्नी के सहयोग से वह उच्च पद प्राप्त करने योग्य बना अब वहीं पत्नी उसे गँवारू नजर आती है। स्वयं को शहरी जीवन के अनुरूप ढालने के उद्देश्य से वह पत्नी के संघर्ष व त्याग को भूल शहर में ही जिला न्यायाधीश की शिक्षित बेटी से दूसरा विवाह कर लेता है। उसकी पत्नी जानती है कि पति ने दूसरा विवाह कर लिया है, पर वह इसका विरोध नहीं करती क्योंकि एस.डी.एम. बनने के पश्चात् पति के बदले व्यवहार को देख उसने स्वयं ही पति को शहरी शिक्षित नारी से विवाह करने का परामर्श दिया था। यदि वह दूसरी शादी का सुझाव न भी देती तब भी वह स्वार्थी पुरुष ऐसा ही करता। पति के दूसरा विवाह करने पर वह अपने भाग्य को कोसती

नहीं, बल्कि इस नियति को स्वीकार कर अपने 10 साल के बेटे लालू और 17 साल की बेटी कमला के साथ गाँव में ही संघर्षमय जीवन जीती है। चाचा ससुर के अत्याचार को वह कई सालों से सह रही थी किंतु बेटी का रिश्ता तय होने पर उसे यह शंका रहती है कि वह लड़के वालों को गुमराह न करे। इसलिए लालू को पति के पास अपना पत्र देकर भेजती है। किन्तु वह स्वार्थी पुरुष अपने बेटे को भी पहचानने से इंकार कर देता है जहाँ तक कि उसकी शहरी बेटी लालू को चोट पहुँचाती है, चपरासी भी मारते हैं जिससे उसका खून बहने लगता है, लेकिन उस संवेदनशून्य पिता को अपने ग्रामीण बेटे पर दया नहीं आती। कहानी के अंत में चबूतरे पर गाँव की अनुपस्थिति से लालू के पिता का चैन की सांस लेना एक ओर कठोर हृदय व पाखण्डी पिता की छवि स्पष्ट करता है। दूसरी ओर इस सत्य को भी सामने लाता है कि ग्रामीण शिक्षित युवक जब उच्च पद प्राप्त कर शहरी जीवन जीने लगते हैं तो अपने गाँव से बहुत दूरी बना लेते हैं। इस कहानी में ग्रामीण और शहरी नारी के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है। ग्रामीण नारी उदार, संवेदनशील व त्यागी है तो शहरी नारी पढ़ी–लिखी संवेदनशून्य, एकाधिकार, अपरिचय, कर्कशता और सर्वग्रासी मनोवृत्ति से ग्रस्त है। यह कहानी पाठक के मन में लालू की माँ के प्रति सहानुभूति के साथ करुणा भी उत्पन्न करती है। कष्ट और वेदना को चुपचाप सहन कर लेना उसके चरित्र को अप्रत्याशित ऊँचाई प्रदान करता है, जिसे शहरी नारी का चरित्र कल्पना में भी छु नहीं सकता। अतः यह कहानी गांव के अशिक्षित लोगों की सहजता व आत्मीयता को व्यक्त करने के साथ–साथ शिक्षा प्राप्त कर गाँव से पलायन कर गए लोगों के दोहरे रूप, बेईमानी और स्वार्थ को पूर्ण संवेदना से व्यक्त करती है।

'अकालदण्ड' कहानी गाँव में अकाल की स्थिति को स्पष्ट करते हुए पुरुष द्वारा ग्रामीण नारी के शोषण और नारी विरोध को व्यक्त करती है। कहानी की मुख्य पात्र एक दलित स्त्री सुरजी है। गाँव में अकाल की स्थिति है लेकिन यह अकाल मात्र कमजोर, अशक्त और भूमिहीन लोगों के लिये है। उच्च जाति और सरकारी कर्मचारी के लिए तो गाँव का अकाल उनके लिए सुकाल है। इस अकाल का लाभ उठाकर अकाल राहत का प्रमुख सिकेरटरी दलित सूरजी पर अपनी कामुक दृष्टि रखता है। वह उसके तन को भोगने के अनेक रास्ते अपनाता है लेकिन सूरजी हर बार अपने साहस से उससे बच निकलती है। सिकरेटरी गाँव के सरपंच रंगी बाबू के सहयोग से सुरजी को कैंप कार्यालय में सिकरेटरी के विरुद्ध बयान के बहाने बुलाते हैं। सुरजी को अपने समक्ष देखकर सिकरेटरी प्रसन्न होता है कि आज उसकी वासना की तृप्ति हो गई, लेकिन सूरजी अपने साहस से हंसिये द्वारा उसकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर देती है। इस कहानी में ऐसी नारियों का चित्रण भी है जो अकाल की स्थिति में विवश होकर देह–व्यापार करती है। गुनी पंडित की बहु तथा सरपंच की बेटी अपनी देह के कारण ही जीवन में सुविधाओं को प्राप्त करती हैं। सुरजी पेट के साथ समझौता कर लेती है लेकिन देह के साथ नहीं कर पाती। इस प्रकार यह कहानी ग्रामीण नारी की यातना, छटपटाहट, विवशता, संघर्ष तथा अदम्य

जिजीविषा, प्रतिरोध की चेतना एवं नारी के साहस को जिस कोण से व्यक्त करती है, उससे कहानी अधिक मार्मिक और मूल्यवान बन गई है। अतः सुरजी शोषित व अभावग्रस्त वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही है जिनका शक्तिसंपन्न वर्ग सदैव शोषण करता रहा है लेकिन सुरजी ने सिकरेटरी के शोषण का जिस प्रकार विरोध किया यह तथ्य स्पष्ट करता है कि नारी के निम्न वर्ग से सम्बंधित होने का यह अर्थ नहीं कि उसे सहजता से पुरुष अपनी वासना का शिकार बना ले।

'तिरिया चरित्तर' कहानी भी नारी के उत्पीड़न को मुखरित करती है। कहानी की पात्र विमली अपने माता–पिता के लिए लड़का बनकर रहती है। किन्तु बालपन में हुआ विवाह विमली को अपनी शुचिता और कौमार्य को बचाकर रखने के लिए सचेत करता है। भट्ठे पर कार्य करते हुए पुरुष की कामुक दृष्टि और गाँव की लिंग भेद–भावना का उसे शिकार बनना पड़ता है। विमली विरोधी स्थितियों के होते हुए भी अपनी छवि पर आँच नहीं आने देती किन्तु कहानी तब मार्मिक बन जाती है जब विमली का ससुर उसका गौना करवाकर अपने साथ ले जाता है। कहने को वह विमली का ससुर है लेकिन अपनी कामुकता के चलते वह बेटी समान बहू से शारीरिक सुख प्राप्त करने के लिए तरह–तरह के रास्ते अपनाता है। जब हर प्रयास विफल हो जाता है तो वह धर्म की आड़ लेकर बहु का विश्वास अर्जित कर, छल से उसके साथ दुष्कर्म करता है। गाँव में उसकी वास्तविकता स्पष्ट न हो इसीलिए बहू के चरित्र पर ही आरोप लगाकर पंचायत से उसे दगनी दागने की संवेदनशून्य सजा भी दिलाता है। अतः यह कहानी उस नारी की करुण कथा है जो घर के बाहर तो पुरुष की कामुकता से स्वयं को बचा लेती है लेकिन घर के भीतर हर संभव प्रयास करने के उपरान्त पितातुल्य ससुर से अपनी रक्षा नहीं कर पाती। विमली चाहे अपनी रक्षा न कर पाई हो लेकिन उसने पुरुष की कामुकता तथा अंधी पंचायत व्यवस्था के न्याय का विरोध करने का साहस अवश्य किया जो ग्रामीण नारी में चेतना को दर्शाता है।

'केशर कस्तूरी' कहानी केशर जैसी तमाम बाल–विवाह नारियों की करुण गाथा है। कहानी में 'केशर' नैरेटर के साढू की बेटी है। अल्पायु में उसका बाल–विवाह हो गया जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि वह पढ़ नहीं पाती। बेरोज़गार पति को कोई नौकरी नहीं मिली तो वह भट्ठे पर काम करने लगा। वह हफ्ता दो हफ्ता बाद घर लौटता है। केशर घर से बाहर तक सारा काम करती है। वह ससुराल में दिन–रात मेहनत करती फिर जाकर उसके परिवार की गुजर–बसर होती।

हर समय कार्य में व्यस्त रहने के कारण उसके बेटे की भी मृत्यु हो गई। सिलाई–बुनाई से कुछ पैसे कमाती है तो पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त उसका जेठ उस पर अवैध सम्बन्ध का आरोप लगाता है। केशर ने अपने जीवन की इस नियति को स्वीकार कर लिया था इसलिए जब उसके पिता और कथावाचक ससुराल से उसकी विदाई के लिए आते हैं तो वह पिता के साथ जाने से इनकार कर देती है

क्योंकि उसका मानता है कि उसकी किस्मत में जो जैसा लिखा है मुझे वही भोगना है यदि राजा जनक समर्थ होते हुए भी अपनी बेटी के भाग्य में खुशियां नहीं ला सके तो हम गरीब क्या हैं। अतः यह कहानी निम्न परिवार की आर्थिक अभावग्रस्तता के साथ–साथ बाल–विवाह के दुष्परिणामों को भी चित्रित करती है। लेखक ने केशर के माध्यम से यह सत्य उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि हमारे समाज में सामाजिक मान्यताओं के नाम पर कैसी अमानवीय प्रथाएँ हैं और ग्रामीण नारी उनके विरोध मे ंकुछ सोचती तक नहीं बल्कि उसे अपनी नियति मानकर नरकीय जीवन व्यतीत किए जा रही है।

2017 में प्रकाशित 'कुच्ची का कानून' कहानी संग्रह में शिवमूर्ति की चार कहानियाँ संकलित है – ख्वाजा, ओ मेरे पीर! (2013), बनाना रिपब्लिक (2013), कुच्ची का कानून (2016) तथा जुल्मी। 'बनाना रिपब्लिक' और 'कुच्ची का कानून' सशक्त कथ्य की कहानियाँ है। ख्वाजा, ओ मेरे पीर! तथा जुल्मी भावनात्मक स्तर पर पाठक को अधिक छूती हैं।

'ख्वाजा, ओ मेरे पीर!' कहानी मामा–मामी के संकल्प, पारिवारिक दायित्व और प्रेम को अभिव्यक्त करती है। यह कहानी मामा–मामी के माध्यम से ऐसे दम्पति को हमारे सामने लाती है जो अपने–अपने माता–पिता की जिम्मेदारी निबाहने के कारण स्वयं साथ नहीं रह पाते। पत्नी प्रतिदिन कुछ समय के लिए पति से मिलने आती है किन्तु फिर भी उनके मध्य दूरी बनी रहती है। दाम्पत्य सम्बन्ध को निभाने की इच्छा जितनी मामी में दिखती है उतनी मामा में नहीं। एक तरह से जहाँ भी नारी को ही अपने धर्म का निर्वाह करना पड़ रहा है। ये ग्रामीण नारी ही है जो अपने स्वाभिमान को तिलांजलि देकर दाम्पत्य सम्बन्ध को बनाए हुए है।

कथावाचक मामा को जब ससुराल लेकर गए उस समय वह नव्वे वर्ष के हो चुके थे उस समय न तो मामी उन्हें अपने पास रोक सकी और न ही मामा आर्थिक स्थिति के चलते उसे अपने साथ ला सके। जीवन के अंतिम समय में मिलकर भी दोनों मिल नहीं पाए और अगले जन्म में मिलने का वायदा करके दोनों अलग हो जाते हैं। अतः यह कहानी अविकास, उपेक्षा, गरीबी, अशिक्षा, अपनापन, बीमारी और झूठी परम्पराओं में फंसे ग्रामीण समाज के दम्पति की कारूणिक वियोग गाथा है।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी दलितों में आई राजनीतिक चेतना तथा भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में उनकी दावेदारी को व्यक्त करती है। यह कहानी नाहरगढ़ गाँव के ग्राम पंचायत चुनाव की है। जहाँ आरक्षण के चलते प्रधान पद हरिजन के लिए आरक्षित है। इस सूचना ने वर्तमान प्रधान ठाकुर और पदारथ के सपनों पर पानी फेर दिया है। किन्तु दोनों अपनी राजनीति द्वारा अपने–अपने स्वामीभक्त दलित प्रत्याशी चुनाव के लिए तैयार कर देते हैं। इसमें उनका स्वार्थ है कि इन दलितों को जिताकर वे स्वयं 'प्रधान प्रतिनिधि' बनकर लाभ उठा सकें। ठाकुर का प्रत्याशी 'जग्गू' चमार है और पदारथ का 'मुन्दर' धोबी। दोनों

के मध्य सशक्त दावेदार महिला 'फुलझरियाँ' है जो ग्राम राजनीति में आए बदलाव का संकेत है। जग्गू नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है। उसे आरक्षण की शक्ति का अनुमान है। बदलाव की प्रक्रिया को वह समीप से देख रहा है, लेकिन उसका पिता अतीत के अनुभवों से मुक्त नहीं है। फुलझरियाँ की सशक्त उपस्थिति को दोनों उम्मीदार हारने की कोशिश करते हैं। उसके बेदाग चरित्र के आगे पदारथ की उसका चरित्र हनन करने की कोशिश भी व्यर्थ जाती है और अंतिम परिणाम में वह नम्बर दो पर रहती है।

इस चुनाव में ठाकुर का प्रत्याशी जग्गू जीत जाता है लेकिन जीत का प्रमाण पत्र पकड़ते समय जग्गू के हाथ काँप रहे थे और ठाकुर का दिल भी। ठाकुर प्रतीक्षा कर रहे थे कि जग्गू सर्वप्रथम उनके पास आएगा और ठकुराइन उस दलित के लिए माला बनाती है लेकिन जग्गू ठाकुर के पास नहीं आता। ठाकुर स्वार्थवश स्वयं ही जग्गू के पास चला जाता है। वहाँ पहुँचकर दलित लड़कों के कहने पर ठाकुर को दलित के घर पानी भी पीना पड़ता है और उनके जश्न में दलितों के साथ नाचना भी पड़ता है। एक तरह से यह स्थिति सामन्ती सभ्यता को दलितों द्वारा दिया गया करारा जवाब है जहाँ उनके अह्म को इतना हास्यास्पद, बेचारा और बौना बना दिया गया है कि वह दलित का शोषण करने की सोच भी न सकें।

'कुच्ची का कानून' कहानी कुच्ची के माध्यम से नारी के सिंगल पैरेंट के अधिकार के साथ ही नारी की अस्मिता एवं अधिकारों की पैरवी करती है। कहानी की मुख्य पात्र 'कुच्ची' विधवा है। विवाह के कुछ समय पश्चात ही उसके पति की अकाल मृत्यु हो गई। गाँव की प्रथानुसार उसके मायके वाले उसका दूसरा विवाह करवाना चाहते हैं लेकिन कुच्ची अपने वृद्ध सास–ससुर की सेवा का संकल्प लेती है। वृद्ध व बीमार सास–ससुर को वह बेटे से बढ़कर सहारा, अपनत्व और प्रेम देती है। कुच्ची की कोई संतान नहीं थी इसलिए चचेरा जेठ उसकी सम्पत्ति हथियाने का प्रयास कर रहा था। वह कुच्ची को प्रेम व जोर जबरदस्ती से अपने वश में करने के अनेक हथकंडे अपनाता है किंतु कुच्ची जेठ की स्वार्थी मनोवृति को पहचान जाती है। वह स्त्री–विरोधी इस समाज में अपनी अस्मिता, परिवार और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए दूसरे के बीज को अपनी कोख में रोपकर अपना वारिस पैदा करने का निर्णय लेती है। कुच्ची का यह निर्णय पुरुष प्रधान समाज की जड़ें हिलाने वाला है। एक तरफ जहाँ पितृशक्ति विरोध में यह मातृसत्ता की स्थापना थी वहीं दूसरी तरफ बनवारी की धूर्तता से उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करने का सपना भी चूर–चूर हो गया। स्त्री की स्वतन्त्रता पर नकेल डालने वाली सामंती संस्कृति भी कुच्ची के निर्णय के पक्ष में नहीं थी। इसलिए बनवारी से लेकर गाँव भर के लोग उसकी राह का रोड़ा बनते है। कुच्ची के विरुद्ध पंचायत बिठाकर जब उसे अपराधी माना जाता है तो कुच्ची अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए भरी पंचायत में यह घोषणा करती है कि उसके गर्भ में पल रहे बच्चे का पिता उसका पति नहीं कोई अन्य व्यक्ति है जिसके नाम से गाँव का कोई सम्बन्ध नहीं। सातवीं पास कुच्ची अपनी तर्कशीलता से पुरुष दंभ से भरे पुरुषवादी समाज को निरुत्तर कर देती है। पंचायत में सामाजिक नियम, पुराणों और मनुवादी

विधानों का हवाला देकर कुच्ची को दोषी साबित करने की प्रत्येक कोशिश की जाती है लेकिन कुच्ची के वर्जिन प्रश्न पंचायत को ही कटघरे में डाल देते हैं। कुच्ची का पंचायत से प्रश्न था कि जब मेरे शरीर के प्रत्येक अंग पर मेरा हक है तो मेरी कोख पर किसका हक होगा। जब कोख उसकी है तो उसमें पलने वाले बच्चे पर उसका पूर्ण अधिकार क्यों नहीं है। कानून, समाज के ठेकेदार प्राचीन विद्वानों तथा शास्त्रों के समक्ष किए गए कुच्ची के प्रश्न पंचायत को मूक बना देते हैं। कुच्ची पुत्र के नाम के आगे माँ का नाम ही पर्याप्त मानती है। अतः कुच्ची जैसी माताएँ हमें पौराणिक काल से लेकर ऐतिहासिक आख्यानों में मिलती हैं लेकिन हमारे सभ्य, सुशिक्षित और आभिजात्य वर्ग के सामान्य समाज के लिए इसका निषेध है। शिवमूर्ति ने कुच्ची के कानून द्वारा इस स्थिति को परिवर्तित करने का प्रयास किया है।

'जुल्मी' इस संग्रह की अंतिम कहानी है जो 1970 के आसपास लिखी गई शिवमूर्ति की आरम्भिक रचना है। 'जुल्मी' की कथा 'ख्वाज़ा' ओ मेरे पीर! के कथ्य से कुछ हद तक समानता रखती है। मिथ्या दम्भ से पूर्ण कोइली के ससुराल वाले अस्पताल में भर्ती उसके एकमात्र भाई को देखने जाने की अनुमति नहीं देते। कोइली पति से आस लगाए बैठी थी लेकिन पिता की आज्ञा के बिना पति भी कोइली की इच्छा पूर्ण नहीं कर पाता। पति की कायरता के चलते कोइली अपने मरणासन्न अवस्था में पड़े भाई को देखे अकेले ही अस्पताल चली जाती है। कोइली द्वारा बिना आज्ञा के अकेले ही चले जाने से ससुराल वाले क्रोधित होते हैं। भाई की मृत्यु पश्चात तेरहवीं पर ससुर उसके मायके आते हैं लेकिन क्रोधवश कोइली की विदाई की कोई बात नहीं करते। कोइली द्वारा ससुर की आज्ञा की अवहेलना करने की उसे यह सजा मिलती है कि न तो ससुराल पक्ष से कोई उसे लेने आता है और न ही कोई संदेशा भिजवाया जाता है। मायके वाले भी ससुराल से कोई संदेशा न मिलने के कारण उसे नहीं भेजते। पति उसे लेना आना चाहता है लेकिन बिना भात खाए की रीति निभाए ससुराल न आने की विवशता उसे रोकती है। इस प्रकार दोनों पक्षों का अहम् और झूठे मान–सम्मान की रक्षा के चलते पति–पत्नी अलग हो जाते हैं। मायके वाले कोइली का दूसरा विवाह करने पर जोर देते हैं किन्तु कोइली के लिए किसी अन्य के विषय में सोचना असम्भव था। पति की गिनी–चुनी स्मृतियों के सहारे वह आठ साल व्यतीत करती है। आठ वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् जब माता–पिता द्वारा उसका दूसरा विवाह करवा दिया जाता है तो उसके मन–मस्तिष्क में जो पहले पति की स्मृति और धुंधला सा अक्स बसा था जिसकी वह प्रतीक्षा में थी, वह सब निर्दयता के साथ छीन जाता है। कोइली दूसरे पति के संग जाने को विवश हो जाती है। कुछ वर्षों पश्चात बुआ द्वारा कोइली की पहले पति से मुलाकात करवाई जाती है। पहले पति को देखकर उसका हृदय उमड़ पड़ता है। दोनों मिलकर अपने विगत पन्द्रह वर्षों के लाभ–हानि का हिसाब करते हैं और कहानी का अन्त हो जाता है। इस प्रकार यह कहानी चाहे शिवमूर्ति की आरिम्भक रचना है फिर भी इसमें पारिवारिक अहम् व झूठे मान–सम्मान के कारण नारी को जो पीड़ा मिली उसकी पूर्ण संवेदनशील अभिव्यक्ति हुई है।

उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त इनकी एक सृजनात्मक पुस्तक 'सृजन का रयासन' भी प्रकाशित हुई है जिसमें संस्मरणात्मक शिल्प में लेखक के जीवनानुभवों के साथ–साथ साहित्य के अनेक प्रश्नों पर संवाद की अभिव्यक्ति हुई है।

इनके सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात यह तथ्य उद्घाटित होता है कि शिवमूर्ति पूर्ण रूप से ग्रामीण जीवन से जुड़े हैं। इसलिए इनके साहित्य में ग्रामीण जीवन की विषमताएँ और अंतविर्रोध अपने नग्न यथार्थ के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं। इनकी रचनाएँ ग्रामीण किसान, उसका संघर्ष, दलित व नारी के उत्पीड़न को केन्द्र में रखे है। इनके द्वारा रचित प्रत्येक कहानी विशेष रूप से नारी की स्थिति को स्पष्ट करती है। यहाँ तक कि इन कहानियों के मुख्य पात्र भी स्त्री हैं।

विमली और सनिचरी के साथ समाज, कानून, सरकारी तंत्र के हथकण्डे ग्रामीण जीवन का कटु यथार्थ सामने लाते हैं। 'अकालदण्ड' की सुरजी तथा 'केशर–कस्तूरी' की केशर के साथ जो घटित हुआ उसके लिए पितृसत्तात्मक समाज की क्रूरतम विकृतियाँ दोषी हैं। जिन्हें शिवमूर्ति ने यथार्थवादी अभिव्यक्ति दी है। इनकी कहानियां आजादी के उपरान्त भारतीय गाँव की कहानियाँ हैं। जो विकास के नाम पर होने वाले दोहन को व्यक्त करती हैं। इस समय ग्रामीण जीवन इतना विषाक्त हो गया है कि सामान्य व्यक्ति के लिए साँस लेना भी कठिन है। पंचायती राज के नाम पर स्त्रियों व दलितों का शोषण आम बात है। किन्तु इनकी नारी पंचायत के गलत निर्णयों का विरोध करती है। विमली तो विरोध के पश्चात् भी प्रताड़ित हुई लेकिन कुच्ची ने अपने तर्कों व प्रश्नों से पितृसत्तात्मक पंचायत को मूल बना दिया है। शिवमूर्ति की नारी चाहे ग्रामीण व परम्परावादी नारी रूप को भी बहुत हद तक अपनाए है लेकिन उसमें निडरता, साहस व संघर्ष की शक्ति विद्यमान है। नारी दमित हो रही है लेकिन उसमें चेतना भी है।

इनकी प्रत्येक कहानी मानव के मनोभावों को सहलाती नहीं बल्कि दहलाती है। ग्रामीण स्त्री–पुरुषों को स्वाभिमान से जीने का राह दिखाती है। इनमें जीवन और समाज के कटुतम यथार्थ के समक्ष समाज के पुराने आदर्श टूटते हैं तो नये सामाजिक आदर्श निर्मित भी होते हैं।

शिवमूर्ति की भाषा भी सामान्य जीवन से सम्बंधित है। ग्रामीण जीवन के राग–द्वेष, संस्कार, इनकी सहज भाषा से स्वाभाविक रूप से उभरते हैं। भाषा के इसी रूप ने उनकी कहानियों को जीवंत बनाया है। वह स्वयं कहते हैं कि ''भाषा की ताकत मैं लोक जीवन और लोक गीतों से बटोरता हूँ।'' इनके कई शब्द गांव की बोली में एक अलग प्रभाव उत्पन्न करते हैं जैसे–चरित्तर (चरित्र), चाह (चाय) आन्हर–बहिर (अंधा–बहरा), परसाद (प्रसाद), जोग (योग्य), डरेवर (ड्राइवर) आदि। इनकी इस ग्रामीण भाषा का संवेदना से अधिक रिश्ता है। शिवमूर्ति का जन्म ग्रामीण परिवार में हुआ इसलिए ग्रामीण जीवन उनकी कहानियों में पूर्ण अभिव्यक्ति पाने में सफल हुआ है। ये ऐसे कहानीकार हैं जो ग्रामीण समाज के

अतिरिक्त किसी जीवन या समाज के विषय में कुछ लिख ही नहीं सके। क्योंकि उनका मानना है कि गांव से आवश्यक मुझे कुछ लगा ही नहीं। इसलिए ग्रामीण जीवन की प्रतिबद्धता ने उन्हें कभी स्वयं से अलग होने ही नहीं दिया।

17.4 निष्कर्ष

शिवमूर्ति एक ऐसे ग्रामीण जीवन के कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में किसी उथले यथार्थ के काल्पनिक चित्र नहीं हैं। ये कहानियाँ हिन्दी साहित्य में ग्रामीण, दलित व वंचितों की खोई हुई अस्मिता को वापिस पाने का प्रयास हैं। इनकी कहानियों में ग्रामीण समस्याएँ हैं तो समाधान भी कहीं बाहर से नहीं आते, बल्कि कोई साधारण सर्वहारा वर्ग का व्यक्ति उठता है और आगे बढ़कर परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए नायक में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा नायक जो पिसकर भी संघर्ष और चेतना से पूर्ण है। अतः इनकी कहानियाँ ग्रामीण उत्पीड़न को चित्रित करने के साथ–साथ ग्रामीण व्यक्ति में आई चेतना को भी मुखरित करती हैं इसलिए इनकी कहानियों में चित्रित गांव का रूप पहले के गांव से परिवर्तित दिखता है। क्योंकि शिवमूर्ति प्राचीन गांवों की नहीं वर्तमान ग्रामीण समाज और उसकी समस्याओं को अभिव्यक्ति देते हैं। उन्होंने हितों के स्तर पर किसान–जमींदारों के ध्रुवीकरण को ही ग्रामीण जीवन का एकमात्र सत्य नहीं माना, बल्कि स्वयं किसानों–दलितों के आंतरिक, पारिवारिक जीवन पर दृष्टि रखी। इनमें भी सबसे अधिक नारी उत्पीड़न को कई कोण से प्रस्तुत किया। इनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का जो जीवंत वर्णन हुआ है उसने इन्हें ग्रामीण चेतना के कहानीकार के रूप में स्वयं सुनिश्चित कर दिया है।

17.5 कठिन शब्द

1. अर्जित 2. पितृसत्तात्मक 3. आजीविका 4. जीविकोपार्जन 5. ख्याति 6. ध्रुवीकरण 7. प्रतिरोध 8. चापलूसी 9. अप्रत्याशित 10. जिजीविषा

17.6 अभ्यास प्रश्न

प्र. शिवमूर्ति ग्रामीण चेतना के कहानीकार है? सिद्ध कीजिए।

प्र. शिवमूर्ति की कहानियाँ ग्रामीण जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है, स्पष्ट करे।

17.7 पठनीय पुस्तकें

1. त्रिशूल – शिवमूर्ति
2. तर्पण – शिवमूर्ति
3. आखिरी छलाँग – शिवमूर्ति
4. अगम बहै दरियाव – शिवमूर्ति
5. 'केशर कस्तूरी' – शिवमूर्ति
6. कुच्ची का कानून – शिवमूर्ति
7. सृजन का रसायन – शिवमूर्ति
8. हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश – मधुरेश

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

18.0 रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

18.3.1 'तिरिया चरित्तर' कहानी की मूल संवेदना

18.3.2 'कसाईबाड़ा' कहानी की मूल संवेदना

18.4 निष्कर्ष

18.5 कठिन शब्द

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 पठनीय पुस्तकें

18.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' तथा 'कसाईबाड़ा' कहानियों की मूल संवेदना से अवगत हो सकेंगे।

18.2 प्रस्तावना

हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति ग्रामीण चेतना के कथाकार के रूप में विशेष स्थान रखते हैं।

इनकी कहानियाँ ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण कथासाहित्य ग्रामीण जीवन के यथार्थ को पूर्ण संवेदना के साथ व्यक्त करता है। इनके अनुसार, ''व्यक्ति जिस वर्ग या वर्ण में पैदा होता है, उसी की सोच, आदर्श व आकांक्षाओं को क्रमशः अंगीकार कर लेता है। समाज में जो मान–सम्मान, तिरस्कार–घृणा–प्यार, हिंसा या भय उसे मिलता है, वही उसके अवचेतन का हिस्सा बनता चलता है। प्रायः बदले में वह इन्हीं संवेगों को समाज के लिए वापिस करता है। लेकिन विवेकवान होने के चलते ही वह यदाकदा इसके औचित्य–अनौचित्य पर भी चिंतन करता है। ...लेखक के हिस्से में आमजन की अपेक्षा जो भाव अधिक प्रबल माना जाता है, वह है सम्वेदना। इसी के चलते वह समाज में व्याप्त दुःख–दर्द, अन्याय व शोषण को ज्यादा गहराई से महसूस करता है और प्रतिक्रिया करता है। इसी के चलते वह अपने वर्ग के मूल्यों का अतिक्रमण करते हुए भी शोषित–पीड़ित आमजन की चिन्ता और सरोकार से खुद को जोड़ लेता है।'' शिवमूर्ति भी ग्रामीण जीवन में रचे–बसे हैं इसलिए अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन की जटिलताओं और विषमताओं को अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त माने जाते हैं।

18.3 निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' और 'कसाईबाड़ा' कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताओं, अंतर्विरोधों तथा दलित नारी की पीड़ा के यथार्थ को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इनमें जाति–व्यवस्था की गहरी जड़ें मानवीय संबंधों को छिन्न–भिन्न करती दिखती हैं। स्त्री, दलित को गहन यातनाओं व विवशताओं के साथ संघर्ष करना पड़ता है। उनके इसी संघर्षमय जीवन को व्यक्त करना लेखक की संवेदना का मूल रहा है।

18.3.1 'तिरिया चरित्तर' कहानी की मूल संवेदना

शिवमूर्ति के लेखन की विशेषता है कि उनके पास ग्रामीण जीवन के सघन अनुभव, चित्र एवं बिम्ब हैं जिनके आधार पर वह अपनी कहानियों का सृजन करते हैं। इनके द्वारा रचित 'तिरिया चरित्तर' कहानी भी ग्रामीण समाज की संकीर्णता, अंधी पुरुषवादी पंचायत व्यवस्था तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करती नारी के साथ हो रहे उत्पीड़न को बहुत ही संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करती है।

ग्रामीण समाज में व्याप्त सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था आज भी परम्परागत लिंग भेद की संकीर्ण मानसिकता से प्रभावित है। ग्रामीण नारी को प्रायः गृहकार्य तक सीमित रखा गया है यदि वह गृहकार्य के अतिरिक्त पुरुष समान मिल–कारखानों में जाकर कार्य करे तो यह ग्रामीण समाज उसके चरित्र पर लांछन लगाने से पीछे नहीं हटता। शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' कहानी की विमली अपने माता–पिता को आर्थिक सहयोग देने हेतु जब ईंट के कारखाने में कार्य करती है तो उसे और उसकी माँ को गाँव भर की बातों का

सामना करना पड़ता है, ''दुनिया भर के चोर–चाई का अड्डा है भट्ठा। लौंडे–लपाड़े! गुंडा–बदमाश! रात–बिरात आते–जाते रहते हैं। नौ–दस साल की लड़की छोटी नहीं छोटी, आन्हर हो गई है बुढ़िया! ईंट पथवाएगी। 'पाथेगा' कोई ढंग से ? तब समझ में आएगा।'' गाँव की इन बातों का विमली के पिता पर भी यह प्रभाव पड़ा कि वह दोनों माँ–बेटी पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है। किन्तु विमली की माँ उसे समझाकर चुप करवा देती है। चाहे विमली और उसके माता–पिता को गांव वालों की बातों का सामना करना पड़ा, किन्तु विमली का यह प्रयास गांव भर की लड़कियों तथा बहुओं को लिंग–भेद की संकुचित मानसिकता से बचा लेता है। जिस ईंट कारखाने में कार्य करने पर विमली को गांव का विरोध देखने को मिला, बाद में उसी कारखाने में गांव की आधी बिटियां और बहुएं मजदूरी के लिए जाती हैं। एक तरह से शिवमूर्ति ने लिंग–भेद जैसी संकुचित मानसिकता का खण्डन विमली से करवाया है। माता–पिता के लिए समर्पित विमली को देखकर यही कहा गया है कि, ''किस लड़के से कम है वह 15–16 रुपए रोज़ कमाती है.... महतारी बाप का जितना ध्यान विमली रखती हैं, उतना तो इस गाँव में किसी का लड़का भी नहीं रखता।'' अतः विमली लिंग–भेद से ग्रस्त मानसिकता वालों के समक्ष यह उदाहरण रखती है कि माता–पिता के प्रति अपने दायित्व को निभाने के लिए बेटे का जन्म लेना ही आवश्यक नहीं, क्योंकि बेटी भी माता–पिता की आर्थिक सहायता कर उनका संबल बन सकती है। विमली द्वारा गाँवों के विरुद्ध जाकर पुरुष कारखाने में स्वयं की रक्षा करते हुए कार्य करना लिंग–भेद जैसी मानसिकता की निरर्थकता सिद्ध करता है।

यह कहानी समाज में नारी को पग–पग पर मिलने वाले बांधनों, विरोधों और शोषण के विविध रूपों को चित्रित करती है। बाल जीवन में ही बेटी का विवाह कर उसके अबोध मन को अपरिचित व्यक्ति से बांध देना, उसके मनोभावों को दमित करता है। विमली को भी इस स्थिति का सामना करना पड़ा है। बचपन में उसकी शादी बिसराम के बेटे 'सीताराम' से हुई लेकिन गौना कई सालों तक नहीं हुआ। सीताराम के प्रति समर्पित विमली कारखाने में ड्राईवर बाबू के प्रति आकर्षित होती है किन्तु उसके भीतर सचेत बैठी ब्याहता नारी उसे बार–बार पत्नी के दायित्व का बोध करवाती है। जबकि पति की कल्पना करने पर भी उसे ड्राइवर बाबू का चेहरा ही नज़र आता। उसका नारी हृदय प्रेम की इच्छा रखता है जो ड्राइवर बाबू से पूर्ण भी हो सकती है किन्तु समाज के बंधन तो उसे अपने पति से बांधते हैं जिसे उसने कभी देखा ही नहीं। देखा जाए तो पितृसत्तात्मक समाज में नारी को अधिकार में रखने के लिए अनेक नियम, बंधन और परम्पराएँ बनाई है जिनके सहारे वह नारी हृदय को दरकिनार कर अपने अधीन रखता है। यदि विमली इस विवाह–बंधन में बंधी न होती तो ड्राइवर के प्रेम व विवाह प्रस्ताव को न ठुकराती। बचपन में हुआ उसका यह बाल विवाह उसके संपूर्ण जीवन को पीड़ादायक बनाने का कारण रहा है। शिवमूर्ति का संवेदनशील हृदय नारी मन की वेदना को गहराई से समझता है इसलिए कहानी में व्यक्त विमली की विदाई का बिम्ब नारी मन की अंतर्वेदना को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में सक्षम है। एक नारी विदाई के समय किन–किन मनोभावों से ग्रस्त

होती है उसका संवेदनशील दृश्य कहानी में इस प्रकार उकेरा गया है, ''पहले माई का पैर पकड़कर रोती है विमली। फिर बप्पा का। फिर सखियाँ! पड़ोसिनें! भट्ठे की मजदूरनें! ...डोली उठती है तो वह चीत्कार कर उठती है–

''आपन देसवा छोड़ाया मोरे बपई...
आपन दुअरिया छोड़ाइउ मोरी माई...''

...तिरिया जनम काहे देहु रे विधाता ?

डोली पर पड़े 'ओहार' की फाँक से झांककर देखती है विमली। यह छूटी बिसुई! यह बुढवा पीपल! कालीजी का मन्दिर! खान साहब का भट्ठा! ...दूर तक जाकर, विमली के रोने की आवाज के साथ ही डोली भी अदृश्य हो जाती है। विदाई का यह दृश्य नारी की वेदना को व्यक्त करने के साथ–साथ पाठक के हृदय को पूर्ण करुणा से भर देता है।

पुरुष के लिए नारी मात्र वस्तु है इसलिए उसका भोग करना वह अपना अधिकार समझता है किन्तु उसकी यह भोगी प्रवृत्ति नारी को कितना कष्ट देती है, इसका चित्रण कहानी में अनेक बार मिलता है। अपने अनदेखे पति को समर्पित विमली, जो पुरुषों के मध्य कारखाने में काम करते हुए भी पुरुष की भोग्या नहीं बनी, वहीं ससुराल में अपने विलासी ससुर की हवस का शिकार बनी। ससुर की हवस और विमली की वेदना का शिवमूर्ति ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। विमली के माध्यम से लेखक ने उन ग्रामीण नारियों की वेदना का चित्रण किया है जो पिता समान ससुर द्वारा शारीरिक शोषण की पीड़ा को सहती है। इस पुरुषवादी समाज में नारी की पीड़ा शारीरिक शोषण पर ही समाप्त नहीं होती, बल्कि उसके लिए तो और भी त्रस्त स्थिति उसका इंतजार करती है। क्योंकि नारी द्वारा न्याय माँगने पर उसे इस पुरुषवादी व्यवस्था से अन्याय ही मिलता है। ग्रामीण समाज की नारी तो अंधी पंचायती व्यवस्था के कारण अधिक शोषित होती है। 'तिरिया चरित्तर' ग्रामीण अंधी पंचायत व्यवस्था के वास्तविक रूप को हमारे सामने लाती है। प्रेमचंद के समय पंच परमेश्वर था, किन्तु शिवमूर्ति ने जिस पंच व्यवस्था का चित्रण किया है उसमें परमेश्वर का 'सत' नहीं है। 'पंचपरमेश्वर' में जो पंच व्यवस्था एक नारी के साथ न्याय करती है। 'तिरिया चरित्तर' में वही व्यवस्था विमली पर अविश्वास करती है। यह अंधी पंच व्यवस्था विलासी ससुर को निर्दोष साबित कर विमली को 'दगनी दागना' जैसी संवेदनशून्य सजा सुनाकर अपने संवेदनहीन होने का परिचय देती है। महाभारत की भाँति विमली को भी भरे समाज में आरोप लगाते हुए अपमानित किया गया। सच्च चरित्र होते हुए भी उसके चरित्र पर लांछन लगाए जाते हैं। विमली इस पंचायत व्यवस्था के न्याय को अस्वीकार करके अपना विरोध प्रकट करती है, ''मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अन्धा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का 'सत' नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ–आ–क–थू...! देखूँ कौन माई

का लाल दगनी दागता है।'' विमली इस अंधी–बहरी पंच व्यवस्था का विरोध तो करती है किन्तु परिणाम शून्य है किन्तु पुरुष एक जुट है लेकिन नारियों में एकता नहीं। विधवा 'बिरजा' सत्य जानती है लेकिन लोक प्रश्न से डरते हुए चुप रहती है। मनतोरिया की माँ के विरोध को उसका पति दमित कर देता है। अन्ततः विमली इस पुरुषवादी समाज में बलि चढ़ा दी जाती है। विमली के दगनी दागने का जो चित्र लेखक ने उकेरा है वह पुरुष की पूर्ण संवेदनशून्यता को व्यक्त करता है, ''छन्न! कलछुल खाल से छूते ही पतोहू का चीत्कार कलेजा फाड़ देता है। कूदती लोथ! मांस जलने की चिरायँध! चीत्कार सुनकर एकाध कुत्ते भौंकते हैं, एकाध रोने लगते हैं।''

पंच का यह क्रूर न्याय पुरुष की निष्ठुरता को भी सामने लाता है। कितना वेदना पूर्ण दृश्य है कि कुत्ते तक भौंकने तथा रोने लगे इस अमानवीय कृत्य को देखकर पर पौरुष का बल रखने वाले समस्त ग्रामीण चुप–चाप यह हिंसात्मक कार्य होता देखते रहे। कहानी का यह अन्तिम दृश्य पाठक की संवेदना को गहराई से छुता है। पंचायत द्वारा विमली के साथ हुआ यह न्याय पंचायत व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाने के साथ–साथ समस्त ग्रामवासियों के समक्ष भी अनेक प्रश्न रखता है। जिसमें से एक प्रश्न धर्म पर भी है क्योंकि विमली के ससुर ने शिवाले पर सत्यनारायण की कथा और व्रत रखने की बात कहकर विमली का विश्वास अर्जित किया। वह नहीं समझ सकी कि धर्म के बहाने, उसमें विश्वास उत्पन्न किया जा रहा है। वह सोचती है कि, ''इतने बड़े संकट से उबार लिया सत्यनारायण सामी ने। उसके ससुर का दिमाग सही कर दिया। .... सत्यनारायण की कथा घर में होनी चाहिए थी।'' अन्त में यही आस्था और विश्वास उसकी दुर्गति का कारण बनता है। क्योंकि बिसराम शिवाले से लौटकर ही चरनामरित और पंजीरी का दोना विमली को परसाद रूप देता है जिसमें अफीम होने के कारण विमली ने अपनी सूद खो दी और बिसराम उसके साथ दुष्कर्म करने में सफल हुआ। साथ ही स्टेशन पहुँचकर वह प्रभु पर ही सब छोड़ती है लेकिन प्रभु ने भी उस पीड़ित नारी का साथ न देकर दुष्कर्मी बिसराम का साथ दिया। तो ऐसे में ईश्वर की सत्यततः पर भी यह कहानी प्रश्न चिह्न लगाती है कि आखिर ईश्वर भी नारी के साथ न होकर अन्यायी पुरुषवादी मानसिकता के साथ है।

अतः 'तिरिया चरित्तर' कहानी विमली के माध्यम से ग्रामीण नारी की विडम्बनाओं का चित्र उकेरती है। इस कहानी में व्यक्त नारी की पीड़ा लेखक की उस मानवीय प्रकृति तथा संवेदना की पीड़ा है जो उन्हें विमली जैसी नारियों को अन्याय से न बचा पाने के कारण सालती है। यही पीड़ा 'विमली' को ग्रामीण नारी की प्रतिनिधि बनाने के लिए उन्हें प्रेरित करती है। क्योंकि मात्र विमली ही नहीं, अनेकों ग्रामीण नारियाँ विमली की भाँति पुरुषों की विलासी प्रवृत्ति का शिकार बन त्रस्त जीवन जीने को विवश होती हैं। शिवमूर्ति उन्हीं समस्त उत्पीड़ित नारियों की पीड़ा को विमली के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

18.3.2 'कसाईबाड़ा' कहानी की मूल संवदना

शिवमूर्ति द्वारा रचित 'कसाईबाड़ा' कहानी ग्रामीण समाज और सत्तातंत्र में बैठे सत्ताधारियों के भ्रष्ट रूप को उजागर करती है। जिससे मुख्य रूप से तीन पक्ष हमारे सामने आते हैं। पहला भ्रष्ट ग्राम प्रधान तथा पंचायती चुनाव के उम्मीदवारों का स्वार्थीपन, दूसरा भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था तथा तीसरा भ्रष्ट व्यवस्था के स्वार्थ फलस्वरूप दलित वर्ग की पीड़ा तथा नारी उत्पीड़न।

पंचायत चुनाव के दो उम्मीदवारों के मध्य संघर्ष तथा आपसी स्वार्थ को चित्रित करती यह कहानी ग्रामीण समाज व्यवस्था और शासन तंत्र के कसाईबाड़ा में परिवर्तित होने के यथार्थ को भी व्यक्त करती है। जिस प्रकार कसाई अपने स्वाद के लिए बेजुबान निर्दोष जानवरों को मार देता है उसी भांति गाँव–प्रधान, लीडर तथा दरोगा की कसाईबाड़ा प्रवृत्ति निर्दोष दलित ग्रामीण जनता को अपने स्वार्थ का ग्रास बनाती है। जिसे दलित ग्रामवासी की विषमता बढ़ रही है। कहानी में पंचायती चुनाव के दो उम्मीदवार हैं–एक वर्तमान ग्राम प्रधान खिरोधर सिंह और दूसरा इस पद का प्रबल दावेदार लीडर रामबुझावन जो एक शिक्षक है। अपने स्वार्थ और पद की लोलुपता ने दोनों को इतना निर्दयी बना दिया है कि वे इस पद–प्रतिष्ठा को प्राप्त करने अर्थात् हथियाने के लिए अनेक हथकंडे अपनाते हैं। यहाँ तक कि अपने स्वार्थ हेतु एक–दूसरे तथा निर्दोष जनता की बलि देने में भी संकोच नहीं करते हैं।

कहानी में प्रधान जी अपने पद का सुख तथा लाभ भविष्य में भी कायम रखने के उद्देश्य से इलेक्शन के मात्र छः महीने पहले गरीबी उन्मूलन के नाम पर 'आदर्श अन्तरजातीय सामूहिक विवाह' करवाकर ग्रामीण जनता के हृदय में देवता का स्थान ग्रहण कर लेता है। क्योंकि दहेज–प्रथा और जात–पात की संकीर्ण मान्यताओं पर कुठाराघात करता यह सामूहिक विवाह गरीब कन्याओं के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण हेतु गाँव–समाज के इतिहास में रचे गए एक नये अध्याय की शुरुआत थी। प्रधान जी का यह प्रयास उनके वोट बैंक को पक्का तो करता है किन्तु इस समारोह की ओट में गरीब बेटियों की देह धन्धेबाजों को बेच दी गई थी, यह वास्तविकता अधिक देर छिपी नहीं रहती। धन्धेबाजों के चँगुल से भागी सुगनी यह सत्य कहानी की प्रमुख पात्र सनिचरी के समक्ष रखती है, ''काकी रे, हमारी जिनगी माटी हो गई।''... ''काकी, अपना प्रधान कसाई है। इसने पैसा लेकर हम सबको बेच दिया है। शादी की बात ध ोखा थी। हम सबको पेशा करना पड़ता है, रूपमती को भी। अमीरों के घर सोने भेजा जाता है।'' सुगनी द्वारा प्रधान की जो वास्तविकता सामने आई है वह प्रधान के कसाईपन को व्यक्त करने के साथ–साथ दलित ग्रामीण जनता के शोषण को व्यक्त करती है। अतः कह सकते हैं कि प्रधान जो गाँव के विकास तथा ग्रामीण जनता की समस्याओं को समाप्त करने के लिए होते हैं वही जब अपने स्वार्थ को सर्वोपरि रखे तो ग्रामीण जनता अपने उद्धार के लिए किससे आस लगाएगी। जिस प्रधान को ग्रामीण कन्याओं की रक्षा करनी चाहिए

वही जब उनके उत्पीड़न का कारण बन जाए तो ऐसे में गाँव प्रधान का क्या अस्तित्व रहेगा। उन अशिक्षित ग्रामीण लोगों का प्रयोग मात्र गाँव का प्रधान ही नहीं कर रहा, बल्कि इस प्रधान पद को हासिल करने की इच्छा रखने वाला लीडर जी भी कम नहीं। इस सामूहिक विवाह का सत्य सामने आने पर वह सनिचरी को प्रधान के खिलाफ प्रदर्शन करने के लिए उकसाता ही नहीं बल्कि गाँव भर में प्रधान के खिलाफ विष घोलने का कार्य भी करता है। प्रत्यक्ष रूप से वह सनिचरी के विरोध का समर्थन कर रहा है किन्तु परोक्ष रूप से वह अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा है। सनिचरी के साथ जो संघर्ष वह कर रहा है उसकी पृष्ठभूमि में उसकी अनेक महत्वकांक्षाएँ हैं जैसे–''प्रथम तो अगली बार होने वाले प्रधानी के इलेक्शन में, जैसे भी हो, पुराने प्रधान को हराकर गाँव–प्रधान बनना। ...फिर ब्लॉक प्रमुख, फिर एमेले, फिर मिनिस्टर। एयर कंडीशंस कोश में देशाटन। ये सब कठिन संघर्ष की माँग करते हैं। सतत प्रयत्न। प्रधानी की फील्ड तैयार करने का इससे बड़ा चांस फिर कब आएगा ?'' स्पष्ट है कि लीडरजी को गाँव की उन लड़कियों की चिंता नहीं है जिन्हें प्रधान जी ने बेच दिया है बल्कि उन्हें तो एक सुअवसर मिला है जिसका प्रयोग कर वह प्रधान को गांव वालों की नजरों में गलत ठहराकर स्वयं प्रधान का पद सुनिश्चित कर सकता है। सनिचरी के भोलेपन का लाभ वह मात्र इस पद के लिए ही नहीं कर रहा, बल्कि प्रधान के खिलाफ मुख्यमंत्री को दरखास्त देने के बहाने सनिचरी से कोरे कागज़ पर अँगूठा लगवाकर उसकी दो बीघा जमीन अपने नाम कर लेता है।

पद, प्रतिष्ठा तथा बल से जहाँ प्रधान तथा लीडर ने अपने स्वार्थ की पूर्ति की वहीं पुलिस दरोगा भी पीछे नहीं रहा। प्रधान पर चले केस के कारण दरोगा को भी दोनों पक्षों–प्रधान तथा लीडर से रिश्वत लेने का अवसर मिल गया। दरोगा, प्रधान तथा लीडर की वास्तविकता जानता है फिर भी अपने स्वार्थ के कारण उन्हें सजा न दिलाकर सनिचरी को ही दोष देते हुए कहता है, ''हूँ, लड़की बेचकर अब नकल करने चली है साली! क्यों पैदा किया गूलर के फूल जैसी बिटिया ? बोल मुझसे पूछकर पैदा किया ?... बुला अपने खसम को। साले ने क्यों पैदा की ऐसी लड़की ?'' सनिचरी के साथ दरोगा द्वारा किया गया अमानवीय व्यवहार पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट रूप को सामने लाता है। पुलिस व्यवस्था न्याय दिलाने के लिए होती है किन्तु दरोगा जैसे भ्रष्ट स्वार्थी लोग मात्र अपना स्वार्थ देखते हैं। गरीब जनता के साथ न्याय हो या अन्याय इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह तो स्वयं ग्रामीण जनता के भोलेपन का लाभ उठाकर उन्हें भयभीत कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। ऐसे भ्रष्ट दरोगा ग्रामीण जनता को भयभीत तो करते हैं किन्तु दलित नारी के साथ और भी अधिक अन्याय करते हैं। सनिचरी प्रधान के खिलाफ रिपोर्ट लिखने का अनुरोध दरोगा से करती है परन्तु सनिचरी द्वारा यह ज्ञात होने पर की प्रधान ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाया है और जिस लड़की को उसने बेचा है वह उस शारीरिक संबंध से इस दुनिया में आई है तब दरोगा प्रधान पर कोई कार्यवाई नहीं करता बल्कि सनिचरी को आरोपी मानते हुए कहता है, ''तो कल को अगर प्रधान जी ने फिर पैदा करके बेच दिया तो मैं फिर रिपोर्ट लिखता फिरूँगा मुफ्त में ? तुम पहले थाने वाले शिविर में लूप लगवाओं। मुंशी जी, नोट करो–सनिचरी लूप

केस।'' सनिचरी के साथ दरोगा का यह अमानवीय व्यवहार भ्रष्ट तथा स्वार्थी पुलिस द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में दलित नारी के साथ होने वाले अन्याय को सामने लाता है। जिन लोगों को ग्रामीण जनता का उद्धार करना चाहिए वहीं उसके विनाश का कारण बनी है। ऐसे में इस वर्ग को स्वयं अपने लिए लड़ना पड़ेगा। अधरंगी और सनिचरी को हम ऐसे ही पात्रों में देखते हैं वे दोनों शोषितों का विरोध कर रहे हैं। सनिचरी गांव में अकेली नारी है जो प्रधान के खिलाफ अनशन के माध्यम से विरोध कर रही है। चाहे उसके भोलेपन का सब ने लाभ उठाया किन्तु वह अंतिम समय तक अपने इस विरोध को बनाए रखती है। इसी तरह अधरंगी भी दलित वर्ग में चेतना लाने का प्रयास करता है। वह सनिचरी को भी समय–समय पर सचेत करता है कि यह लीडर जी तुम्हारा प्रयोग कर रहा है कोई तुम्हारी सहायता के लिए नहीं आएगा। अधरंगी अपाहिज है किन्तु शोषण के खिलाफ विरोध करने में पीछे नहीं हटता। शिकार खेलने आया दरोगा जब उसके साथ संवेदनशून्य व्यवहार कर लात मारता है तब, अधरंगी धड़ाम से गिरता है, लेकिन तुरन्त ही उठने का प्रयास करते हुए चिल्लाता है, ''आदमी का शिकार करके पेट नहीं भरा तो चिरई का शिकार करके नहीं भरेगा दरोगा बाबू...ऊ...ऊ।'' वह शोषण का विरोध ही नहीं करता बल्कि शोषण का शिकार हुई सनिचरी का भी पूरा सहयोग करता है। प्रधान द्वारा उसे जहर देकर मार देने पर वह सनिचरी की लाश को उसकी झोंपड़ी के सामने मुखाग्नि देता है। अधरंगी की संवेदना मानवीयता को स्थापित करने के साथ–साथ दलित वर्ग में शोषण के विरुद्ध चेतना लाने का कार्य भी करती है। कहानी में प्रधान की पत्नी तथा लीडर की पत्नी द्वारा अपने पतियों के भ्रष्ट आचरण का विरोध करना, ग्रामीण स्त्रियों के जागरुक रूप को व्यक्त करता है। प्रधानिन द्वारा कहे ये शब्द, ''ई गाँव लंका है। इहाँ लंकादहन होवेगा। रावन तू ही हो। लीडर बना है भिभीखन। तोहरे दूनो के चलते गाँव का सत्यानास होवेगा होई रहा है। बहिन–बिटिया बेंचो। हमहूँ का बेचि लेव... अब हम एहि घरे मा ना रहब। आपन बेटवा लइके भीखकौरा माँगब, मुला....'' प्रधानिन ऐसे पैसे नहीं चाहती, जो गांव की बहन–बेटियों को बेचकर कमाए गए हों। दूसरी तरफ लीडर की पत्नी भी पति का विरोध करती हुई कहती है, ''तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूँगी इस गाँव में।'' सनिचरी, प्रधानिन तथा लीडरराइन तीनों का इस भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध करना इस सत्य को उद्घाटित करता है कि ग्रामीण स्त्रियों में भी चेतना आ रही है। अन्याय के विरोध में आवाज़ उठाने का साहस भी अब उसमें है।

अतः यह कहानी एक गांव के कसाईबाड़ा बनने की वास्तविकता व्यक्त करती है। चाह प्रधान हो, लीडर हो या दरोगा। तीनों कसाई ही हैं। सब अपना स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से गरीब जनता को अपना मोहरा बना रहे हैं। समाज सेवा के नाम पर नेता मात्र अपना स्वार्थ और हित साधने में लगे हैं। हर तरफ स्वार्थ की राजनीति चल रही है। उनके इस स्वार्थ के कारण सबसे अधिक पीड़ा दलित नारी को सहनी पड़ी है। यह कहानी दलितों के खिलाफ षड्यंत्र, देह–व्यापार, उच्च पदों पर रहने वाले लोगों का आतंक, भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी को सामने लाती है।

18.4 निष्कर्ष

अतः इनकी दोनों कहानियों की मूल संवेदना के अन्तर्गत ग्रामीण समाज की क्रूरतम विकृतियों को अभिव्यक्ति मिली है। इनकी कहानियों में व्यक्त गांव स्वतन्त्रता के बाद का भारतीय गांव है। जहां विकास के नाम पर मात्र उसका दोहन ही नहीं हुआ बल्कि निम्न पायदान पर खड़ा व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं रहा। वहां का जीवन इतना विषयुक्त है कि सामान्य जन के लिए सांस लेना भी कठिन है। भ्रष्ट राजनीति, पंचायती राज तथा पुलिस व्यवस्था के स्वार्थ के आगे स्त्रियों तथा दलितों का शोषण सामान्य बात है। इस भ्रष्ट व्यवस्था के कारण दलित विशेषकर नारी कितनी उत्पीड़ित हुई है उसका बोध इनकी इन दोनों कहानियों की मूल संवेदना से हो जाता है।

18.5 कठिन शब्द

(1) अंगीकार (2) सिद्धहस्त (3) कुठाराघात (4) संबल (5) अंतर्वेदना (6) हवस (7) दगनी दागना

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' की मूल संवेदना पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

2. नारी उत्पीड़न की मूल संवेदना को व्यक्त करती 'तिरिया चरित्तर' कहानी पर चर्चा करें।

____

____

____

____

3. 'कसाईबाड़ा' कहानी की मूल संवेदना का विश्लेषण करें।

____

____

4. शिवमूर्ति द्वारा रचित 'कसाईबाड़ा' कहानी की मूल संवेदना ग्रामीण समाज की विषमता तथा विवशता को व्यक्त करती है, स्पष्ट करें।

18.7 पठनीय पाठकें

1. केशर कस्तूरी – शिवमूर्ति
2. सृजन का रसायन – शिवमूर्ति
3. हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश – मधुरेश

– – – – –

M.A. HINDI | **Lesson No. 19**
Course Code : HIN-302 | **Semester-III**

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र

19.0 रूपरेखा

19.1 उद्देश्य

19.2 प्रस्तावना

19.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र

19.3.1 'तिरिया चरित्तर' कहानी के प्रमुख चरित्र

19.3.2 'कसाईबाड़ा' कहानी के प्रमुख चरित्र

19.4 निष्कर्ष

19.5 कठिन शब्द

19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.7 पठनीय पुस्तकें

19.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'तिरिया चरित्तर' तथा 'कसाईबाड़ा' दोनों कहानियों के पात्र से पूर्ण रूप से परिचित हो सकेंगे।

19.2 प्रस्तावना

शिवमूर्ति समकालीन हिन्दी साहित्य के ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने गाँव, गरीब तथा नारी के उस यथार्थ को वर्णित किया है। जिस पर दूसरों की दृष्टि प्रायः कम ही जाती है। ग्रामीण जीवन के इस यथार्थ को

चित्रित करने में उनके कथानक तथा घटनाक्रम ही नहीं पात्रों का भी पूर्ण योगदान रहा है। क्योंकि इनकी कहानियों के पात्र भी ग्रामीण जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं।

19.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र

पाठ्यक्रम में शिवमूर्ति की दो कहानियां–'तिरिया चरित्तर' और 'कसाईबाड़ा' है। इन दोनों कहानियों के पात्र ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्ति देने में सहायक हुए हैं।

19.3.1 'तिरिया चरित्तर' कहानी के प्रमुख चरित्र

'तिरिया चरित्तर' कहानी के मुख्य पात्र विमली और बिसराम हैं। विमली के माता–पिता, ड्राइवर बाबू, कुइसा, बिल्लर आदि गौण पात्र हैं जो विमली के संघर्ष को उभारने में सहायक हुए हैं।

1. विमली

'विमली', 'तिरिया चरित्तर' कहानी की मुख्य नारी पात्र है जो अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण पाठक के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ती है।

1. **विशेष व्यक्तित्व**–विमली एक ग्रामीण नारी होने के उपरान्त भी साधारण ग्रामीण नारी से भिन्न चेतनशील व्यक्तित्व को रखती है जो उसे अन्य ग्रामीण नारियों से भिन्न करता है। उसके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण खान साहब के भट्ठे के समस्त पुरुष उसके प्रति आकर्षित ही नहीं होते बल्कि विमली को जीवन साथी बनाने का सपना भी देखते हैं। खान साहब के भट्ठे पर कोयला देने वाला ड्राइवर बाबू की विमली के विशेष व्यक्तित्व के कारण उसके प्रति आकर्षित होते हैं, ''बहुत बहुत लड़कियाँ देखी हैं डरेवर बाबू ने। बंगाल, बिहार, यू.पी. में। लेकिन ऐसी लड़की! जितनी नजदीक उतनी ही दूर! दूर नजदीक साथ–साथ। हत्तेरे की!'' ड्राइवर बाबू का अनेक क्षेत्रों में जाने के उपरान्त भी मात्र विमली पर आकर्षित होना, विमली के विशेष व्यक्तित्व की पुष्टि करता है।

2. **स्वावलम्बी**–'तिरिया चरित्तर' की विमली ग्रामीण अबला नारी नहीं बल्कि एक स्वावलम्बी नारी है। कारखाने में मजदूरी करके वह मात्र स्वयं स्वावलम्बी नहीं बनी है, उसने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति में भी सुधार लाया है। भाई का कर्त्तव्यहीन होकर पत्नी के साथ अलग रहना और पिता दोनों हाथ दीवार के नीचे दबने से बेकार हो जाने पर विमली परिवार में बेटे का दायित्व सँभालती है। उस समय वह मात्र नौ–दस साल की थी लेकिन परिवार की आर्थिक स्थिति ने उसे अल्पायु में ही स्वावलम्बी बन पारिवारिक दायित्व निभाने हेतु सक्रिय किया।

लेखक के शब्द में – ''झोपड़ी में था क्या पहले! टूटी चारपाई तक नहीं थी। ... विमली ने धीरे–धीरे पूरी गृहस्थी जोड़ी है। उसके बाप–भाई पाँच साल में भी झोंपड़ी पर नई छाजन नहीं डाल पाए थे। वह हर तीसरे साल छाजन बदलवाती है। विमली की ही कमाई से उसका बाप फिर से हाथ वाला हुआ है।'' स्पष्ट है कि विमली का स्वावलंबी होना उसके साथ–साथ परिवार के लिए भी हितकारी रहा है। जब विमली स्वावलंबी बनी उस समय गांव

की कोई नारी आत्मनिर्भर नहीं थी। इसलिए विमली को गांव तथा पिता के विरोध का सामना करना पड़ा, किन्तु मां के सहयोग तथा भूखों मरने की स्थिति ने पिता को चुप करवा दिया। विमली की पहल ने समस्त गांव की नारियों के लिए आत्मनिर्भर बनने की राह को खोल दिया। परिणामतः गांव की आधी बेटियाँ तथा बहुएँ कारखाने में काम कर स्वावलंबी बनीं। अतः विमली का स्वावलंबीपन गांव की अबला नारियों को भी प्रेरित करता है।

3. **स्वाभिमानी एवं कर्मठ**–विमली के व्यक्तित्व में स्वाभिमानी रूप के दर्शन की होते हैं। क्योंकि वह स्वयं कमाकर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना जानती है। वह किसी पर नहीं, बल्कि अपने कर्मठ व्यक्तित्व पर निर्भर है इसलिए उसके भीतर स्वाभिमान की भावना भी तीव्र है। बचपन में जब उसके परिवार को आर्थिक संकट के चलते भूखे मरने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जहां तक कि विमली को जिस सरपंचजी के घर गृहकार्य कर मात्र दो वक्त की रोटी मिलती थी, उसी सरपंच की पत्नी के समक्ष जब उसकी माँ ने सहायता का अनुरोध किया तो वह बिना कोई वस्तु गिरवी रखे सहायता के लिए सहमत नहीं हुई। माँ–पिता की इस लाचारी और आर्थिक संकट को देखते हुए विमली अपनी कर्मठता के बल पर स्वाभिमान से कह उठती है, ''नहीं करना उसे ऐसी जदह गोबर–झाड़ू, जहाँ माँगने पर भीख भी नहीं मिल सकती...। वह कल से ही भट्ठे पर नाम लिखा देगी... जितनी ईंट ढोओ उतना पैसा। ठेके पर!'' विमली को अपने कार्यबल पर विश्वास है कि वह मजदूरी करके इतना धन अर्जित कर सकती है जितने में उसके परिवार की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। भट्ठे पर ड्राइवर द्वारा भेंट स्वरूप कुछ वस्तुएँ देने पर भी वह अपने स्वाभिमानी रूप का परिचय देते हुए वे वस्तुएं लेने से इन्कार करती है। ससुर द्वारा छल से उसका शारीरिक शोषण करने पर वह चुप–चाप सब सहन नहीं करती। ''अपनी आन–बान से जीने वाली 'मादा' यहाँ 'मिट्टी' कर दी गई जबरन!... छुई–मुई पढ़वैया लड़की है वह ? कि चुपचाप जला दी जाएगी? मार दी जाएगी? उसके खून में मेहनत की आँच है। उसे कोई 'दासी' बनाकर रख पाएगा? ... न, अब एक पल भी नहीं रुक सकती वह यहाँ।...'' चाहे विमली के सामने विकट स्थितियाँ आई हैं लेकिन उसकी कर्मठता तथा स्वाभिमान ने उसे झुकने नहीं दिया है।

4. **साहसी एवं स्पष्टवादी**–विमली को अपने जीवन में पितृसत्तात्मक मानसिकता के कारण भिन्न अवरोधों का सामना करना पड़ा है किन्तु अपने साहस व स्पष्टवादिता के कारण वह इसी संकुचित मानसिकता का विरोध कर सकी है। कार्य क्षेत्र में स्त्री–पुरुष के भेद को दरकिनार कर जब वह भट्ठे पर मजदूरी करती है तो उसे गांव तथा पिता का अवरोध मिला। इस अवरोध से वह डगमगाई नहीं बल्कि पूर्ण साहस से अपना तर्क रखती है, ''कौन कहता है कि आदमी लड़के ही काम कर सकते हैं भट्ठे पर? राँची की मजदूरनें औरतें नहीं हैं ? वे किसी से कम काम करती हैं ? तब वह क्यों नहीं कर सकती ?'' अपने साहस से वह भट्ठे पर कार्य करते हुए पुरुषों की कामुक तथा लोलुप दृष्टि से भी स्वयं को बचाकर रखती है। यदि कोई व्यर्थ में उससे प्रश्न कर लेता तो वह निडरता से उत्तर देती। कारखाने में देर से आने पर जब कुइसा बोझवा उससे प्रश्न करता है तो वह स्पष्टता से कहती है, ''जेतना काम करेंगे। ओतने न मजदूरी मिलेगी। तब काहें तोहार छाती फाटत है? और घड़ी देखै अपनी बहिनी क सिखाओ।'' इतना ही नहीं ससुर द्वारा जबरन शारीरिक संबंध बनाने का भी वह साहस के साथ विरोध करती है। पंचों द्वारा उसे दोषी ठहराते

हुए जब दगनी दागने की सजा सुनाते हैं तो वह पूर्ण साहस के साथ स्पष्ट रूप से इसका विरोध करती है, ''मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अन्धा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का 'सत' नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ–आ–क–थू...! देखूं कौन माई का लाल दगनी दागता है।'' स्पष्ट है कि विमली अपने साहस तथा स्पष्टवादी होने के कारण पग–पग पर विपरीत परिस्थितियों का विरोध करने में सफल रही है।

5. **पतिव्रता**–विमली एक पतिव्रता नारी है। उसका विवाह बचपन में ही दूसरे गाँव में बिसराम के लड़के सीताराम से हुआ था। विवाह को कई वर्ष हो गए थे लेकिन उसके गौना में बहुत समय लग गया। चाहे विमली की विदाई नहीं हुई थी। उसने कभी अपने पति को नहीं देखा फिर भी वह कलकत्ता काम करने गए सीताराम के प्रति समर्पित हो गई थी। कारखाने में काम करने वाले पुरुष उसे रिझाने का प्रयास करते हैं तो वह उसे उनका ओछापन लगता है। ड्राइवर के प्रति आकर्षित होने के उपरान्त भी वह अपने पत्नीत्व को डिगने नहीं देती। उसने तो अपनी कलाई पर भी अपने अनदेखे पति का नाम लिखवाया है। उसकी मां जब उसे बिल्लर से शादी करने को कहती है तो वह साफ इन्कार कर देती है, ''यह आज सोच रही है। पहले क्यों नहीं सोचा ? क्या जरूरत थी बचपन में ही किसी के गले से बाँध देने की?...'' कैसे सोच लिया ऐसा? जिसकी औरत उसे पता भी नहीं और तू उसे दूसरे को सौंप देगी? गाय–बकरी समझ लिया है?'' विमली के ये शब्द माँ के निर्णय का विरोध उसके पतिव्रता रूप को भी उभार रहे हैं। पति के प्रति एकनिष्ठता के कारण ही उसने ड्राइवर बिल्लर और कुइसा के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा दिया। ससुर द्वारा शारीरिक, शोषण का शिकार होने पर भी उसका पतिव्रता रूप अधिक पीड़ित हुआ है, ''कहाँ–कहाँ से किन–किन खतरों से बचाती आई थी वह परायी अमानत! कितने बीहड़? कितने जंगल? कितने जानवर? कितने शिकार! और मुकाम तक सुरक्षित पहुंचकर भी लुट गई वह!'' वह ऐसी पतिव्रता नारी है जो अपने तन पर स्वयं का नहीं पति का अधिकार मानती थी। अपने पति की अमानत को ही वह वर्षों से संभाले ससुराल आई थी।

6. **पुरुष कामुकता तथा निर्दयता का शिकार**–विमली एक साहसी नारी होने के उपरान्त भी पुरुष की कामुकता का शिकार हुई है। पुरुष की कामुकता का सामना तो उसे भट्ठे पर मजदूरी करने के दौरान ही करना पड़ा था किन्तु वहाँ वह अपनी सूझ–बुझ तथा साहस से उनका शिकार न बन सकी। ससुराल में जहाँ वह स्वयं को सुरक्षित समझकर आई, वहीं उसका ससुर उसे अपनी कामुकता का ग्रास भी बनाता है और पंचायत में उसके चरित्र पर लांछन लगाकर उसे अमानवीय सजा भी दिलाता है। पंचों द्वारा मिली विमली को सजा नारी के प्रति पुरुष व्यवस्था की संवेदन शून्यता को स्पष्ट करती है।

7. **आस्तिक**–विमली ईश्वर में विश्वास रखती है। उसके व्यक्तित्व में आस्तिकता की भावना का परिचय ससुर द्वारा शिवाले में सत्यनारायण की कथा कहने और व्रत रखने के संदर्भ में मिलता है। ससुर के बदलाव को देखकर वह सत्यनारायण का धन्यवाद करती हुई कहती है, ''तब तो विमली की रहेगी बरत! इतने बड़े संकट से उबार लिया सत्यनारायण सामी ने।''

अतः विमली ''तिरिया चरित्तर'' कहानी की सशक्त नारी पात्र है। अपने विशेष व्यक्तित्व के कारण वह पाठक के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ती है। इस नारी पात्र के माध्यम से शिवमूर्ति ने ग्रामीण नारी के उत्पीड़न को भी रेखांकित किया है। विमली का साहस और विद्रोह ग्रामीण नारी में आई चेतना को भी व्यक्त करता है। एक तरह से देखा जाए तो विमली विद्रोही ग्रामीण नारी का प्रतिनिधित्व कर रही है।

2. बिसराम

बिसराम 'तिरिसा चरित्तर' कहानी का प्रमुख पुरुष पात्र है। इस कहानी में वह कामुक व संवेदनहीन पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व भी कर रहा है।

कहानी में बिसराम प्रमुख नारी पात्र विमली का ससुर है। वह पुरुषवादी मानसिकता से ग्रस्त है। विमली का गौना नहीं हुआ था, लेकिन मायके में रहते हुए जब विमली भट्ठे पर काम करती है तो वह इसके सख्त विरोध में था। विमली की माता द्वारा समझाने पर वह मान गया लेकिन मेले में जाने पर विमली के चरित्र पर जब सब शंका करने लगते हैं तब वह पुनः विमली के माता–पिता के पास गौने के लिए आता है। उसकी बहू का किसी अन्य से कोई सम्बन्ध हो उसे स्वीकार नहीं था। वह कहता है, ''सुनते हैं उसकी पतोहू ट्रैक्टर पर बैठकर मेला देखने जाती है,... जलेबी !.. आधी रात तक बाहर! कोई 'धर्मशाला' है उसकी पतोहू? कि पंचायती हंडा? जो चाहे 'खिचड़ी पका ले। बिना गौने का 'दिन धराए' वापस नहीं जाएगा वह?'' बिसराम के ये शब्द उसकी संकुचित पुरुषवादी मानसिकता को व्यक्त करते हैं जिसके अनुसार सीमित दायरे से बाहर निकली नारी के चरित्र पर शंका करना और उसे अपने अधिकार में रखना आवश्यक हो जाता है। विनती पर वह अपना अधिकार समझता है इसलिए बेटे के बिना ही पतोहू का गौना करवाकर घर ले जाता है। विमली के ससुराल जाने पर ही बिसराम का वास्तविक चेहरा सामने आता है। बहू के आते ही तीसरे दिन उसने बहन को विदा कर दिया। दिन भर झोंपड़ी के सामने गाँजे की महिफल लगाकर रखना, झोपड़ी से शराब की गन्ध आना तथा बहू का उतरा चेहरा बिसराम की विलासिता को गांव वालों के समक्ष स्पष्ट कर देता है। बिसराम की कामुकता बेटी समान बहू को अपना ग्रास बनाती है। वह जबरन बहू से शारीरिक संबंध बनाने का प्रयास करता, किन्तु विमली के साहस के सामने जब उसका बल कम पड़ गया तो वह उसके चरित्र पर लांछन लगाता है, ''बड़ी सती सवित्री बनती है? सारा गाँव नहीं गन्धवा दिया था तूने?'' इतना ही नहीं वह उसके पिता पर भी आरोप लगाता हुआ कहता है, ''एतना कपड़ा–लत्ता, साड़ी, बिलाउज, गहना–गुरिया ? सब बाप की कमी है? लूले साले की? वह करेगा बेटी की दुकानदारी और तू यहाँ आकर...'' बिसराम का यह आक्रोश इसलिए है क्योंकि उसके पुरुषवादी अहं को विमली के साहस से चोट पहुँचाई है। बिसराम की कामुकता से इतना ग्रस्त हो चुका था कि वह विमली को भोगने के लिए धर्म का सहारा लेता है। विलमी के समक्ष पश्चाताप कर, शिवाले में सत्यनारायण की कथा वाचने तथा व्रत का ढोंग करके वह विमली का विश्वास अर्जित करता है किन्तु छल से बेटी समान बहू विमली को अफीम पीलाकर उसकी बेहोशी का लाभ उठाकर अपनी हवस को पूर्ण करता है। बहू को भोग कर भी उसकी पुरुष अहं तृप्त नहीं हुआ, बल्कि वह समस्त गांव में उसके चरित्र पर लांछन लगाकर पंचायत से उसे अमानवीय 'दगनी दागने' की सजा की दिलाता है।

अतः बिसराम एक कामुक तथा उस पुरुषवादी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए नारी मात्र भोग्या है और अपनी कामुकता की पूर्ति के लिए वह झूठ, धोखा, छल का सहारा लेने तथा नारी के साथ अमानवीय कार्य करने से पीछे नहीं हटता। उसका पुरुष अहं नारी पर अपना अधिकार स्थापित करके ही तृप्त होता है। नारी की पीड़ा वेदना, तथा भावना उसके लिए कोई महत्व नहीं रखती।

19.3.2 'कसाईबाड़ा' कहानी के प्रमुख चरित्र

'कसाईबाड़ा' कहानी के पाँच प्रमुख पात्र हैं – सनिचरी, ग्राम–प्रधान, लीडरजी, दरोगा तथा अधरंगी। ये पाँचों पात्र एक–एक वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। सनिचरी चेतनशील नारी का, प्रधान और लीडर भ्रष्ट नेता तथा राजनीतिज्ञ षड़यंत्रकारियों का, दरोगा भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था का तथा अधरंगी चेतनशील दलित वर्ग का।

सनिचरी

सनिचरी 'कसाईबाड़ा' कहानी की प्रमुख दलित नारी पात्र है जिसके माध्यम से लेखक ने ग्रामीण दलित नारी के शोषण तथा विद्रोह को चित्रित किया है।

1. **संघर्षशील माँ** – सनिचरी एक दलित विधवा नारी है। पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी एकमात्र बेटी रूपमती ही उसके जीवन में शेष है। प्रत्येक माँ अपनी बेटी के सुखद भविष्य की कल्पना करती है। सनिचरी ने भी अपनी बेटी के सुखद भविष्य हेतु प्रधान द्वारा करवाए गए आदर्श सामूहिक अन्तरजातीय विवाह समारोह में बेटी रूपमती की शादी करवाई। इस सामूहिक विवाह की आड़ में उसकी बेटी बेच दी गई यह सत्य जानकर सनिचरी आहत होती है। किन्तु इस सत्य को जानकर वह किसी अबला माँ की भाँति चुप–चाप सब सहन नहीं करती बल्कि बेटी की रक्षा हेतु प्रधान के खिलाफ अनशन कर विरोध करती है। जिस प्रधान के विरोध में गाँव की कोई नारी आवाज़ नहीं उठाती, उसी प्रधान का सनिचरी के कारण घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। प्रधान से की गई उसकी गुहार–''मोर बिटिया वापस कर दे बेइमनवा, मोर फूल ऐसी बिटिया गाय–बकरी की नाईं बेंचि के तिजोरी भरै वाले! तोरे अंग–अंग से कोढ़ फूटि कै बदर–बदर चूई रे कोढ़िया...'' सनिचरी के ममतामयी रूप को चित्रित करने के साथ–साथ उसके संघर्षशील रूप को भी व्यक्त करता है। वह अपने आमरण अनशन को किसी भी कीमत पर समाप्त नहीं करती। जहाँ तक कि प्रधान की पत्नी भी उसके इस संघर्ष से चिंतित हो जाती है। मरते दम तक अपनी बेटी के लिए लड़ते रहना उसके संघर्षशील मां के रूप को उकारता है।

2. **पुरूष वासना की शिकार** – ग्रामीण स्त्री प्रायः उच्च पदासीन पुरूषों की वासना का शिकार रही है। सनिचरी को भी पुरूष वासना का ग्रास बनना पड़ा है। जिस बेटी के लिए वह संघर्ष कर रही है वह भी प्रधान की वासना के परिणामस्वरूप उसे प्राप्त हुई है। ग्राम–प्रधान ने उसे अपनी वासना का शिकार बनाया है। यह सत्य वह दरोगा के समक्ष व्यक्त करती है, ''हुजूर, पैदा तो इनही परधानजी ने किया था। पूछे का मौका भी नहीं दिए। हमारे आदमी जी तो तब परदेस गए रहे।'' स्पष्ट है कि ग्राम प्रधान अपने पद का लाभ उठाते हुए गांव की उन दलित नारियों को अपनी हवस का शिकार बनाता है जिनके पति कार्य के लिए अक्सर परदेस

होते थे। सनिचरी उन समस्त दलित नारियों का प्रतिनिधित्व कर रही है जिन्हें उच्च पद पर आसीन पुरूषों द्वारा शोषित होना पड़ता है किन्तु उनकी विड़म्बना यह है कि उनकी सुनवाई करने वाला कोई नहीं। रक्षा के लिए पुलिस दरोगा भी ऐसे पुरुषों को सजा देने की अपेक्षा सनिचरी जैसी औरतों को ही दोषी ठहराते हैं।

3. **साहसी एवं निडर**–सनिचरी चाहे दलित नारी है दलित नारी शोषण का शिकार भी अधिक होती है। किन्तु शोषित होने के उपरान्त भी हार मानने वालों में से नहीं है। प्रधान द्वारा गाँव की बेटियों को सामूहिक विवाह की आड़ में बेचे जाने पर जहां प्रत्येक ग्रामीण नारी प्रधान के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाती, वहीं सनिचरी निडर होकर प्रधान का विरोध करती है। पुलिस के समक्ष भी प्रधान के सत्य को उद्घाटित करने में वह डरती नहीं। यहाँ तक कि प्रधान और उसके बेटे के पुतलो को पूर्ण साहस के साथ फाँसी दे देती है। प्रधान के खिलाफ आमरण अनशन करके सनिचरी ने जो साहस दिखाया है। वह सामान्य दलित नारी के लिए सहज कार्य नहीं हैं।

4. **अशिक्षित**–सनिचरी साहसी व संघर्षशील नारी तो है किन्तु अशिक्षित होने के कारण प्रधान तथा लीडर द्वारा ठगी जाती है। यदि सनिचरी शिक्षित होती तो प्रधान आदर्श सामूहिक विवाह में उसकी बेटी को बेच नहीं पाता और न ही लीडर उसकी निरक्षरता का लाभ उठाकर धोखे से उसकी दो बीघा जमीन अपने नाम करवा पाता। जबकि उसमें थोड़ी जागृति थी इसलिए लीड़र द्वारा रिपोर्ट के नाम पर धोखे से कचहरी के कोरे कागज पर अँगूठा लगवाने पर वह कहती है, ''ई तौ कचहरी वाला कागद है बेटवा, ऊपर की ओर रूपैया जैसी छापी बनी है।'' वह जागरूक थी इसलिए कचहरी के कागज को पहचान गई। किन्तु शिक्षित न होने के कारण वह लीडर की बातों में आकर उस कोरे कागज़ पर अँगूठा लगा देती है।

अतः सनिचरी इस कहानी में संघर्षशील दलित नारी के रूप में चित्रित हुई है। उसका साहसी रूप शोषित दलित नारी में चेतना लाने का प्रयास करता है। चाहे कहानी के अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है। लेकिन उसकी यह मृत्यु भी उच्च पद पर आसीन पुरूषों की चिंता तथा घबराहट को व्यक्त करती है। क्योंकि सनिचरी के विद्रोह रूप से उन्हें अपनी पद–प्रतिष्ठा को खोने का डर रहता है।

2. अधरंगी

अधरंगी 'कसाईबाड़ा' कहानी का ऐसा सबल पुरुष पात्र है। जो दलित होने के उपरान्त भी उच्च वर्ग के आगे झुकता नहीं, बल्कि उनके अन्याय के विरोध में खड़ा है। वह अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण पाठक के मन–मस्तिष्क में गहरा उतरता है। वह दलित समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व भी कर रहा है जिसके मन में समाज को बदलने तथा भ्रष्ट सत्तातंत्र को जड़ से उखाड़ने का सपना है। इसलिए उसे अधपागल कहा गया है। सम्पूर्ण कहानी में अधरंगी ही ऐसा पुरुष पात्र है जो निडरता से सनिचरी के संघर्ष में उसका साथ दे रहा है। जबकि वह पैरालिसिस का शिकार है। समाज व्यवस्था, शासन व्यवस्था तथा गाँव के लोगों पर वह कटु प्रहार करता है।

पेशे से वह प्रधान और लीडर के जानवरों को छोड़कर गाँव भर के जानवर चराता है, क्योंकि इन दोनों की वास्तविकता वह जानता है इसलिए इन्हें गांव के लिए राहु और केतु मानता है। प्रधान द्वारा बेटियों को बेचने

के उपरान्त वह गाँव भर के लोगों में विरोध के लिए चेतना लाने का प्रयास करता है। वह रात को गाँव की गलियों में घूमते हुए लोगों पर कटु प्रहार करते हुए कहता है, ''औरतों की तरह मुँह ढँककर सोने वाले गीदडों, परधान तुम्हारी बहन–बेटियों के गोश्त का रोजगार करता है और तुम लोग हिजड़ों की तरह मुँह ढँककर सो रहे हो। सो जाओ, हमेशा के लिए।'' अधरंगी का इस तरह लोगों को कटु वचन कहना उसके भीतर के जागरूक दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो इस शोषण की आदी जनता में विरोध के लिए चेतना लाने का प्रयास कर रहा है।

अधरंगी जानता है कि लीड़र अपने स्वार्थ के लिए सनिचरी का प्रयोग कर रहा है इसलिए वह सनिचरी को आगाह करते हुए कहता है, ''कोई नहीं आएगा काकी, हमारी मदद के लिए। न परधानमन्तरी, न मुखमन्तरी। न भगवान, न भगौती। हम खुद अत्याचारी को सजा देंगे।'' इतना ही नहीं प्रधान के अत्याचार के खिलाफ अपने विरोध को वह ग्राम प्रधान और उसके बेटे परेम कुमार के पुतलों को सनिचरी के हाथों फाँसी पर लटकाकर प्रकट करता है। वह इतना निडर और साहसी है कि दरोगा द्वारा सनिचरी के लूप केस की बात करने पर वह आक्रोश में उनसे कहता है, ''कितनी सनिचरियों के लूप लगवाओगे दरोगा साहेब, जब तक परधानजी की जवानी गरम है। लूप लगवाना है तो परधान के लगवाओ।'' इस तरह अधरंगी निडरता से परधान और दरोगा के समक्ष सत्य को उद्घाटित करने में साहस दिखाता है। सनिचरी को जब प्रधान द्वारा दूध में जहर मिलाकर पिला दिया जाता है तब सनिचरी की लाश को प्रधान तथा दरोगा के डर से कोई हाथ नहीं लगाता। उस समय अधरंगी ही पूर्ण साहस के साथ उसके शव को खटिया पर लादकर घसीटते हुए झोंपड़ी के सामने रख लाता है। सनिचरी की झोंपड़ी की चिता बनाकर उसके शव को अग्नि देने के साथ ही परधानजी और उनके बेटे के पुतलों को सनिचरी की चिता में फेंक देता है। अधरंगी का विद्रोह निम्न वर्ग में आई चेतना की ओर संकेत करता है।

अतः अधरंगी का चरित्र एक सबल दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसके माध्यम से लेखक ने दलित वर्ग में आ रही चेतना को वर्णित किया है। साथ ही जो दलित वर्ग अभी भी चुप–चाप शोषित हो रहा है उनके नवीन चेतना का संचार इस चरित्र द्वारा किया गया है। अधरंगी दलित वर्ग को अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित करता है।

2. परधानजी

परधानजी पंचायती चुनाव तथा ग्राम प्रधान की वास्तविकता को व्यक्त करती 'कसाईवाड़ा' कहानी का प्रमुख पात्र है। इसका चरित्र भ्रष्ट व स्वार्थी ग्राम–प्रधान का वास्तविक रूप प्रकट करता है।

1. **ग्राम प्रधान**–खिरोधर सिंह उर्फ श्री के.डी सिंह ग्राम प्रधान के पद पर स्थित है। कहानी में इनका वास्तविक नाम कम प्रयोग में लाकर इनके लिए ग्रामीण भाषा में परधानजी शब्द का प्रयोग हुआ है। गांव विकास हेतु सरकार द्वारा गांव में चुनाव करवाकर ग्राम–प्रधान नियुक्त किए जाते हैं जिसका उद्देश्य गांव का कल्याण करना रहता है। खिरोधर सिंह भी लोगों द्वारा चुना गया वर्तमान ग्राम प्रधान है। जो भविष्य में भी अपने पद पर बने रहने के लिए संघर्षरत है।

2. **स्वार्थी** – परधानजी पूर्ण रूप से स्वार्थी मनोवृत्ति के व्यक्ति हैं। प्रत्यक्ष रूप से वह गांव के सामने आदर्श प्रधान की भूमिका में रहते हैं जो मात्र गांव का कल्याण व विकास चाहता है किन्तु परोक्ष रूप से वह अपने ही स्वार्थ की पूर्ति कर रहा है। अपने स्वार्थ के लिए वह अनैतिक कार्य करने में भी संकोच नहीं करता। प्रधान पद को वह किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहता। इसलिए ग्रामीण जनता के हृदय को जीतने के लिए वह गरीबी उन्मूलन के नाम पर 'आदर्श अन्तरजातीय सामूहिक विवाह' करवाता है। इस सामूहिक विवाह से वह गांव में देवता माना जाने लगा, किन्तु इसके पीछे भी गांव का कल्याण नहीं प्रधान का ही स्वार्थ निहित है। क्योंकि आदर्श विवाह की आड़ में उन्होंने लड़कियों को देह व्यापारियों के हाथ बेचकर धन अर्जित किया है। अपने स्वार्थ के लिए वह पत्नी का प्रयोग करने में भी पीछे नहीं हटता। जब उसे लगता है कि सनिचरी उसके लिए खतरा साबित हो रही है और पत्नी भी उसे दोषी मान रही है तो वह षड़यन्त्र द्वारा पत्नी के माध्यम से सनिचरी को जहर वाला दूध पिलाकर मरवा देता है। जिसकी पुष्टि प्रधान ने स्वयं की है, ''अब कुछ कहेगी साली तो डरा दूँगा कि दूध तो तूने ही पिलाया था। तूने ही मिलाया होगा जो कुछ मिलाया होगा दूध में।'' सनिचरी की मृत देह के पास जाकर कहे गए प्रधान के ये शब्द उसकी उसकी संवेदन शून्यता को व्यक्त करने के साथ–साथ यह तथ्य भी स्पष्ट करते हैं कि परधान अपने स्वार्थ के लिए पत्नी का दुरुपयोग करने में की संकोच नहीं करता है। एक तरह से परधान पूर्ण रूप से 'स्व' केन्द्रित व्यक्ति है इसलिए उसे अपने स्वार्थ के आगे कुछ उचित अनुचित नहीं लगता।

3. **विलासी**–परधानजी विलासी प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। अपने पद का दुरुपयोग कर वह भोली–भालि ग्रामीण नारियों को अपनी विलासिता का शिकार बनाता है। सनिचरी द्वारा दरोगा को कहे यह शब्द, ''हुजूर, पैदा तो इनही परधानजी ने किया था। पूछे का मौका भी नहीं दिए। हमारे आदमीजी तो तब परदेस गए रहे।'' स्पष्ट करते हैं कि परधान गांव की अकेली औरतों को पाकर जबरन उनसे शारीरिक संबंध बनाता है। इसके साथ ही अधरंगी, दरोगा के समक्ष परधानजी की विलासी प्रवृत्ति का खुलासा करते हुए कहता है, ''कितनी सनिचरियों के लूप लगवाओगे दरोगा साहेब, जब तक परधानजी की जवानी गरम है। लूप लगवाना है तो परधान के लगवाओ।'' अधरंगी के मुख से निकले ये शब्द स्पष्ट करते हैं कि परधानजी अति विलासी है क्योंकि उन्होंने मात्र सनिचरी को ही अपनी हवस का शिकार नहीं बनाया, बल्कि सनिचरी जैसी अनेक ग्रामीण नारियाँ हैं जो परधानजी की इस भोग–विलासिता का ग्रास बनी हैं।

4. **रिश्वत का समर्थक**–परधानजी अपने स्वार्थ के लिए रिश्वत का सहारा भी लेते हैं। सनिचरी द्वारा परधान के खिलाफ अनशन करने के उपरान्त जब परधान लड़कियों के जिस्मफरोशी केस में फंसता है तो वह भ्रष्ट दरोगा की शरण में जाता है। दरोगा को मिलने जाने से पूर्व वह पत्नी से कहता है, ''अजी, सुनती हो जी! कुछ भेंट पूजा के लिए थोड़ा अमावट, खटाई, अचार। तुम्हें पता है कि दरोगाइन कोंहड़ौरी और जामुन का सिरका पहले माँगती हैं। वो जो परेम कुमार की खेलने की खड़खड़िया है न, दे दो। दरोगाजी का लड़का खेलेगा।'' परधान द्वारा दरोगा से मिलने के लिए इतनी सामग्री साथ ले जाना इस सत्य को उद्घाटित करता है कि वह दरोगा को रिश्वत स्वरूप ये सामग्री देकर अपने हित में करना चाहता है। जहाँ तक कि दरोगा की

वनमुर्गियों के शिकार की इच्छा को पूर्ण करने के लिए वह शहर से एक पेटी वनमुर्गियों की मंगवा लेते हैं ताकि दरोगा खुश रहे। अपने हित के परधान के ये कार्य रिश्वतखोरी में उनके समर्थन को व्यक्त करते हैं।

अतः परधानजी का चरित्र पूर्ण से स्वार्थी तथा भ्रष्ट ग्राम–प्रधान के रूप को स्पष्ट करता है। इसके माध्यम से लेखक बताना चाहते हैं कि गांव को स्वावलंबी बनाने तथा विकास हेतु पंचायती चुनाव द्वारा ग्राम–प्रधान नियुक्त किया जाता है, लेकिन ग्राम प्रधान बनने के यह समाज सेवी अपने ही स्वार्थ को सर्वोपरि रखकर गांव की जनता का शोषण करते हैं।

4. लीडरजी (रामबुझावन)

'कसाईवाड़ा' कहानी में लीडरजी ग्राम–प्रधान पद के प्रबल दावेदार के रूप में चित्रित हैं। पेशे से वह एक शिक्षक हैं किंतु प्राइमरी स्कूल की मास्टरी उनके लिए व्यर्थ है जिससे छुटकारा पाकर वह प्रधान पद को प्राप्त करना चाहते हैं। वह कोई आदर्श नेता नहीं है। बल्कि उनकी नेतागिरी की स्वार्थ से परिपूर्ण है। वह किसी भी कीमत पर वर्तमान प्रधान को इस पद से हटाकर स्वयं के लिए यह सुनिश्चित करना चाहते हैं।

गांव में परधान द्वारा ग्रामीण बेटियों को बेचे जाने की खबर जब फैलती है तो लीडरजी को भी अवसर मिल जाता है कि वह परधान की छवि को खराब कर सके। वह सनिचरी का प्रयोग कर उसे परधान के विरुद्ध अनशन पर बैठने के लिए उकसाता है। गांव में आए दरोगा को कैसे अपने हित में करना है वह उसे अच्छे से आता है। वह उस लालची दरोगा को अपने घर ले जाकर मांस आदि का सेवन करा अपने हित में करने का प्रयास करते हैं। लीडरजी बहुत महत्वकांक्षी हैं। लेखक उनके विषय में बताते हुए कहते हैं, ''महत्वकांक्षाओं की एक लम्बी श्रृंखला है उनके सामने... पुराने परधान को हटाकर गाँव–परधान बनना।... फिर ब्लॉक प्रमुख फिर एमेले, फिर मिनिस्टर। एयर कंडीशंस कोच में देशाटन।'' अपनी महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह मात्र सनिचरी का प्रयोग ही नहीं करता बल्कि अपनी पत्नी को भी प्रयोग में लाने का प्रयास करते है अपनी पत्नी से ''दो–चार दिन तू भी कर दे अनशन। परधानी के इलेक्शन में बड़ी सपोर्ट मिलेगी...'' क्या कहा ? गाँव की कोई औरत नहीं जाती? अरे गाँव की साली, परधान तेरे कतार को बनना है कि गाँव वालियों के?'' गाँव भर में परधान के खिलाफ द्वेष भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से वह सबको कहता है, ''याद करो, चौबीस रूपए के तीन सौ वसूल किए थे तुमसे इसी रँगे सियार ने... परधान काला नाग है। उसका विषदन्त उखाड़ना है। बिल्डिंग को घेरकर सब लोग अनशन करो।'' गांव के समक्ष परधान की छवि खराब करके भविष्य में स्वयं प्रधान बनने की इच्छा से ये सब कार्य कर रहा है। लीडरजी का स्वार्थीपन उस समय भी सामने आता है जब वह धोखे से सनिचरी की दो बीघा जमीन अपने नाम करवा लेता है। पत्नी के पूछने पर वह कहता है कि, ''अरे फूल दि ग्रेट, इसमें धोखा क्या है ? मैं नहीं कराता तो परधान कराता।'' लीडरजी का यह वाक्य उसके चरित्र के स्वार्थीपन को उद्घाटित करता है।

अतः कह सकते हैं कि लीडरजी एक स्वार्थी व महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति हैं जिसके लिए अपना स्वार्थ सर्वोपरि है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए वह दूसरों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करता है।

5. दरोगा

दरोगा 'कसाईबाड़ा' कहानी में भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व कर रहा है। वह एक ऐसा पुलिस अधिकारी है जिसके लिए स्वार्थ के आगे न्याय–अन्याय का कोई स्थान नहीं। सनिचरी द्वारा परधान के खिलाफ अनशन पर बैठने पर जब परधान का गांव की लड़कियों को बेचने का केस उसके पास आता है तो वह इस अवसर पर दोनों पक्षों–परधानजी तथा लीडरजी से रिश्वत लेकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है। लेखक ने दरोगा के कुत्ते की प्रतिक्रिया द्वारा की रिश्वतखोरी प्रवृत्ति को इस प्रकार व्यक्त किया है, ''काला कुत्ता बड़ी देर से बूट पर पंजे की खरोंच मारकर दरोगाजी का ध्यान अमावट वाली गठरी की तरफ ले जाने की कोशिश कर रहा है। उसे तजुर्बा है, आठ साल का–गठरी पर नजर पड़ते ही दरोगाजी की आवाज मधुर हो जाएगी।'' इतना ही नहीं रिश्वत के कारण वह परधान के सामने उसके हित में बात करता है और लीडरजी के समक्ष उसके हित में। एक तरह से देखें तो उसका कोई दीन–धर्म नहीं, पैसे के लिए उसने अपना ईमान बेच दिया है। जहां तक कि वह सनिचरी तथा अधरंगी के साथ भी अभद्र व्यवहार करता है। वह लीडर और परधान दोनों की वास्तविकता जानता है। किन्तु सब जानते हुए भी वह सनिचरी के साथ न्याय नहीं होने देता। अपने पद का लाभ उठाकर वह अपने स्वार्थ को पूर्ण करता है।

अतः कह सकते हैं कि दरोगा का चरित्र पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट अधिकारी के स्वरूप को चित्रित करता है। जो पुलिस लोगों की रक्षा के लिए होती है वहीं स्वार्थ वश उच्च वर्ग के हाथों बिक जाने पर लोगों के साथ अन्याय करती है। आज यदि ग्रामीण दलित लोगों को न्याय नहीं मिल रहा तो इसमें दरोगा जैसे व्यक्तियों का पूरा योगदान है।

19.4 निष्कर्ष

शिवमूर्ति ने अपनी दोनों कहानियों–'तिरिया चरित्तर' तथा 'कसाईवाड़ा' में ग्रामीण अंचल के पात्रों का चित्रण किया है। इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ ग्रामीण जीवन की अनेक समस्याओं, रूढ़िग्रस्त मान्यताओं तथा नारी के उत्पीड़न को सामने लाती है। सनिचरी और विमली चेतनशील ग्रामीण नारियाँ होने के उपरान्त भी पुरुषवादी व्यवस्था का शिकार बनती है। इन नारियों को पुरुषों द्वारा जो पीड़ा, शोषण और उत्पीड़न मिला है। उनका कारण भ्रष्ट व अंधी पुरुषवादी व्यवस्था भी है जो नारी के साथ कभी न्याय नहीं कर सकी। अतः शिवमूर्ति के पात्र एक–एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी दिखते हैं। विमली और सनिचरी जहाँ शोषित उत्पीड़ित ग्रामीण नारी का प्रतिनिधित्व करती है, वहीं इनके पुरुष पात्र भ्रष्ट नेता पुलिस व्यवस्था तथा पुरुषवादी विलासी व कामुक वर्गों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

19.5 कठिन शब्द

1. कसाईबाड़ा 2. चेतनशील 3. अनशन 4. अमरण 5. सबल 6. पुष्टि 7. स्वावलंबी 8. छाजन 9. कर्मठ 10. पितृसत्ता

19.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सनिचरी के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

2. 'विमली' एक संघर्षशील नारी है। सिद्ध कीजिए।

3. 'तिरिया चरित्तर' कहानी का प्रमुख पात्र 'बिसराम' पुरुषवादी संकुचित मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। स्पष्ट कीजिए।

4. 'कसाईवाड़ा' कहानी के 'दरोगा' का चरित्र–चित्रण करें।

5. 'कसाईवाड़ा' कहानी का 'परधानजी' भ्रष्ट नेता है। सिद्ध करें।

____

____

____

____

6. 'कसाईवाड़ा' कहानी के पात्र 'लीडरजी' का चरित्र चित्रण करें।

____

____

____

____

7. 'अधंरगी' चेतनशील दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, सिद्ध कीजिए।

____

____

____

____

19.7 पठनीय पाठकें

1. केशर कस्तूरी – शिवमूर्ति
2. सृजन का रसायन – शिवमूर्ति
3. हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश – मधुरेश

————————